महाभारत-कथा

[२]

[तमिल ग्रंथ 'व्यासर विरन्दु' का अनुवाद]

रचयिता

श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

अनुवादक

श्री पू. सोमसुन्दरम्

१९४९

सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन

प्राक्कथन

(खासतौर से हिन्दी सस्करण के लिए लिखा गया)

मै समझता हू कि अपने जीवन में मुझसे जो सबसे बडी सेवा बन सकी है, वह है महाभारत को तमिल-भाषियो के लिए कथाओ के रूप में लिख देना। मुझे इस बात से प्रसन्नता है कि 'सस्ता साहित्य मडल' ने 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' के एक दक्षिण भारतीय द्वारा किये हुए हिन्दी रूपान्तर को बढिया मानकर उत्तर भारत के पाठको के समक्ष उपस्थित करने के लिए स्वीकार कर लिया है।

मेरा विश्वास है कि महाभारत की ये सक्षिप्त कथाए पाठको को पहले की अपेक्षा अच्छा आदमी, अच्छा चितक और अच्छा हिन्दू बनावेंगी। यह दूसरा खड है और इसमें मेरी पुस्तक पूर्ण हो जाती है। प्रथम खड तो पहले ही प्रकाशित हो चुका है।

चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

नई दिल्ली

मार्च, १९४९

विषय-सूची

(दूसरा खंड)

महाभारत-कथा

[२]

: ५० :

मंत्रणा

तेरहवा बरस पूरा होने पर पाडव विराट की राजधानी छोड कर उपप्लव्य नामक नगर में जाकर रहने लगे, जो विराटराज ही के अधीन था। अज्ञातवास की अवधि पूरी हो चुकी थी। इसलिए पाचो भाई प्रकट रूप में रहने लगे और अपने भाई-बधुओ एव मित्रो को बुलाने को दूत भेजे।

अपने भाई बलराम, अर्जुन की पत्नी सुभद्रा, पुत्र अभिमन्यु और यदुवश के कितने ही वीरो को साथ लेकर श्रीकृष्ण उपप्लव्य आ पहुचे। उनके आगमन की खबर पाकर विराटराज और पाडवो ने शख बजाकर उनका स्वागत किया।

इन्द्रसेन आदि राजा अपने-अपने रथो पर चढकर उपप्लव्य आ पहुचे। काशीराज और वीर शैव्य भी अपनी दो अक्षौहिणी सेना के साथ आकर युधिष्ठिर के नगर में पहुच गये।

पाचालराज द्रुपद तीन अक्षौहिणी सेना लाये। उनके साथ शिखडी, द्रौपदी का भाई धृष्टद्युम्न और द्रौपदी के बेटे आ पहुचे। और भी कितने ही राजा अपनी-अपनी सेनाओ को साथ लेकर पाडवो की सहायता के लिए आ गये।

सबसे पहले शास्त्रोक्त विधि से अभिमन्यु के साथ उत्तरा का विवाह किया गया। इसके बाद विराटराज के सभाभवन में सभी आगतुक राजा लोग मत्रणा करने इकट्ठे हुए।

विराटराज के पास श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर बैठे । द्रुपद के पास बलराम और सात्यकी । और भी कितने ही प्रतापी राजा सभा में विराजमान थे। सब के अपने-अपने आसन पर बैठ जाने पर सभा में शांति छा गई। सबकी निगाह श्रीकृष्ण पर थी। कुछ देर बाद श्रीकृष्ण उठे और बोले—

"सम्मान्य बधुओ, मित्रो ! आप जानते ही है कि कैसे युधिष्ठिर को कुचक्र में फसा कर उनका राज्य छीन लिया गया, कैसे पाडु-पुत्रो को प्रण निभाने के लिए तेरह बरस तक दारुण दु ख भोगना पडा और कैसे इन दु:सह कठिनाइयो को झेलकर पाडवो ने अपनी प्रतिज्ञा सफलता के साथ पूरी की। हम सब यहा इसलिए इकट्ठे हुए है कि कुछ ऐसा उपाय सोचें, जो युधिष्ठिर और राजा दुर्योधन के लिए लाभ-प्रद हो, न्यायोचित हो और जिससे पाडवो एव कौरवो का सुयश बढे। युधिष्ठिर कोई भी ऐसी सलाह नहीं मानेंगे जिससे धर्म की हानि हो और जो न्यायोचित न हो। यद्यपि धृतराष्ट्र के लडको ने उन्हें धोखा दिया और तरह-तरह की यातनाए उन्हें पहुचाईं, फिर भी युधिष्ठिर तो उनका भला ही चाहते है। आपको कौरवो के अन्यायो और युधिष्ठिर की न्याय-प्रियता, दोनो पर ध्यान देना है। दोनो के भिन्न-भिन्न गुणों पर खूब सोच-विचार कर जो उचित लगे वही सलाह आप को देना है। अभी तक इस बात का पता नहीं लग सका कि इस बारे में दुर्योधन का क्या इरादा है। मुझे तो सब मिलाकर सधि करना ही उचित प्रतीत होता है। जो राज्य युधिष्ठिर से छीना गया है वह उनको वापस मिल जाय तो पाडव शात हो जायगे और दोनो में सधि हो सकती है। मेरी राय में इस बारे में दुर्योधन के साथ उचित रीति से बात-चीत करके उसे समझाने के लिए एक ऐसे व्यक्ति को दूत बना कर भेजना होगा जो सर्वथा योग्य हो और शीलवान भी।"

यह कह कर श्रीकृष्ण ने बलराम की ओर देखा।

तब बलराम उठे और बोले—"कृष्ण ने जो सलाह दी वह मुझे न्यायो-चित लगती है और राजनीति के अनुकूल भी। आप लोगो ने कृष्ण की राय

सुनी। कृष्ण ने जो उपाय बताया उससे युधिष्ठिर और दुर्योधन दोनो की ही भलाई हो सकती है। इसके लिए मै कृष्ण को साधुवाद दिये बिना नहीं रह सकता। आप लोग जानते ही है कि कुती के पुत्रो को आधा राज्य मिला था। उन्होने उसे जुए में खो दिया और अब फिर उसे प्राप्त करना चाहते है। यदि शातिपूर्ण ढग से—बिना युद्ध किये ही—वे अपना राज्य प्राप्त कर सकें तो उससे न केवल पाडवो की बल्कि दुर्योधन एव सारी प्रजा की भलाई ही होगी। सब सुख-चैन से रह सकेंगे, इसमें कोई सदेह ही नहीं। इसके लिए युधिष्ठिर की ओर से दुर्योधन के पास एक ऐसा दूत भेजा जाना चाहिए जो दोनो के बीच सधि कराने की योग्यता और सामर्थ्य रखता हो। युधिष्ठिर की प्रार्थना दुर्योधन को सुनाकर उनका उत्तर युधिष्ठिर को बताने से पहले उसे भीष्म, द्रोण, विदुर, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण एव शकुनि आदि सभी सभ्रात व्यक्तियो से सलाह-मशविरा करना होगा। उसे बडी नम्रता के साथ युधिष्ठिर की बात सब को सुनानी होगी। चाहे जैसी उत्तेजना का अवसर आवे, पर वह क्रोध में न आए। जरा झुकने ही से काम बनेगा, तनने से नहीं। युधिष्ठिर ने स्वेच्छा से जुआ खेला और राज्य गवाया। बहुत से मित्रो ने उन्हें मना किया था, पर युधिष्ठिर ने किसी की न सुनी। अपनी जिद्द पर अडे रहे और सबकी सुनी-अनसुनी कर के जुआ खेलने गये। यह भी युधिष्ठिर से छिपा नहीं था कि शकुनि जुए का मजा हुआ खिलाडी है और वे इस खेल में उसके आगे ठहर नही सकते थे। शकुनि की निपुणता और अपने नौसिखुएपन को भली भाति जानते हुए भी युधिष्ठिर ने बुलावा मान लिया और खेल में हार गये। इसलिए अब युधिष्ठिर को धृतराष्ट्र और उनके पुत्रो के आगे नम्रता के साथ जरा झुक कर ही राज्य वापस दिलाने की प्रार्थना करनी होगी। इसके लिए मेरी राय में ऐसा व्यक्ति दूत बन कर जाय जो शाति-प्रिय एव मृदुभाषी हो, युद्ध-प्रिय न हो। उसका उद्देश्य किसी-न-किसी प्रकार समझौता कराना ही हो। हे राजा-गण! दुर्योधन को मीठी बातो से समझाने का प्रयत्न कीजिए। शाति-पूर्ण ढग से जो सपत्ति मिल जाए वही सुख-प्रद होगी। युद्ध चाहे

जिस उद्देश्य के लिए किया जाय उसमें अन्याय होता ही है । युद्ध के फलस्वरूप न्याय की स्थापना होना असभव है।"

बलराम के कहने का सार यह था कि युधिष्ठिर ने जान-बूझकर, अपनी इच्छा से जुआ खेल कर राज्य गवाया था। यह बात ठीक है कि शर्त के अनुसार बारह बरस का बनवास और एक बरस का अज्ञातवास पूरा करके उन्होने प्रण निभा लिया। इससे वे गुलामी से मुक्त होकर स्वतत्र रह सकते है अवश्य, परतु खोये हुए राज्य को वापस मागने का उन्हें अधिकार नही हो सकता। प्रतिज्ञा करते समय युधिष्ठिर या और किसी ने ऐसी कोई शर्त नहीं की थी कि युधिष्ठिर को राज्य भी वापस दे दिया जायगा। हा, हाथ जोड कर याचना करने पर भले ही कुछ प्राप्त हो जाय, किंतु अपना स्वत्व जता कर मागने का अधिकार युधिष्ठिर को नहीं रहा। जुए के खेल में सपत्ति को दाव पर रखना और हार जाना नासमझी ही है, लेकिन खेल में जान-बूझकर जो गवाया गया है उस पर फिर से गंवाने वाले का अधिकार नही हो सकता।

इसके अलावा एक ही वश के लोगो का आपस में लड-मरना भी बलराम को अच्छा न लगा। उनकी राय यह थी कि युद्ध अनर्थ की ही जड होता है। उससे कभी भलाई नही हो सकती।

●

लेकिन बलराम की ही तरह सब नहीं सोचते थे। उनकी इन बातो से यदुकुल का वीर और पाडवो का हितैषी सात्यकी आगबबूला हो उठा। उससे न रहा गया। उठकर कहने लगा—

"बलरामजी की बातें मुझे जरा भी न्यायोचित नहीं जचीं। अपनी बात सिद्ध करने के लिए लोग वाक्-चातुरी से काम लेते हैं। हर किसी बात का सुदरता से समर्थन किया जा सकता है और अन्याय को आसानी से न्याय सिद्ध किया जा सकता है। लेकिन जो स्पष्ट अन्याय है वह कदापि न्याय नहीं हो सकता, न अधर्म ही धर्म हो सकता है। बलरामजी की बातो का मै जोरों से विरोध करता हूं। आप सब सज्जन जानते है कि श्रीकृष्ण और

बलरामजी भाई-भाई है। फिर भी इन दोनो के विचारो में बहुत भारी अतर है। इसमें अचरज की कोई बात नही। एक ही कोख से शूर भी जन्म लेता है और कायर भी। एक ही पेड की शाखाओ में से कोई तो फलो से लदी होती है और कोई बिल्कुल निकम्मी होती है। अत भाई-भाई होते हुए भी श्रीकृष्ण ने न्याय की और बलराम ने अन्याय की बात कही हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या है! मेरी राय में जो कोई भी युधिष्ठिर को दोषी बतायेगा वह दुर्योधन से डरने वाला ही होगा। मेरी इन कडी बातो के लिए आप सज्जनगण मुझे क्षमा करेंगे। बात यह है कि युधिष्ठिर तो पांसे का खेल जानते भी नहीं थे और न इनकी खेलने की इच्छा ही थी। पर इनको आग्रह करके जुआ खेलने पर विवश किया गया और कपट से खेल कर हराया गया था। फिर भी यह इनकी सज्जनता ही थी जो प्रण निभा कर खेल की शर्ते पूरी कर दी। और अब इनको यह सलाह दी जा रही है कि यह दुर्योधन के आगे झुक कर भीख मागें! युधिष्ठिर भिखमगे नहीं है। उन्हें किसी के आगे झुकने की आवश्यकता ही क्या है? शर्त के अनुसार पाडव बारह बरस का बनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास पूरा कर के लौट आये है। दुर्योधन और उसके साथी जो यह चिल्ल-पुकार मचा रहे है कि बारह महीने पूरे होने से पहले ही पाडवो को उन्होने पहिचान लिया है, सरासर झूठ है और बिल्कुल अन्याय है। मै इस अन्याय को नहीं सहूगा और उसका बदला लेकर ही रहूगा। युद्ध में इन अधमो को ऐसी खबर लूगा कि या तो वे युधिष्ठिर के पाव पडकर क्षमा-याचना करेंगे या मेरे हाथो मारे जाकर मृत्यु के मुह पडेंगे। धर्मयुद्ध का फल अनीति कैसे हो सकता है? हथियार लेकर लडने वाले शत्रु को मारना भी कहीं पाप होता है? कभी नहीं। शत्रुओ के आगे हाथ पसार कर भीख मागने से अधिक निंदनीय काम और कोई हो नही सकता। अध पतन के सिवाय उसका और कोई नतीजा नही होता। अगर दुर्योधन लडना ही चाहता है तो हम भी तैयार हो जाय। देरी करना ठीक नहीं। जो कुछ करना है उसे जल्दी ही कर लेना ठीक होगा। मेरी राय में दुर्योधन बगैर युद्ध के मानेगा ही नहीं।

इसलिए विलब करना हमारे लिए बिल्कुल नासमझी की बात होगी।"

सात्यकी की इन दृढ़तापूर्ण और जोरदार बातो से राजा द्रुपद बडे खुश हुए। वे उठे और बोले—

"सात्यकी ने जो कहा वह बिल्कुल सही है। मै उनका जोरो से समर्थन करता हू। मेरा भी यही खयाल है कि दुर्योधन मीठी-मीठी बातो से माननेवाला नहीं है। हमें युद्ध की तैयारिया तो रखनी ही चाहिए। अपने सभी मित्रो को दूतो के द्वारा यह सदेश भेजना होगा कि बिना विलब किये सेना इकट्ठी करना शुरू कर दें। शल्य, धृष्टकेतु, जयत्सेन, केकय आदि राजाओ के पास अभी से दूत भेज देने चाहिए। इससे मेरा मतलब यह नहीं कि सुलह का प्रयत्न ही न किया जाय, बल्कि मेरी राय में तो राजा धृतराष्ट्र के पास अभी से किसी सुयोग्य व्यक्ति को दूत बनाकर भेजना बहुत ही जरूरी है। मेरी सभा के विद्वान् पुरोहित बडे नीतिज्ञ ब्राह्मण है। आप चाहें तो उन्हें हस्तिनापुर भेजा जा सकता है। दुर्योधन से क्या कुछ कहना होगा, भीष्म, धृतराष्ट्र, द्रोण आदि व्यक्तियो को कैसे समझाना होगा, यह सब बातें उन ब्राह्मण को बता कर उन्हें हस्तिनापुर भेजा जा सकता है। मेरी यही सलाह है।"

राजा द्रुपद के कह चुकने के बाद श्रीकृष्ण उठे और बोले—

"सज्जनो! पाचालराज ने जो सलाह दी है वह बिल्कुल ठीक है। वह राजनीति के भी अनुकूल है और उस पर अमल करना चाहिए। बलरामजी और मुझ पर कौरवो का जितना हक है उतना ही पाडवो का भी है। हम यहा किसी का पक्षपात करने नही, बल्कि उत्तरा के विवाह में शामिल होने के लिए आये है। हम अब अपने स्थान पर वापस चले जायेंगे। (द्रुपद की ओर देख कर) द्रुपदराज! आप सभी राजाओ में श्रेष्ठ है, बुद्धि एव आयु में भी बडे है। हमारे लिए तो आप आचार्य के सामान है। धृतराष्ट्र भी आपकी बड़ी इज्जत करते है। द्रोण एवं कृपाचार्य तो आपके लडकपन के साथी हैं। इसलिए उचित यही होगा कि जो कुछ दूत को समझाना-बुझाना हो वह आप ही समझा दें और उन्हें हस्तिनापुर भेज दें। यदि इसके

बाद भी दुर्योधन न्यायोचित रूप से सधि के लिए तैयार न हो तो सब लोग सब तरह से तैयार हो जाय और हमें भी कहला भेजें।"

●

यह निश्चय हो जाने के बाद श्रीकृष्ण अपने साथियो सहित द्वारका लौट गए। विराट, द्रुपद, युधिष्ठिर आदि युद्ध की तैयारिया करने में लग गए। चारो ओर दूत भेजे गए। सब मित्र राजाओ को सेना इकट्ठी करने का सदेशा भेज दिया गया। पाडवो के पक्ष के राजा लोग अपनी-अपनी सेना सज्जित करने लगे।

इधर ये तैयारिया होने लगीं उधर दुर्योधन आदि भी बेकार नहीं बैठे रहे। वे भी युद्ध की तैयारियो में जी-जान से लग गए। उन्होंने अपने मित्रो के यहा दूतो द्वारा सदेशे भेजे कि सेनाए इकट्ठी की जाए। इस तरह सारा भारतवर्ष युद्ध के कोलाहल से गूजने लगा। राजा लोग इधर से उधर और उधर से इधर दौरे करते। सैनिको के दल-के-दल जगह-जगह आते-जाते रहते। उनकी धूम से पृथ्वी काप जाती थी। उन दिनो भी युद्ध की तैयारिया आजकल की-सी ही हुआ करती थी।

द्रुपदराज ने अपने पुरोहित को बुलाकर कहा—"विद्वानो में श्रेष्ठ! आप पाडवो की ओर से दूत बन कर दुर्योधन के पास जाय। आप पाडवो के गुणो से भली-भाति परिचित है। इसी प्रकार दुर्योधन के गुण भी आप से छिपे नहीं है। आप जानते ही है कि धृतराष्ट्र की सम्मति ही से पाडवो को धोखा दिया गया। विदुर ने न्याय की बात कही तो जरूर, लेकिन धृतराष्ट्र ने उनकी सुनी नहीं। राजा धृतराष्ट्र पर दुर्योधन का असर ज्यादा है। आप धृतराष्ट्र को धर्म और नीति की बातें समझाए। विदुर तो हमारे ही पक्ष में रहेंगे। इस कारण सभव है, भीष्म, द्रोण, कृप आदि मन्त्रियो और योद्धाओ (सेनानायको) में मतभेद हो जाने पर उनमें एकता होना बहुत कठिन हो जाय। एकता अगर हुई भी तो इसमें काफी समय लग जायगा। इस अर्से में पाडव युद्ध की काफी तैयारी कर लेंगे। उधर जबतक आप हस्तिना-पुर में सधि-चर्चा करते रहेंगे तब तक उन लोगो की तैयारिया धीमी पड़

जाएगी। सधि की बातें करने का एक यह् भी फायदा होगा। यदि शाति स्थापित हो गई तो भी हमारे लिए वह अच्छा ही होगा। मुझे ऐसी आशा नहीं है कि दुर्योधन समझौता करने पर राजी होगा। फिर भी समझौते की बात करने के लिए हमारे राजदूत का हस्तिनापुर जाना हमारे लिए ही लाभप्रद होगा।"

शाति की वास्तविक इच्छा रखते हुए समझौतें का प्रयत्न करना, पर साथ ही युद्ध की भी तैयारिया करते रहना, उधर शत्रु के पक्ष के लोगो में शाति की बातचीत के ही द्वारा फूट डालने की कोशिश करना आदि आजकल के तौर-तरीके उन दिनो भी प्रचलित थे।

: ५१ ·

पार्थ-सारथी

शाति-चर्चा के लिए हस्तिनापुर को दूत भेज देने के बाद पांडव और उनके मित्र राजागण जोरो से युद्ध की तैयारी में जुट गये। श्रीकृष्ण के पास स्वय अर्जुन पहुचा।

इधर दुर्योधन को भी इस बात की खबर मिल गई कि उत्तरा के विवाह से निवृत्त होकर श्रीकृष्ण द्वारका लौट आये हैं। सो तेज घोडोवाले रथ पर सवार होकर वह द्वारका को रवाना हो गया। सयोग की बात कि जिस दिन अर्जुन द्वारका पहुचा ठीक उसी दिन दुर्योधन भी वहा पहुचा। कृष्ण के भवन में भी दोनों एक साथ ही प्रविष्ट हुए। श्रीकृष्ण उस समय आराम कर रहे थे। अर्जुन और दुर्योधन दोनो ही उनके निकट के सबधी थे, इसलिए दोनो ही बेखटके शयनागार में चले गये। दुर्योधन आगे था, अर्जुन जरा पीछे। कमरे में प्रवेश करके दुर्योधन श्रीकृष्ण के सिरहाने एक ऊचे आसन पर जा बैठा। अर्जुन पीछे था, वह श्रीकृष्ण के पैताने ही हाथ जोड़े खडा रहा।

श्रीकृष्ण की नींद खुली तो सामने अर्जुन को खडे देखा। उठ कर उसका स्वागत किया और कुशल पूछी। बाद में घूमकर आसन पर बैठे दुर्योधन को देखा तो उसका भी स्वागत किया और कुशल-समाचार पूछे। उसके बाद दोनो से आने का कारण पूछा।

दुर्योधन जल्दी से पहले बोला—"श्रीकृष्ण, ऐसा मालूम होता है कि हमारे और पाडवो के बीच जल्दी युद्ध छिडेगा। यदि ऐसा हुआ तो मै आपसे प्रार्थना करने आया हू कि आप मेरी सहायता करें। इसमें शक नही कि पाडवो और कौरवों दोनों पर आपका एक-जैसा प्रेम है। यह भी ठीक है कि हम दोनो का आपसे सबध है; पर मै आपकी सेवा में पहले पहुचा हू। महाजनो ने यह नियम बना दिया है कि जो पहले आये उसका काम पहले हो। आप महाजनो में श्रेष्ठ है। आप सबके पथ-प्रदर्शक है। अत बडो की चलाई हुई प्रथा पर चलें और पहले मेरी सहायता करें।"

यह सुन श्रीकृष्ण बोले— 'राजन्! यह हो सकता है कि आप पहले आये हो। पर मेरी निगाह तो कुती-पुत्र अर्जुन पर ही पहले पडी। आप पहले पहुचे जरूर, लेकिन मैंने तो अर्जुन को ही पहले देखा। मेरी निगाह में तो दोनो ही बराबर है। इसलिए कर्त्तव्य-भाव से मै दोनों की ही समानरूप से सहायता करूगा। पूर्वजो की चलाई हुई प्रथा यह है कि जो आयु में छोटा हो उसीको पहले पुरस्कार देना चाहिए। अर्जुन आपसे आयु में छोटा है, इसलिए पहले उससे ही पूछता हू कि वह क्या चाहता है।"

अर्जुन की तरफ मुड कर श्रीकृष्ण बोले—"पार्थ! सुनो! मेरे वश के लोग नारायण कहलाते है। रण-कौशल में वे मुझसे कम नहीं है। वे बडे साहसी और वीर भी है। उनकी एक भारी सेना इकट्ठी की जा सकती है। युद्ध के मैदान में तो उनके नजदीक कोई जा नही सकता। मेरी यह सेना एक तरफ होगी। दूसरी तरफ अकेला मै रहूगा। मेरी प्रतिज्ञा यह भी है कि युद्ध में मै न हथियार उठाऊगा, न लडूगा। तुम भली भांति सोच लो, तब निर्णय करो। इन दो में से जो पसद हो वह ले लो। बताओ, क्या चाहते हो तुम? मुझ अकेले, नि शस्त्र को या मेरे वश वालो की वीर

सेना को ?"

बिना किसी हिचकिचाहट के अर्जुन बोला—"भगवन्, आप शस्त्र उठावें या न उठावें, आप चाहे लड़ें या न लड़ें, मै तो आपको ही चाहता हू ।"

●

दुर्योधन के आनद की सीमा न रही। वह सोचने लगा कि अर्जुन ने खूब धोखा खाया और श्रीकृष्ण की वह लाखो वीरो वाली भारी-भरकम सेना सहज में ही उसके हाथ आ गई। यह सोचता हर्ष से फूला न समाता दुर्योधन बलरामजी के यहा पहुचा और उनको सारा हाल कह सुनाया। भीमसेन के समान योद्धा बलरामजी ने दुर्योधन की बातें ध्यान से सुनीं और बोले—"दुर्योधन! मालूम होता है कि उत्तरा के विवाह के अवसर पर मैने जो कुछ कहा था उसकी खबर तुम्हें मिल गई। कृष्ण से भी मैंने कई बार तुम्हारी बात छेडी और उसको समझाता रहा कि कौरव और पांडव दोनो ही हमारे बराबर के सबधी है। किन्तु कृष्ण मेरी सुने तब न ? तो मैंने निश्चय कर लिया है कि मै युद्ध में तटस्थ रहूगा, क्योकि जिधर कृष्ण न हो, उस तरफ मेरा रहना ठीक नहीं। अर्जुन की सहायता मै करूगा नहीं। इस कारण मै अब तुम्हारी भी सहायता करने योग्य नहीं रहा। मेरा तटस्थ रहना ही ठीक होगा।

"दुर्योधन, तुम्हें किसी बात की कमी है ? तुम उस वश के हो जिसे राजा लोग पूजते है। निराश कदापि मत हो और जा कर क्षत्रियोचित ढग से युद्ध करो।"

हस्तिनापुर को लौटते हुए दुर्योधन का दिल बल्लियो उछल रहा था। वह सोच रहा था कि अर्जुन बडा बुद्धू बना। द्वारका की इतनी बड़ी सेना अब मेरी हो गई। और बलरामजी का स्नेह तो मुझ पर है ही। श्रीकृष्ण भी निःशस्त्र और सेना-विहीन हो गए। यही सोचते-विचारते दुर्योधन खुशी-खुशी अपनी राजधानी में वापस जा पहुचा।

●

"सखा अर्जुन! एक बात बताओ। तुमने सेना-बल के बजाय मुझ

नि शस्त्र को क्यो पसद किया ?" कृष्ण ने पूछा।

अर्जुन बोला—"भगवन्! बात यह है कि मैं भी वही यश प्राप्त करना चाहता हू जो आपको मिला है। आपमें वह शक्ति है कि जिससे आप अकेले ही इन तमाम राजाओ से लडकर इन्हें कुचल सकते है। मुझमें भी इतनी ताकत है कि अकेले ही इन सबको हरा दू। चिरकाल से मेरी यह इच्छा थी कि आपको सारथी बना कर मैं अपने शौर्य से विजय प्राप्त करलू। मेरी वही इच्छा आज आपने पूरी कर दी।"

अर्जुन की बात सुन कर कृष्ण मुसकराये और बोले—"अच्छा, यह बात है! मुझसे ही होड करने लगे! यह तुम्हारे स्वभाव के अनुकूल ही है।" श्रीकृष्ण ने अर्जुन को बडे प्रेम से विदा किया।

इस प्रकार श्रीकृष्ण अर्जुन के सारथी बने और पार्थ-सारथी की पदवी प्राप्त की।

: ५२ :

सगे मामा विपक्ष में

मद्र-देश के राजा शल्य नकुल-सहदेव की मा माद्री के भाई थे। जब उन्हें यह खबर मिली कि पांडव उपप्लव्य के नगर में युद्ध की तैयारिया कर रहे है तो उन्होंने एक भारी सेना इकट्ठी की और उसे लेकर पाडवो की सहायता के लिए उपप्लव्य की ओर रवाना हो गए।

राजा शल्य की सेना बहुत बडी थी। उपप्लव्य की ओर जाते हुए रास्ते में जहा कहीं भी शल्य विश्राम करने के लिए डेरा डालते तो उनकी सेना का पडाव कोई डेढ योजन* तक लबा फैल जाता था।

जब दुर्योधन ने सुना कि राजा शल्य विशाल सेना लेकर पाडवो की

* एक योजन करीब नौ मील का होता है।

सहायता के लिए जा रहे है तो उसने किसी प्रकार इस सेना को अपनी ओर कर लेने का तय कर लिया। अपने कुशल कर्मचारियो को उसने आज्ञा दी कि रास्ते में जहा कहीं भी राजा शल्य और उनकी सेना डेरा डाले उसे हर तरह की सुविधा पहुचाई जाये। इसके अनुसार रास्ते में जहा-तहा विशाल मडप बनवाये गये। उन्हें खूब सजाया गया। जहा भी शल्य की सेना ठहरती वहा मद्रराज और उनकी सेना का शानदार सत्कार किया जाता। मद्रराज तथा उनकी सेना के लिए तरह-तरह की खाने-पीने की चीजें एकत्र की गईं। साथ ही उनके जी बहलाने का प्रबध भी किया गया था। सारे रास्ते सत्कार का इस प्रकार का सुदर प्रबध देख कर शल्य बडे प्रसन्न हुए। वह बडी भारी सेना लेकर जगह-जगह ठहरते और विश्राम करते हुए उपप्लव्य की ओर बढते चले। मद्रराज की सेना इतनी विशाल थी कि उसके इधर-उधर चलने से धरती डोलती थी। रास्ते भर शल्य यही सोचते रहे कि सत्कार के यह सब आयोजन मेरे भानजे युधिष्ठिर के किये हुए है। इससे युधिष्ठिर के प्रति उनके मन में बडा स्नेह हो गया। एक रोज शल्य ने सेना का स्वागत-सत्कार तथा उनकी देख-रेख करने वाले कर्मचारियो से कहा कि हमारी सेना की और हमारी इतनी अच्छी तरह खातिरदारी करने वाले लोगो को मै उचित पुरस्कार देना चाहता हू। कुती-पुत्र युधिष्ठिर को मेरी तरफ से कहना कि वह इसके लिए बुरा न मानें और अपनी सम्मति दे दें।

कर्मचारियो ने जाकर दुर्योधन को इस बात की खबर दी। वह तो इसी ताक में शल्य की सेना के साथ-साथ गुप्त-रूप से चल ही रहा था। खबर पाकर बडा खुश हुआ और तुरत मद्रराज के पास जाकर प्रणाम किया और स्वागत-सत्कार का हाल सुनाया।

शल्य आश्चर्य-चकित रह गये। हमारे स्वागत-सत्कार का यह प्रबध दुर्योधन ने करवाया है, यह जान कर वे बडे असमंजस में पडे। यह जानते हुए भी कि हम उसके विपक्ष में है दुर्योधन में इतनी उदारता का होना सचमुच बडी बात है!

प्रसन्न होकर बोले—"राजन् ! तुम्हारा यह ऋण मैं कैसे चुकाऊ ?"

दुर्योधन ने कहा—"अपनी सेना-समेत आप मेरी सहायता करें और युद्ध शुरू होने पर मेरे पक्ष में रह कर पाडवो के विरुद्ध लडें। मै आपसे यही प्रत्युपकार चाहता हू।"

सुन कर मद्रराज सन्न रह गये।

शल्य को असमजस में पडे देखकर दुर्योधन बोला—"आपके लिए जैसे पाडव वैसे ही हम। हम दोनो का आपसे बराबर का नाता है। सो आप अपनी सेना लेकर मेरी तरफ से ही क्यो नहीं लडते ?"

दुर्योधन के उपकार से शल्य कुछ दबे-से महसूस कर रहे थे। उन्होने विवश होकर कहा—"अच्छी बात है, ऐसा ही होगा।"

शल्यराज पर दुर्योधन के आदर-सत्कार का कुछ ऐसा असर हुआ कि उन्होंने पुत्रो के समान प्यार करने योग्य अपने भानजो—पाडवो—को छोड दिया और दुर्योधन के पक्ष में रहकर युद्ध करने का वचन दे दिया।

मद्रराज ने दुर्योधन को वचन तो दे दिया, पर युधिष्ठिर से बिना मिले लौट जाना उन्हें उचित नहीं लगा। वह दुर्योधन से बोले—"राजन्, एक बात है। मै तुम्हें वचन तो दे ही चुका हू, पर जाने से पहले युधिष्ठिर से भी मिल लेना जरूरी समझता हू। अत अभी तो मुझे विदा दो।"

"जरूर मिलिये, पर वहा से शीघ्र ही लौट आइये। ऐसा न हो कि वहा भानजो को देख कर मुझे जो वचन दे चुके है, वह भूल जाय !" दुर्योधन ने कहा।

"नहीं भाई, जो कह चुका वह व्यर्थ नही होगा। तुम निश्चित होकर अपने नगर लौट जाओ।" यह कहकर मद्रराज उपप्लव्य की ओर रवाना हुए।

उपप्लव्य में राजा शल्य का खूब स्वागत किया गया। मामा को आया देख कर नकुल और सहदेव के आनद की तो सीमा न रही। पाडवो ने अपने सब कष्टो का हाल मामा को कह सुनाया। जब भावी युद्ध की चर्चा छिड़ी तो शल्य ने युधिष्ठिर को बताया कि किस प्रकार दुर्योधन ने धोखा

देकर उनको अपने पक्ष में कर लिया है।

युधिष्ठिर ने सोचा कि अपने निकट के रिश्तेदार समझ कर इनकी ओर से हम लापरवाह रहे और इनकी कोई खबर नहीं ली, इसीका यह परिणाम है। पर उन्होंने अपना दुख प्रकट नही किया। बोले—"मामा-जी! दुर्योधन के स्वागत-सत्कार से प्रसन्न होकर आपने जो वचन दिया उसे तो पूरा ही करना उचित होगा, पर मै एक बात आपसे अवश्य पूछना चाहता हू। आप युद्ध-कुशलता में वासुदेव के समान है। मौका आने पर निश्चय ही महाबली कर्ण आपको अपना सारथी बना कर अर्जुन का वध करने का प्रयत्न करेगा। मै यह जानना चाहता हू कि उस समय आप अर्जुन की मृत्यु का कारण बनेंगे या अर्जुन की रक्षा का प्रयत्न करेंगे? मै यह पूछ कर आपको असमजस में नही डालना चाहता था, पर फिर भी पूछने को मन हो गया।"

मद्रराज ने कहा—"बेटा युधिष्ठिर, मै धोखे में आकर दुर्योधन को वचन दे बैठा। इसलिए युद्ध तो मुझे उसकी ओर से करना होगा। पर एक बात बताये देता हू। वह यह कि यदि कर्ण मुझे सारथी बनायेगा तो मेरे कारण उसका तेज नष्ट हो जायगा और अर्जुन के प्राणो की रक्षा हो जाएगी। किसी प्रकार का भय न करो। जुए के खेल में फस कर द्रौपदी और तुम लोगो को जो कष्ट झेलने पडे उनका अब अत आगया समझो। तुम्हारा अब कल्याण ही है। विधि की गति को कोई टाल नहीं सकता। इस समय की मेरी भूल को क्षमा कर देना।"

: ५२ :

देवराज की भूल

एक बार देवराज इद्र, अपनी राज-सत्ता के गर्व में आकर मदांध हो गए। उन्हें देवोचित मर्यादा का भी ध्यान न रहा। कहीं से सुन लिया कि सिंहासन पर बैठे हुए राजा के लिए यह आवश्यक नहीं कि किसी का आदर

करने के लिए आसन से उठा जाए। इसीको देवराज इन्द्र ने शास्त्र मान लिया। एक बार आचार्य बृहस्पति सभा में पधारे। पर देवराज अपनी उक्त धारणा के फलस्वरूप न तो आसन से उठे, न अर्घ्य-पाद्य-आसन आदि ही देकर देवगुरु का समुचित सत्कार किया। देवगुरु बृहस्पति, जो सभी विद्याओ के पारगत थे और जिनकी न केवल देवता, बल्कि असुर भी पूजा किया करते थे, देवराज की यह अशिष्टता देख कर बडे खिन्न हुए। फिर भी यह सोच कर कि ऐश्वर्य के मद के कारण ही यह भूल इन्द्र से हुई है, वे चुपचाप इन्द्रसभा छोड कर अपने घर चले गए। देवगुरु के बिना इन्द्र की सभा श्री-विहीन हो गई।

अब इन्द्र को अपनी भूल मालूम हुई। उनका कलेजा धडकने लगा। उन्हें भय हुआ कि कहीं कोई अनर्थ न हो जाय। उन्होने आचार्य के पैरो पड कर क्षमा मागने का निश्चय किया।

लेकिन आचार्य का तो कही पता ही नही था। उन्होने अदृश्य-रूप ले लिया और इन्द्र के बहुत खोजने पर भी उनका कहीं पता न चला। इससे देवराज बडे उदास हो गये और अनर्थ की भावी आशका मानो उन्हें खाने लगी।

इधर बृहस्पति के चले जाने के बाद ही देवराज की शक्ति घटने लग गई। ज्यो-ज्यो इन्द्र-देवताओ की शक्ति घटती गई त्यो-त्यो असुरो की शक्ति बढती गई। और समय पा कर असुरो ने देवताओ पर धावा बोल दिया। देवताओ की असुरो के हाथो बुरी गत हुई। यह देख कर ब्रह्मा दु खी हुए। उनके हृदय को चोट लगी।

बोले—"देवताओ! इन्द्र की नासमझी के कारण तुम लोग आचार्य बृहस्पति को गवा बैठे। त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप बडे तपस्वी है। अब तुम उनके पास जाओ और उनसे आचार्य बनने की प्रार्थना करो। तब तुम्हारा काम ठीक से होगा और उसमें कोई कमी न रहेगी।"

यह सुन देवता बडे खुश हुए और ब्रह्मदेव के कहे अनुसार त्वष्टा के यहां गए। त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप यद्यपि उमर में छोटे थे, फिर भी महान्

तपस्वी थे। देवताओ ने जाकर उनसे निवेदन किया—"आप अल्पवय के होने पर भी सभी वेदो के पारगत है। कृपा करके आप हमारे पुरोहित-आचार्य बन जाय।" विश्वरूप ने देवताओ की बात मान ली।

तपस्वी और विशुद्ध आचरण वाले विश्वरूप से शिक्षा पाकर देवताओं की शक्ति बढी और वे असुरो के त्रास से बच गये।

विश्वरूप थे तो त्वष्टा के पुत्र; परतु उनकी माता असुर-कुल की थीं—देव-कुल की नही। इस कारण इद्र के मन में विश्वरूप के प्रति शका पैदा हो गई। वे सोचने लगे कि जब इनकी माता असुर-कुल की है तो कही ये असुरो के तरफदार न हो। देवराज की यह शका दिन-पर-दिन बढती ही गई और वे यहा तक सोचने लगे कि उनके कारण मुझ पर और कोई विपद् न आ जाय। इस विचार से देवराज ने तपस्वी विश्वरूप को धोखा देकर उनकी तपस्या में विघ्न डालने के लिए अप्सराए भेजना शुरू किया। इद्र की आज्ञा पाकर अप्सराए विश्वरूप के सामने जाकर नाचने-गाने लगी और कामवासना को भडकाने वाले हाव-भाव दिखा कर उन को मोह-जाल में फसाने की चेष्टा करने लगीं, किंतु विश्वरूप इन बातो से जरा भी प्रभावित न हुए। अपने ब्रह्मचर्य पर अटल रहे।

जब देवराज ने ऐसी चालो से काम न बनते देखा तो घोर पाप करने पर उतारू हो गए। उन्होंने तपस्वी विश्वरूप को वज्रप्रहार करके मार डाला; पर इससे उनको ब्रह्म-हत्या का महान् पातक लगा। यह पाप-पक किसी प्रकार धोये न धुला। तब इद्र ने अपने पाप का प्रायश्चित किया और अपना पाप सारे ससार को बाट दिया। कहा जाता है कि इद्र के इसी पाप के कारण धरती के कुछ हिस्से खारे हो गए है और स्त्रियो को कुछ ऐसे शारीरिक कष्ट सहने पडे है, जो पुरुषो को नहीं होते। जल के फेन और बुलबुले इसी पाप के परिणाम कहे जाते है।

●

जब त्वष्टा को मालूम हुआ कि इद्र ने उनके पुत्र की हत्या कर दी तो उन्हें इद्र पर असीम क्रोध हुआ। उन्होने इद्र से बदला लेने की ठानी।

और इसी कामना से होमाग्नि में मत्र पढ कर आहुति दी। इस होमाग्नि से वृत्रासुर नाम का एक दैत्य निकला, जो आगे चल कर इद्र का शत्रु बना। आग से उत्पन्न होते हुए वृत्रासुर को पुकार कर त्वष्टा ने कहा—"हे इद्र-रिपु! तुम आगे बढो और मेरी कामना है कि तुम्हारे हाथो पातकी इद्र का वध हो।"

त्वष्टा के आदेशानुसार वृत्रासुर इंद्र को मारने निकल पडा। वृत्रासुर और इद्र में भारी युद्ध हुआ। वृत्रासुर का पलडा भारी हो रहा था। ऋषि-मुनियो को भय हुआ कि कही इद्र की पराजय न हो जाय। उन्होने भगवान् विष्णु की शरण ली। उनको अभय देकर भगवान् बोले—"डरो मत। इद्र के वज्र में मै प्रवेश करूगा जिससे अत में देवराज ही की जीत होगी।"

ऋषि-मुनि तथा देवता भगवान् विष्णु से अभय प्राप्त कर के वृत्रासुर के पास गये और बोले—"वृत्र! तुम इद्र से मित्रता कर लो। तुम दोनो समान बलशाली हो। तुम दोनो के इस युद्ध के कारण ससार को बहुत पीडा पहुच रही है। लोग बडे तग आ गये है।"

"निर्दोष तपस्वियो! आप क्षमा कीजिए। इद्र में और मुझमें एकता कैसे हो सकती है? समान तेजवालो में कभी मित्रता होते आपने देखी है?" वृत्र ने नम्रता से कहा।

"तुम इस बात में सदेह न करो! सज्जनो की मित्रता सदा स्थिर ही हुआ करती है—चचल नही।" ऋषियो ने वृत्र को समझाया।

वृत्र ने मान लिया। वह बोला—"आप लोगो की इच्छा पूर्ण हो। मै युद्ध बद किये देता हू, किंतु एक बात है। इद्र का मुझे कोई भरोसा नहीं है। धोखा देकर कहीं वह मुझ पर घात न कर बैठें! अत आप मुझे यह वर-दान दें कि इद्र द्वारा मै पत्थर, काठ, या धातु के बने किन्हीं शुष्क या गीले हथियारो से या बाण से न मारा जाऊ। न मै दिन में, न रात में ही मारा जाऊ। इतना आप करेंगे तो कृपा होगी।"

ऋषियो ने 'तथास्तु' कह कर वरदान दिया और विदा हुए। वृत्रासुर का भय ठीक ही निकला। इद्र की मित्रता झूठी और दिखावटी साबित हुई।

मित्रता करना तो दूर, देवराज तो वृत्र को मारने की ही ताक में थे। एक दिन सध्या के समय समुद्र के किनारे इद्र की वृत्र के साथ भेंट हो गई। देवराज ने सोचा कि असुर को मारने का यही ठीक समय है। न तो अब दिन है, न रात। इस सुअवसर से लाभ उठा लू। यह सोच कर इद्र ने वृत्रासुर पर आक्रमण किया। दोनो में काफी देर तक युद्ध होता रहा, पर हार-जीत का निर्णय न हो सका। अत में वृत्र ने कहा—"अरे अधम! अपने उस वज्र का मुझ पर प्रहार क्यो नहीं करता, जिसका वार कभी खाली नहीं जाता? सुना है, तेरे उस शस्त्र में स्वय हरि ने प्रवेश किया है। उसी का वार कर न, जिससे मै सद्गति को तो पहुच जाऊ।" यह कह कर वृत्र ने हरि का ध्यान किया और उनकी स्तुति करने लगा।

हरि का ध्यान करते हुए वृत्र पर देवराज ने अपने वज्र से प्रहार किया और उसका दाहिना हाथ काट दिया। किन्तु वृत्रासुर इससे विचलित न हुआ। अधिक उत्साह के साथ बाए हाथ में एक मूसल लेकर उसने इद्र पर आघात किया। तब इद्र ने उसका बायां हाथ भी काट डाला। दोनो हाथो के कट जाने पर वृत्र ने मुह खोलकर इन्द्र को एकदम निगल लिया। यह देख देवता लोग चौंक पडे और शोर मचाने लगे।

परतु इद्र मरे नही। वृत्र का पेट चीरकर निकल आये। उन्होने मत्र पढ कर समुद्र के फेन में ही वज्र का आह्वान किया और वही फेन वृत्रासुर पर चला दिया। ठीक उसी समय भगवान् हरि ने उस फेन में प्रवेश किया और वृत्रासुर मृत होकर पृथ्वी पर गिर पडा।

सारा ससार जो इस लगातार होने वाले युद्ध से पीडित था, वृत्रासुर के मारे जाने से बडा खुश हुआ। पर इद्र के मन में शाति नही थी। एक तो ब्रह्म-हत्या का पाप उन पर पहले से ही था, दूसरे प्रतिज्ञा-भग करके वृत्र को जो मारा, उससे वे तेज-विहीन हो गये। अपमान एव पाप का बोझ उनके लिए असह्य हो उठा। वे बहुत लज्जा अनुभव करने लगे और किसी को मुह दिखाने योग्य न रहे। इस कारण अदृश्य होकर छिपे-छिपे रहने लगे।

राजा के बिना प्रजा नहीं रह सकती। राजा से मतलब किसी एक व्यक्ति-विशेष से ही नहीं होता, बल्कि किसी भी राजवश या राज-काज करने वाली सस्था से भी हो सकता है। देवराज के अदृश्य हो जाने से देवता और ऋषि-मुनि बहुत उदास हो गये।

मर्त्यलोक के राजा नहुष बडे प्रतापी, रण-कुशल और शीलवान थे। देवताओ और ऋषियो ने उन्हीं नहुष के पास जाकर प्रार्थना की कि इस समय आप ही इद्र का पद स्वीकार करें और हमारे अधीश बन जाय।

नहुष स्वभाव के बडे नम्र थे। ऋषियो और देवताओ की प्रार्थना सुनकर बोले—"मुझमें इतनी सामर्थ्य कहा कि मै आप लोगो की रक्षा कर सकू! मेरी और इद्र की तुलना ही क्या!"

पर देवताओ ने आग्रह करके कहा—"हमारी तपस्या का सारा फल आपको प्राप्त हो जायगा। इसके साथ ही जिस पर भी आपकी दृष्टि पडेगी, उसीका तेज आपको मिल जायगा। इससे आप बडे शक्ति-सपन्न हो जायेंगे। आप स्वर्ग में पधारिये और देवराज के पद को सुशोभित कीजिये।"

इस पर राजा नहुष ने ऋषियो और देवताओ की प्रार्थना स्वीकार कर ली।

तात्पर्य यह कि क्राति कोई नई बात नहीं है। इस पौराणिक आख्यान में यह बताया गया है कि देवलोक में भी क्राति हुई और देवताओ ने इद्र को सिंहासनच्युत कर के नहुष को देवराज बना लिया। आगे यह भी पढने योग्य है कि नहुष का अत में पतन कैसे हुआ।

: ५४ :

नहुष की कथा

ब्रह्म-हत्या के दोष से पीडित हो कर पद-च्युत होने के बाद इद्र कही जा कर छिप रहे और देवराज के पद पर महाराज नहुष सुशोभित हुए।

शुरू-शुरू में देवताओ में नहुष का बडा मान था। मर्त्यलोक में राजा रहते समय उन्होंने जो यश और पुण्य कमाया था उससे उनकी बुद्धि स्थिर रहा करती थी और वे पाप कर्मों से बचे रहे। उसके बाद उनके बुरे दिन प्रारभ हो गये। उनकी नम्रता और सच्चरित्रता जाती रही। इद्र के पद को प्राप्त करने से वे मदाध हो गये।

स्वर्गलोक में सुख-भोग ही तो प्रधान होता है। अत देवेंद्र नहुष भोग-विलास में लगे रहे। उनके मन में काम-वासना का निवास हो गया। बुद्धि ठिकाने न रही।

एक दिन दुष्ट-बुद्धि नहुष ने सभासदो को आज्ञा देकर कहा—"क्या कारण है कि देवराज की रानी शची मेरे पास अभी तक नहीं आई? इद्र तो अब मैं हू न! शची को शीघ्र ही मेरे भवन में भेजना चाहिये।"

इंद्र-पत्नी ने जब यह बात सुनी तो उन्हें असीम दु ख और क्रोध हुआ। तत्काल ही वह देवगुरु बृहस्पति के पास गईं और विलाप करने लगीं—"आचार्य देव, इस पापी से मेरी रक्षा करें।"

गुरु बृहस्पति ने इंद्राणी को अभय देकर कहा—"पुत्री! भय न करो। शीघ्र ही इद्र वापस आयगे। उन्हें तुम फिर से प्राप्त करोगी। चिंता न करो।"

नहुष को जब यह बात मालूम हुई कि इन्द्राणी मेरी इच्छा पूरी करने को राजी नहीं है और जाकर देवगुरु की शरण ली है तो उसके क्रोध का ठिकाना न रहा।

नहुष को क्रोध के मारे आपे से बाहर होते देख देवता बहुत डरे। वे बोले—"देवराज, आप क्रोध न करें। आप नाराज हो जायगे तो सारे विश्व को पीडा पहुचेगी। आखिर शचीदेवी पराई स्त्री हैं। उन्हें पाने की आप अभिलाषा न करें। आप धर्म की रक्षा करें।"

पर वासनाध नहुष ने देवो की बात पर ध्यान नही दिया। देवता बोल ही रहे थे कि नहुष बात काट कर बोला—"अच्छा! आपको अब धर्म की बातें सूझने लगी है! उन दिनो जब इद्र ने गौतम-पत्नी अहल्या का सतीत्व नष्ट किया था तब आपका धर्म कहा गया था? उस समय आपने इद्र को कुमार्ग से क्यो नहीं रोका? तपस्या करते समय आचार्य विश्वरूप की जब इद्र ने हत्या की थी तब आप लोग क्या करते थे? वृत्र को जब इद्र ने धोखे से मारा था तब आप लोगो ने उसे क्यो क्षमा कर दिया था? मै कहता हू कि शचीदेवी के लिए यही श्रेयस्कर होगा कि अब वह मेरे पास आजाय। और आप लोगो की भी भलाई इसी में है कि उसको किसी प्रकार समझा कर मेरे हवाले कर दें।"

नहुष के क्रोध से देवता डर गये। उन्हें भय हुआ कि वे कहीं कोई अनर्थ न करदें। उन्होने आपस में सलाह कर के तय किया कि इद्र-पत्नी को समझा-बुझाकर किसी तरह नहुष के इच्छानुकल बनादें। यह विचार कर सभी देवता इकट्ठे होकर इद्राणी के पास पहुचे। उन्होने इद्र-पत्नी को नहुष की कीर्ति और तेज आदि के बारे में समझा कर आग्रह-पूर्वक अनुरोध किया कि वे देवराज की इच्छा पूरी करने में आनाकानी न करें। सती शचीदेवी यह सुन कर भय व क्रोध से काप उठी। वह बृहस्पति के पास दौडी गईं, और हाहा-कार कर के बोलीं—"मुझसे यह हो नही सकता। हे ब्राह्मणोत्तम! मै इस समय आप ही की शरण मै हूँ। इस विपद् से मेरी रक्षा करें।"

बृहस्पति ने शचीदेवी को धीरज देते हुए कहा, "शरणागत दीन को शत्रु के हाथो सौंपने वाले—दगा करने वाले—का निश्चय ही नाश हो जायगा। उसके बोये हुए बीज भी उग नही सकेंगे, सडकर मिट जायगे। निश्चय रखो कि मै तुम्हारा साथ नहीं छोडूगा। डरो नही। नहुष का सर्वनाश निकट ही है। समय के फेर से जो सकट पहुचता है वह समय के बीत जाने से ही दूर भी होता है।"

बृहस्पति ने सकट से बचने का जो मार्ग गूढ वाक्यो में शची को बताया तो प्रखर-बुद्धि इद्राणी ने उसे तुरत समझ लिया। उन्हें धीरज बधा और वह बेधडक नहुष के पास चली गईं।

इद्र-पद के घमडं और काम-वासना के कारण नहुष की बुद्धि ठिकाने नही थी। इद्राणी को देखते ही वह हर्ष से फूला न समाया। उसने सोचा कि इद्राणी अब मेरी इच्छा पूरी करने के लिए ही आई है। वह मेरी ही बन गई है। प्रेम भरे शब्दो में वह शचीदेवी से बोला—

"हे सुदरी! आज तो तीनो लोको का मै ही स्वामी हू, न्याय करने वाला हू। इसलिए पाप का भय तुम्हें नही होना चाहिए। तुम मेरी पत्नी बन जाओ।"

दुष्ट नहुष की बातें सुनकर सती इद्राणी काप उठी। फिर भी उसने अपने आपको सभाल लिया और बोली— "देवराज! धीरज धरिये! आखिर मुझे आप की ही तो होना है। पर फिर भी इस बात का पता और लगा लेना चाहिए कि इद्र अभी जीवित है या नहीं। और अगर जीवित हैं तो कहा हैं? इधर-उधर उनकी जाच-पडताल कर लेनी चाहिए। इसके बाद अगर वे न मिलें तो फिर मै निःशक होकर आपके पास चली आऊगी। तब मुझे कोई पाप नहीं लग सकता। आशा है, मेरी इस प्रार्थना को मानने में आपको कोई आपत्ति न होगी।"

यह सुनकर नहुष बहुत खुश हुआ। बोला—

"तुम्हारा कहना ठीक है। इद्र की खोज कर लेना उचित होगा। उसका पता लगा कर जरूर वापस आजाना। देखो, मुझे जो वचन दे

चुकी हो उसे न तोडना ।"

इस प्रकार नहुष को राजी करके शचीदेवी बृहस्पति के घर लौट आईं ।

●

उधर देवताओ ने भगवान् विष्णु के पास जाकर विनती की—"जगन्नाथ ! आप ही के तेज से वृत्रासुर का सहार हुआ था, किंतु ब्रह्म-हत्या का जो पाप इद्र को लगा है उससे पीड़ित होकर लोकनिंदा के डर से वे कहीं छिपे है । आप ही कोई ऐसा रास्ता बतावें कि जिससे इद्र पाप से विमुक्त हो सकें और दुष्ट नहुष से इद्र-पत्नी की रक्षा हो।"

भगवान् विष्णु बोले— "इन्द्र को चाहिए कि वह मेरी आराधना करे। मेरी भक्ति करने से उसके हृदय का कलक धुल जायगा और कामाध नहुष का भी नाश होगा ।"

●

उधर इद्राणी ने सती-देवी की पूजा करके उनके अनुग्रह से इद्र के निवास-स्थान का पता लगा लिया और वहा जा पहुचीं । इद्र ने अपना परमाणु जितना छोटा रूप बना लिया था और मान-सरोवर के एक कमल की नाल के रेशे से चिपके हुए तपस्या व भगवान् की प्रार्थना करते हुए प्रतीक्षा कर रहे थे कि कब मेरे पाप धुलकर मेरे भाग्य जागेंगे। पति की यह दशा देखकर सती शचीदेवी से न रहा गया। वह शोक-विह्वल हो कर रो पड़ीं। रोते-रोते इद्र को अपनी कष्ट-कथा भी कह सुनाई ।

इंद्र ने शची को ढाढस देते हुए कहा— "प्रिये! धीरज रखो। नहुष घोर पाप करने पर उतारू हो गया है। नहुष के अध पतन का समय अब दूर नहीं है । तुम एक काम करो । उसके पास अकेली ही चली जाओ और यह दिखाओ कि उसकी इच्छा पूरी करने को तुम राजी हो । लेकिन नहुष से यह कहना कि वह पालकी में बैठ कर तुम्हारे महल में आवे और सातो ऋषि (सप्तर्षि) उसकी पालकी उठा कर चलें। इससे नहुष का सर्वनाश हो जायगा ।"

पति की बात मानकर शचीदेवी सीधी नहुष के पास गईं। शची को देख कर नहुष बडा खुश हुआ। सोचा कि इद्राणी बात की पक्की है। बोला— "हे मगलकारिणी शची, मै तुमसे बहुत खुश हू । तुम्हारी जो भी अभिलाषा हो मै उसे पूरा करने को तैयार हू। तुमने अपने वचन का पालन किया और समय पाकर आगईं इससे मै बहुत प्रसन्न हुआ हूं।"

"आपकी प्रसन्नता को मै अपना अहोभाग्य समझती हू। आप तो सारे जगत् के अधीश है—आप ही मेरे भावी पति है। इस कारण मै आपकी इच्छा पूरी करू उससे पहले आप मेरी एक इच्छा पूरी करने की कृपा करें। आप मेरे यहा ऐसे भव्य वाहन पर सवार होकर पधारें जो भगवान् विष्णु, रुद्र या और किसी देव या असुर को भी दुर्लभ हो। मेरी इच्छा है कि उस यान को सप्तर्षि उठा कर चलें। तब मै बढ कर आपका स्वागत करूगी और आपकी हो जाऊगी।"

"सुदरी! बलिहारी है तुम्हारी कल्पना की! जिस वाहन की तुम्हारी इच्छा है वही मुझे भी बहुत पसद है। फिर मुझे यह भी वर प्राप्त है कि जिसे देखू उसीका तेज मुझ में आजाय। तो यह भी बहुत सूझ की बात है कि सातो ऋषि मेरी पालकी वहन करें। जाओ! तुम्हारी इच्छा जरूर ही पूरी होगी।" नहुष कामोन्मत्त होता हुआ बोला।

शची के अपने भवन में चले जाने के बाद नहुष ने सातो ऋषियों को बुला भेजा और आज्ञा दी कि उसकी पालकी उठा कर उसे शचीदेवी के महल पर ले चलें। ऋषियो ने लाचार होकर आज्ञा मान ली। ऋषियो का यह घोर अपमान देख कर तीनो लोक अज्ञात भय से कांप उठे।

नहुष की पालकी को उठाते हुए ऋषि ज्यो-ज्यो आगे बढ़ते जाते थे त्यों-त्यो नहुष के पाप का बोझ भी बढ़ता जाता था। नहुष के मन में तो शची की सुंदर मूर्त्ति अकित थी और उसके मिलने की कल्पना से ही वह उतावला हो उठा। जितनी जल्दी हो सके उस सुदरी को प्राप्त करने की उसकी

उत्कंठा बलवती होती गई । वह बार-बार ऋषियो को डाट कर कहने लगा कि जल्दी चलो, और जल्दी चलो । अगस्त्य मुनि को, जो पालकी उठाने वालो में से थे, उसने लात मार कर डाटते हुए कहा—"सर्प! सर्प!!"*

आज कल 'रिक्शा' चलाने वालो को रिक्शा पर बैठे लोग 'चलो! जरा जल्दी चलो!!' कह कर तेजी से चलने को कहते है। कुछ उसी प्रकार का दृश्य उस समय भी रहा होगा।

महर्षि अगस्त्य को नहुष ने जब लात मार कर डाटा तो उसके पाप का घडा लबालब भर चुका था। इस व्यवहार से अगस्त्य मुनि बडे क्रुद्ध हुए और बोले—

"अधम! अभी स्वर्ग से तेरा पतन हो। तू ने ऋषियो को 'सर्प! सर्प!' कहकर पुकारा है, इसलिए तू सर्प (अजगर) का ही जन्म लेकर मर्त्यलोक में ही पड़ा रह।"

अगस्त्य का इस प्रकार शाप देना था कि नहुष पालकी से नीचे औंधे मुह गिर पडा और अजगर का शरीर लेकर पृथ्वी में बहुत काल तक जीता और शाप से छुटकारा पाने की राह देखता रहा।

●

इद्र फिर से देवराज के पद पर सुशोभित हुआ और शची देवी का मन शात हो गया।

●

उपप्लव्य में महाराज युधिष्ठिर और द्रौपदी को यह कथा सुनाकर मद्रराज शल्य ने उनको दिलासा दिया और कहा—

"जीत उन्हीं की होती है जो धीरज से काम लेते है। ऐश्वर्य के घमड में मदाध होने वालो का नाश भी निश्चय ही हुआ करता है। युधिष्ठिर! तुमने अपने भाइयो एव द्रौपदी के साथ ठीक उसी प्रकार असख्य कष्ट उठाए जैसे इद्र और शची ने उठाए थे। शीघ्र ही तुम इन सभी कष्टो

---

*"सर्प! सर्प!!" का अर्थ होता है—"चलो! चलो!!"

से छूट जाओगे और राज्यसुख भी भोगोगे। कर्ण और दुर्योधन की बुद्धि फिर गई है। अपनी दुष्टता के फलस्वरूप निश्चय ही उनका सर्वनाश होकर रहेगा, जैसे नहुष का हुआ।

: ५५ :

राजदूत संजय

उपप्लव्य-नगर में रहते हुए पाडवो ने अपने मित्र-राजाओ को दूतो द्वारा सदेश भेज कर कोई सात अक्षौहिणी सेना एकत्र की। उधर कौरवो ने भी अपने मित्रो द्वारा काफी बड़ी सेना इकट्ठी कर ली, जो ग्यारह अक्षौहिणी थी।

आजकल के सेना-विभाग में जैसे विभिन्न दलो को मिला कर एक डिवीजन बनता है, वैसे ही उन दिनो कई विभाग मिलाकर एक अक्षौहिणी बनती थी। उन दिनों की फौजी रीति यह थी कि एक रथ, एक हाथी, तीन घोडे और पाच पैदल सिपाहियो के हिसाब से सेना इकट्ठी की जाए। एक अक्षौहिणी में २१,८७० रथ होते थे और हाथी, घोडे, पैदल आदि की सख्या उसी हिसाब से होती थी। साथ ही हर तरह के युद्ध के सामान और हथियार भी इकट्ठे हुआ करते थे। आजकल आर्मर्ड कार (बख्तर-बद गाडिया) जो काम देती है वही काम उन दिनो रथो से लिया जाता था। आजकल की लडाइयो में 'टैंको' का जो स्थान है, वही उन दिनो हाथियों को प्राप्त था।

पाचाल नरेश के पुरोहित, जो युधिष्ठिर की ओर से राजदूत बन कर हस्तिनापुर गए थे, नियत समय पर धृतराष्ट्र की राज-सभा में पहुंचे। यथाविधि कुशल-समाचार पूछने के बाद पांडवो की ओर से सधि का प्रस्ताव करते हुए वे बोले—

"अनादि-काल से जो धर्म-तत्त्व प्रचलित रहा है, वह आपको विदित

ही है। राजकुल का यह धर्म रहा है कि पिता की सम्पत्ति पर पुत्रों का अधिकार होता है। जिस प्रकार राजा धृतराष्ट्र महाराज विचित्रवीर्य के पुत्र है, उसी प्रकार महाराज पाडु भी थे। तो उनकी पैतृक सम्पत्ति पर भी दोनो का समान अधिकार होना चाहिए। लेकिन यह कहा का न्याय है कि धृतराष्ट्र के पुत्र सपूर्ण राज्य के स्वामी होजाय और पाडु-पुत्र राज्य से वचित रहे? कुरुवश के वीर पाडवो को जो कुछ कष्ट उठाना पड़ा, उस सबको वे भूल गए है और अब शाति की इच्छा रखते हुए सधि की प्रार्थना करते है। उनका विचार है कि युद्ध से ससार का नाश ही होगा और इसी कारण वे युद्ध से घृणा भी करते है—वे लडना नहीं चाहते। इसलिए न्याय एव पहले के समझौते के अनुसार यही उचित होगा कि आप उनका हिस्सा उन्हे दे देने की कृपा करें। इसमें विलब न कीजिए।"

यह सुन विवेकशील और महारथी भीष्म बोले—

"ईश्वर की कृपा से पाडव कुशल से है। कितने ही राजा उनकी सहायता करने को तैयार है। इतने शक्ति-सम्पन्न होने पर भी वे युद्ध की चाह नहीं रखते—सधि ही चाहते है। इसलिए यही न्यायोचित है कि उन्हे उनका राज्य वापस दे दिया जाय।"

भीष्म की वह बातें कर्ण को अप्रिय लगी। वह बडे क्रोध के साथ भीष्म की बात काटकर बोल उठा—"ब्राह्मण-श्रेष्ठ! आपकी बातो में कोई नयी दलील तो है नही। आप तो वही पुरानी राम-कहानी सुना रहे हैं। इससे क्या लाभ होना है? युधिष्ठिर अपने राज्य को जुए के दाव में रख कर हार चुके। अब उसे वापस मागने का उन्हे अधिकार ही क्या रहा? लेकिन शायद युधिष्ठिर इस धौंस से राज्य वापस कर देने की माग कर रहे हो कि मत्स्यराज एव पाचाल राज की सेनाए उनकी तरफ है, परतु यह युधिष्ठिर की भारी भूल है। यह बात आप साफ समझलें कि धमकी देकर दुर्योधन से कुछ प्राप्त नही किया जा सकता और फिर तेरहवा बरस पूरा होने से पहले ही उन्होने प्रतिज्ञा-भग करके अपने को प्रकट कर दिया है। इसलिए शर्त के अनुसार उनको फिर बारह

बरस के लिए वनवास भोगना पड़ेगा ।"

कर्ण के इस प्रकार बीच में उनकी बात काटकर बोलने से भीष्म को बड़ा क्रोध आया । वे बोले—"राधा के पुत्र! तुम बेकार की बातें कर रहे हो । यदि हम युधिष्ठिर के दूत के कहे अनुसार सधि न करेंगे तो निश्चय ही युद्ध छिड जायगा और उसमें दुर्योधन आदि सबको पराजित होकर मृत्यु के मुह में जाना पड़ेगा ।"

भीष्म की बातो से सभा में खलबली मचते देखकर धृतराष्ट्र बोले—"पाडवो की ही नही, बल्कि सारे ससार की भलाई को ध्यान में रख कर मैंने यह निश्चय किया है कि अपनी तरफ से सजय को दूत बनाकर पाडवो के पास भेजा जाय । हे द्विजश्रेष्ठ, आप जाकर युधिष्ठिर को इस बात की सूचना देने की कृपा करें ।"

फिर धृतराष्ट्र ने सजय को बुलाकर कहा— "सजय! तुम पांडु-पुत्रो के पास जाओ और मेरी तरफ से उनकी कुशल पूछो। फिर वहां श्रीकृष्ण, सात्यकी, विराट आदि राजाओ से भी कहना कि मैंने सप्रेम उन सबकी कुशल पूछी है । वहा जितने राजा उपस्थित है उन सबको शाति से समझा कर कहना कि धृतराष्ट्र ने उन सबको सविनय नमस्कार कहा है । ऐसी बातें न करना जो किसी को बुरी लगे या कोई नाराज हो जाए । इस तरह तुम वहा जाकर मेरी ओर से युद्ध न होने की, शाति की, चेष्टा करो ।"

संजय उपप्लव्य को रवाना हो गये । वहा पहुच कर युधिष्ठिर की सभा में सबको विधिवत् प्रणाम करके बोले—

"धर्मराज! मेरे अहोभाग्य कि मुझे फिर आपके दर्शन हुए । राजा लोगो से घिरे हुए आप ऐसे ही प्रतीत हो रहे है जैसे देवराज इंद्र । यह देख कर मेरा मन बड़ा प्रसन्न हो रहा है, मुझे असीम आनद का अनुभव हो रहा है । महाराज धृतराष्ट्र ने आपकी कुशल पूछी है और कहा है कि वे युद्ध की बात ही नहीं करना चाहते । वे तो आपकी मित्रता ही चाहते है और शांति की इच्छा रखते है ।"

संजय की य बातें सुन कर राजा युधिष्ठिर बडे प्रसन्न हुए और बोले–“यदि यही बात है तो धृतराष्ट्र के पुत्रो की रक्षा हो गई। हम सब भी दारुण दु ख से बच गए। मै भी सधि ही चाहता हू। युद्ध का विचार करते ही मेरा मन घृणा से भर जाता है। यदि हमें अपना राज्य वापस मिल जाय तो हम अपने सारे कष्ट भूल जायेंगे।”

सजय ने कहा––“युधिष्ठिर ! धृतराष्ट्र के पुत्र निरे मूर्ख है। वे न पिता की बात पर ध्यान देते है, न भीष्म की ही कुछ सुनते है। वे तो अपनी ही मूर्खता की धुन में मस्त रहते है। फिर भी आपको उत्तेजित न होना चाहिए। आप सदा से ही न्याय एव धर्म पर स्थिर रहे है। आप युद्ध की चाह न करे। युद्ध करके जो सपत्ति प्राप्त की जाती है, उससे कभी सुख की आशा नहीं की जा सकती। बधु-बाधवो का वध करके जो राज्य प्राप्त किया जाय उससे किसी की कुछ भी भलाई नहीं हो सकती। अत राजन्, आप युद्ध का विचार तक न करे। समुद्र तक फैले हुए विशाल राज्य को प्राप्त कर लेने के बाद भी यह किसी के बस की बात नहीं है कि वह बुढापे और मृत्यु पर विजय पाले। यद्यपि दुर्योधन और उसके साथी मूर्खता करने पर ही तुले हुए है, तथापि आप तो अपना धर्म एव अपनी क्षमाशीलता कदापि न छोडें। चाहे दुर्योधन आपको आपका राज्य वापस देने से इन्कार भी क्यो न करदे तो भी आपको चाहिए कि आप न्याय के मार्ग से विमुख न हो।”

सजय की ये बाते सुन कर युधिष्ठिर बोले––“सजय ! सभव है तुम्हारी बाते सच हो और इसमें तो सदेह ही क्या है कि धर्म ही सबसे बडी चीज है। लेकिन हम अपनी ओर से तो अधर्म पर उतारू हो नहीं रहे है। श्रीकृष्ण धर्म का मर्म जानते है। वे दोनो पक्ष के लोगो के हित-चितक है। वे जो सलाह देंगे वैसा ही मैं करूगा।”

श्रीकृष्ण बोले–– “जहा एक तरफ मै पाडवो की भलाई चाहता हू वहां यह भी चाहता हू कि धृतराष्ट्र के पुत्र भी सुख-पूर्वक रहे। यह बडी जटिल समस्या है, जिसका हल करने के लिए मै स्वय हस्तिनापुर जाना उचित समझता हू। मेरी यही इच्छा है कि पाडवो के हित को किसी तरह की

चोट पहुचाये बिना कौरवो से सधि करली जा सकती हो तो करली जाय। यदि मै इस में कृतकार्य हो जाऊ तो कौरवो के भी प्राण बच जायेंगे और मुझे भी पवित्र कार्य करने का यश प्राप्त होगा। यदि शाति स्थापित हो गई तो फिर पाचो पाडव, महाराज धृतराष्ट्र की सेवा-टहल तक करने को प्रस्तुत होगे। शाति ही की वे इच्छा रखते है, परतु साथ ही वे युद्ध के लिए भी तैयार है। अब यह महाराज धृतराष्ट्र का ही काम है कि दोनो बातो में से जिसे चाहें, पसद करले।"

श्रीकृष्ण के बाद युधिष्ठिर फिर बोले—"सजय! कौरवो की राज-सभा में जा कर महाराज धृतराष्ट्र को मेरी तरफ से प्रार्थनापूर्वक यह सदेशा सुनाना—'महाराज! यह आप ही की उदारता का फल था कि हमें प्रारभ में ही राज्याभिषेक का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उन दिनो आप ही ने तो मुझे राजा बनाया था। अब आप ही हमें राज्य-सपत्ति से वचित करके अनाथो की भाति दूसरो के मोहताज न बनावें। दोनो पक्ष वालो के लिए, क्या इस विशाल ससार में सुख-पूर्वक जीवन बिताने के लिए, पर्याप्त स्थान नही है जो हम एक दूसरे के साथ शत्रुता करे।' इस प्रकार धृतराष्ट्र को आप मेरी यह प्रार्थना सुना देना।

"पितामह भीष्म को भी मेरा प्रणाम कहे और मेरी तरफ से उनसे यह अनुरोध करे कि वे ऐसा कोई उपाय करे जिससे उनके सभी पौत्र प्रेम-पूर्वक जीवन बिता सके। यही सदेश चाचा विदुर को भी सुनाइयेगा। विदुर ही हमारे हित का उपाय बता सकेगे और दुर्योधन को समझा कर मेरा यह सदेश सुनावें कि 'प्रिय भाई, राजकुमार हो कर यदि हमें मृगछाला पहन कर वनवास करना पड़ा तो वह तुम्हारे ही कारण। तुम्हींने हमारी पत्नी का राज-सभा में घोर अपमान किया, जिस से माता कुती रो पडी थीं। हमने यह सब सह लिया, तुम हमें हमारा न्यायोचित अधिकार दे दो। अभी भी समय है। पराई संपत्ति की चाह न करना। कम-से-कम हमें पाच गांव तो दे देना। हम पाचो भाई इसी से सतोष कर लेगे और सधि करने को तैयार होगे। हे भाई, हम सभी हिल-मिलकर रहे और सतोष के साथ

दिन बितायें, ऐसी मेरी इच्छा है।' सजय ! दुर्योधन को मेरा यही सदेश सुना देना। मै तो शांति के लिए भी तैयार हू और युद्ध के लिए भी।"

युधिष्ठिर के ये सदेश लेकर सजय, पाडवो तथा श्रीकृष्ण से बिदा हो कर, हस्तिनापुर को रवाना हो गये।

: ५६ :

सुई की नोक जितनी भूमि भी नहीं

सजय को पाडवो के पास भेजने के बाद महाराज धृतराष्ट्र चिंता के मारे बडे व्याकुल रहे। रात भर उन्हे नींद नहीं आई। उन्होने विदुर को बुला भेजा और उनके आने पर उनके साथ ही बाते करते हुए सारी रात बिताई।

विदुर ने धृतराष्ट्र को समझाकर कहा—"राजन् ! पाडवों को राज्य वापस दे देना ही उचित होगा। दोनो पक्ष के लोगो की भलाई इसी में है। आपको चाहिए कि पाडवो के साथ आप वही व्यवहार करे जो अपने पुत्रों से करते रहे है। न्याय न केवल धर्म के बल्कि युक्ति के भी अनुकूल होता है।" विदुर इस प्रकार कई तरह से धृतराष्ट्र को उपदेश देते रहे।

दूसरे दिन सवेरे सजय पांडवो के पास से हस्तिनापुर लौट आये। राज-सभा में आकर उन्होने युधिष्ठिर की सभा में जो चर्चा हुई थी उसका सारा हाल कह सुनाया। फिर बोले—

"खास कर दुर्योधन को चाहिए कि अर्जुन की बाते ध्यान से सुनें। अर्जुन ने कहा है कि इसमें कोई सदेह ही नहीं है कि श्रीकृष्ण और मै दोनो मिल कर दुर्योधन और उनके साथियो का नाश करके ही रहेगे। मेरा गाडीव धनुष युद्ध के लिए लालायित हो रहा है। धनुष की डोरी आप ही आप टकार कर उठती है। तरकश से बाण ऊपर झाक कर पूछ रहे है—'कब ? कब ?' मूर्ख दुर्योधन का विनाशकाल निकट पहुच चुका है। यही

कारण है कि वह हमें युद्ध के लिए छेड रहा है। उसे पता नहीं है कि जो अर्जुन सारे देवताओ को पराजित करने की सामर्थ्य रखता है वह दुर्योधन की क्या गत न बनायेगा, यही धनजय का कहना था।"

सजय के इस प्रकार कहने पर भीष्म ने दुर्योधन को दुबारा समझा कर कहा—"दुर्योधन! अर्जुन और श्रीकृष्ण को नर-नारायण का अवतार समझना। जब वे दोनो इकट्ठे होकर तुम्हारे विरुद्ध लडने लगेंगे तब तुम्हे इस बात की सचाई मालूम हो जायगी।"

दुर्योधन को समझाने के बाद भीष्म धृतराष्ट्र से बोले—"राजन्! सूत-पुत्र कर्ण बार-बार यही दम भर रहा है कि मै पाडवो को खत्म कर डालूगा। किंतु मै कहता हू कि पाडवो की शक्ति का सोलहवा हिस्सा तक भी उसमें नहीं है। तुम्हारा पुत्र उसीका कहा माना करता है और अपने नाश का आप ही आयोजन कर रहा है। विराट नगर पर आक्रमण करते समय जब अर्जुन ने हमारा दर्प चूर किया था, कर्ण वहीं तो था! वह वहा कुछ कर भी सका? गधर्व जब दुर्योधन को कैद करके ले गये तब यह ढपोलशख कर्ण कहा छिप गया था? गधर्वों को अर्जुन ही ने तो भगाया था और दुर्योधन को उनसे मुक्त किया था।"

धृतराष्ट्र ने बडे सतप्त हो कर दुर्योधन को समझाया—"बेटा, भीष्म जो कहते है वही करने योग्य है। युद्ध न होने दो। सधि ही करना उचित है। यह सब मै अनुभव करता हू, परतु क्या करू? मै कितनी ही बार क्यो न समझाऊ, फिर भी ये मूर्ख अपने ही रास्ते जा रहे है। जिन में विवेक और अनुभव है, वे सब एक स्वर से कहते है कि संधि ही कर लेनी चाहिए। मेरी भी यही राय है कि पाडवो से सधि करले। पर पता नहीं, क्यों तुम इन सब पर ध्यान नहीं देते?"

दुर्योधन, जो ये सब बातें सुन रहा था, उठा और अपने पिता का साहस बधाता हुआ बोला—"पिताजी, आप तो ऐसे भय-विह्वल हो रहे हैं, मानो हम सब कमजोर से भी कमजोर है। जितना सेना-बल चाहिए था, उतना हमने इकट्ठा कर लिया। अब इसमें कोई सदेह नहीं रहा कि

हम विजय अवश्य प्राप्त करेंगे। आप भी कैसे भोले लोग है जो यह भी नहीं समझते है कि स्वय युधिष्ठिर हमारा सैन्य-बल देखकर घबरा उठे है और इसी कारण से आधे राज्य की बात छोडकर अब केवल पाच गावो की ही याचना कर रहे है। क्या इस पाच गावो वाली माग से यह नहीं सिद्ध होता कि हमारी ग्यारह अक्षौहिणी सेना देखकर युधिष्ठिर के मन में भय हो गया है ? आप मुझे यह बताइये कि ग्यारह अक्षौहिणी सेना का पाडव अपनी सात अक्षौहिणी सेना से कैसे मुकाबला कर सकेंगे ? इतने पर भी आपको हमारी विजय के बारे में सदेह हो रहा है! महान् आश्चर्य है!"

धृतराष्ट्र ने फिर समझाते हुए कहा—"बेटा, जब पाच गाव देने से ही युद्ध टलता है तो युद्ध से बाज आओ। इसमें तुमको क्या आपत्ति है ? तुम्हारे पास तो फिर भी पूरा-का-पूरा ही राज्य रह जाता है। अब हठ न करो।"

लेकिन इस उपदेश से दुर्योधन चिढ गया और तेज होकर बोला—"मै तो सुई की नोक बराबर भूमि भी पाडवो को नहीं देना चाहता। आपकी जो इच्छा हो, करें। अब इसका फैसला तो युद्ध-भूमि में ही होगा।" यह कहता-कहता दुर्योधन उठ खडा हुआ और बाहर चला आया। सभा में खलबली मच गई और गडबडी में सभा भग हो गई।

• ● •

इधर सजय के उपप्लव्य से रवाना हो जाने के बाद युधिष्ठिर श्रीकृष्ण से बोले—"वासुदेव! सजय धृतराष्ट्र के मानो दूसरे प्राण है। उनकी बातों से मुझे धृतराष्ट्र के मन की बात स्पष्ट रूप से मालूम हो गई। धृतराष्ट्र हमें कुछ दिये बिना ही सधि कर लेना चाहते है। पहले सजय ने मीठी बातें कीं तो मै बडा प्रसन्न हुआ। किंतु बाद में उन्होंने जो कुछ कहा, उससे मेरी प्रसन्नता चली गई। उनका वह कहना मुझे घोर अन्याय प्रतीत हुआ। धृतराष्ट्र ने हमसे सचाई नहीं बरती। परीक्षा का समय अब आ ही गया मालूम होता है। इस सकट भरी घडी में आपको छोडकर और कोई हमारी रक्षा नहीं कर सकता। मैने तो कहला भेजा है कि मै तो केवल पाच ही गावो से सतोष मान लूगा। किंतु ऐसा लगता है कि वे दुष्ट इतना

भी देने को तैयार न होगे। आप ही बताइये कि यह अन्याय सहा भी जाय तो कैसे ? इस बारे में आप ही हमें सलाह दे सकते है। धर्म, नीति एव युक्ति के जानकार आपके सिवाय हमारे लिए और कोई नहीं है।"

युधिष्ठिर की ये बातें सुनकर श्रीकृष्ण ने कहा— "युधिष्ठिर ! दोनो पक्ष के लोगो की भलाई के हित मैने एक बार स्वय हस्तिनापुर जाने का इरादा कर लिया है। धृतराष्ट्र की सभा में जाऊगा और तुम लोगो के स्वत्वो को बिना युद्ध के बचाने की चेष्टा करूगा। यदि मै सफल हुआ तो इससे सारे ससार का ही कल्याण होगा।"

युधिष्ठिर ने कहा— "श्रीकृष्ण ! मुझे लगता है कि आप वहा न जाय। इस अवसर पर शत्रुओ के बीच आपका जाना ठीक नहीं मालूम देता। और वहां जाने से कुछ हो सकता है, ऐसा भी मुझे नहीं लगता। दुर्योधन ऐसा व्यक्ति नहीं जो अपना हठ छोड दे। फिर उसका कोई ठिकाना नहीं कि वह कब क्या कर बैठे ? इस कारण आपको ऐसी जगह भेजने की मेरी जरा भी इच्छा नहीं है। मुझे भय है कि कहीं वह आप पर ही कुछ न कर बैठे।"

श्रीकृष्ण बोले— "धर्मपुत्र ! मै दुर्योधन से भली भाति परिचित हू। फिर भी हमें प्रयत्न तो करना ही चाहिए, जिससे मुझे या तुम लोगो को ससार के लोग कोई दोष न दे सकें। किसीको यह कहने की गुजाइश ही मै नहीं रखना चाहता कि मैने शाति स्थापित करने का जो प्रयास करना चाहिए था वह नहीं किया। मै शाति की ही बातचीत करने के लिए दूत बनकर जा रहा हू। मेरा वे बिगाड ही क्या सकते है ? और अगर उन्होने कुछ छेडछाड की तो मै उन्हें वहीं खत्म कर दूगा। भले ही मेरे शातिदूत बनकर जाने से शाति स्थापित न हो सके, पर फिर भी कम-से-कम इतना तो होगा कि कोई हमें इस बात का दोषी नहीं ठहरा सकेगा कि हमने सधि के लिए कोई कसर छोडी। इसलिए मेरा तो जाना ही ठीक होगा। तुम इसमें आपत्ति न करो।"

इस पर युधिष्ठिर बोले— "श्रीकृष्ण ! आप तो सर्वज्ञ है। हमारे

गुणो व अवगुणो का पूर्ण ज्ञान आपको है और उनके गुणो व अवगुणो का भी। किसी बात को समझाने या किसी बात का समर्थन करने में आपसे चतुर कौन हो सकता है ? अत हम अपनी स्थिति आपको और क्या बतायें ?"

यह सुन श्रीकृष्ण बोले— "अजातशत्रु ! मै तुम्हारे मन की बात जानता हू। तुम्हारा मन सदा धर्म पर ही स्थित रहता है, धर्म का ही विचार करता रहता है। किंतु दुर्योधनादि के हृदयो में द्वेष ही भरा रहता है। जो-कुछ कहना होगा मै सब वहा अवश्य उनसे कहूगा और हर उचित ढग से उन्हें समझाने का प्रयत्न करूगा। मै भलीभाति जानता हूं कि शाति-पूर्ण ढग से बिना युद्ध के जो भी प्राप्त हो, बहुत थोडा होने पर भी तुम उसीको अधिक समझोगे। इस बात को ध्यान में रखते हुए मै उनसे समझौते की बातचीत करूगा। जो उत्पात हो रहे है उनसे तो युद्ध होने की ही सूचना मिलती है। फिर भी कर्त्तव्य की प्रेरणा है कि हम शाति की यह अतिम चेष्टा करें।"

इतना कहकर श्रीकृष्ण हस्तिनापुर के लिए बिदा हुए।

: ५७ :

शांतिदूत श्रीकृष्ण

शाति की बातचीत करने के उद्देश्य से श्रीकृष्ण हस्तिनापुर को गये। उनके साथ सात्यकी भी गये।

प्रस्थान करने से पहले श्रीकृष्ण काफी देर तक पाडवो से चर्चा करते रहे। पाचों भाइयो ने शाति को ही पसद किया यहातक कि वीर भीमसेन ने भी यही कहा कि युद्ध से सारे वश का नाश हो जायगा। हम सबो के लिए सधि कर लेना ही श्रेयस्कर होगा।

इससे यही सिद्ध होता है कि पराक्रमी और वीर लोग शातिप्रिय ही

हुआ करते है। शातिप्रियता कायरता नहीं हुआ करती ।

लेकिन द्रौपदी की राय कुछ और ही थी । दुर्योधन और उनके भाइयो के हाथो हुए अपमान को वह भूल न सकी । अपने बिखरे बालो को हाथ में लिये शोक-विह्वल-सी होकर वह श्रीकृष्ण के सामने खडी हो गई और बोली—

"मधुसूदन ! मेरे इन बिखरे केशो को तो जरा देखो । फिर जो कुछ उचित हो करना । अर्जुन और भीम भले ही युद्ध न करें । मेरे पिता तो बूढे ही है । फिर भी वे मेरे पाचो छोटे-छोटे पुत्रो को साथ लेकर युद्ध के मैदान में जा डटेंगे । पिताजी भी युद्ध करने न आयें तो न सही । सुभद्रा का पुत्र अभिमन्यु तो है । उसको अगुआ बनाकर मेरे पाचो बेटे कौरवो से लडेंगे । हृदय में प्रतिहिसा की जो आग धुआ दे रही है, उसे युधिष्ठिर की खातिर तेरह साल तक मैंने दबाये रक्खा— भडकने न दिया । लेकिन अब मुझसे सहा नही जायगा ।" यह कहते-कहते द्रौपदी की आखें डबडबा आईं । उसका गला रुध गया ।

पाचालराज-पुत्री द्रौपदी को इस प्रकार दु खी होकर बोलते देखा तो श्रीकृष्ण कह उठे—"रोओ मत, बहन कृष्णा ! रोने का कोई कारण नही है । शाति-स्थापन की जो शर्तें मैं रक्खूगा, उन्हे धृतराष्ट्र के बेटे नहीं मानेंगे और फलत युद्ध होकर ही रहेगा । युद्ध-क्षेत्र में पडी कौरवो की लाशें कुत्तो और सियारों का आहार बनेंगी । यह निश्चित बात है । अब थोडे ही दिन और रह गये है और तुम देखोगी कि तुम्हारे अपमान का बदला लिया जायगा और तुम्हारी ही विजय होगी । तुम दु खी न होओ ।"

इस प्रकार द्रौपदी को सात्वना देकर श्रीकृष्ण बिदा हुए। रास्ते में कुशस्थल नामक स्थान में एक रात ठहरे और वहा विश्राम किया ।

हस्तिनापुर में जब यह खबर पहुची कि श्रीकृष्ण पाडवो की ओर से दूत बनकर सधि-चर्चा के लिए आ रहे है तो सारे नगर में बडी उत्कठा की लहर दौड गई । धृतराष्ट्र ने आज्ञा दी कि नगर को खूब सजाया जाय । पुरवासियो ने द्वारकाधीश के स्वागत की धूमधाम से तैयारिया कीं ।

दु शासन का भवन दुर्योधन के भवन से अधिक ऊचा और सुदर था, इसलिए धृतराष्ट्र ने आज्ञा दी कि उसी भवन में सपरिवार श्रीकृष्ण को ठहराने का प्रबध किया जाय। नगर के बाहर जिस रास्ते से श्रीकृष्ण का रथ आ रहा था, स्थान-स्थान पर उनके विश्राम आदि के लिए सत्कार-मडप बनाये गये थे ।

इसी बीच विदुर से भी धृतराष्ट्र ने सलाह की। कहा—"विदुर ! वासुदेव के लिए हाथी, घोडे, रथ आदि उपहार-भेंट करने का प्रबध करो । और भी कई तरह के उपहार उन्हे भेंट किये जाय—ऐसी मेरी कामना है ।"

विदुर ने कहा—"राजन् ! आपका विचार ठीक नहीं। गोविंद ऐसे व्यक्ति नहीं, जो इन प्रलोभनो से वश में आजाय । वे हमारे यहा जिस उद्देश्य से आ रहे है उसे सफल बनाने से ही उन्हे सतुष्ट किया जा सकता है। श्रीकृष्ण शाति-दूत बनकर आरहे है । आपस में सधि करा देने से ही उनको प्रसन्न किया जा सकेगा, पार्थिव उपहारो से नहीं ।"

श्रीकृष्ण हस्तिनापुर पहुच गये। नगर का हर मार्ग, गली और कूचा खूब सजाया गया था। सडको पर लोगो की बडी भीड थी। सब श्रीकृष्ण को देखने की इच्छा से इकट्ठे हुए थे । इस कारण कृष्ण को रथ की गति धीमी करनी पडी । रथ धीरे-धीरे धृतराष्ट्र के भवन के पास जा पहुचा ।

पहले श्रीकृष्ण धृतराष्ट्र के भवन में गये। वहा उनका राजोचित सत्कार किया गया । फिर धृतराष्ट्र आदि से बिदा लेकर वे विदुर के भवन में गये । माता कुती वहीं श्रीकृष्ण की प्रतीक्षा में बैठी थीं। श्रीकृष्ण को देखते ही उन्हे अपने पुत्रो का स्मरण हो आया। उनसे न रहा गया, जी भर आया। आखो से आसू उमड पडे ।

श्रीकृष्ण ने उन्हे मीठे वचनो से सात्वना दी और उनसे बिदा लेकर दुर्योधन के भवन में गए। दुर्योधन ने श्रीकृष्ण का बढिया स्वागत किया और उचित आदर-सत्कार करके भोजन का न्यौता दिया । श्रीकृष्ण ने कहा—"राजन् ! मै अब राजदूत बनकर आया हू । राजदूतो का यह नियम होता है कि जबतक उनका कार्य सफल न होजाय तबतक भोजन न करें । जिस

उद्देश्य को लेकर मै यहा आया हुआ हू वह पूरा होजाय तब मुझे भोजन का न्यौता देना उचित होगा ।" यह कहकर वे विदुर के यहा लौट गये और वहा भोजन करके विश्राम किया ।

●

इसके बाद श्रीकृष्ण और विदुर में आगे के कार्यों के बारे में सलाह हुई । विदुर ने कहा— "भीष्म, द्रोण आदि महारथी दुर्योधन की सहायता करने पर विवश है, इसलिए दुर्योधन मदाध हो गया है । वह सोचता है कि कौरवो को कोई हरा नहीं सकेगा । ऐसे मूर्ख के साथ शाति की बातें करना निष्फल ही साबित होगा । जो लोग दुष्ट है और निकृष्ट से निकृष्ट काम करते नही सकुचाते, उनकी सभा में आपका जाना भी उचित नही ।"

दुर्योधनादि के गुणो से जो भी परिचित थे, उनका भी यही कहना था कि कोई-न-कोई कुचक्र रचकर श्रीकृष्ण के प्राणो तक को हानि पहुचाने की वे लोग चेष्टा करेंगे ।

विदुर की बातें ध्यान से सुनने के बाद श्रीकृष्ण बोले—

"आपने जो कुछ कहा, बिलकुल ठीक कहा । मुझे भी यह आशा नहीं है कि शाति स्थापित करना सभव होगा । फिर भी लोग हमें दोष न दे सकें, इसी उद्देश्य से सधि का प्रस्ताव लेकर मै आया हू । मेरे प्राणो की चिंता आप न करें ।"

दूसरे दिन सवेरे, दुर्योधन और शकुनि ने आकर श्रीकृष्ण से कहा— "महाराज आपकी प्रतीक्षा कर रहे है ।" इस पर विदुर को साथ लेकर श्रीकृष्ण धृतराष्ट्र के भवन में गये ।

वासुदेव के सभा में प्रविष्ट होते ही सभी सभासद उठ खडे हुए । श्रीकृष्ण ने बडो को विधिवत् नमस्कार किया और आसन पर बैठे । राजदूत एव सभ्रांत अतिथि का-सा उनका सत्कार किया गया । इसके बाद श्रीकृष्ण उठे और पाडवो की माग सभा के सामने रक्खी और फिर धृतराष्ट्र की ओर देखकर बोले—

"राजन् ! प्रजा का नाश करने वाला रास्ता न पकड़िये । जो आपका

हित है, उसे आप अहित समझे बैठे है और बुराई को भलाई समझते है । पिता के नाते यह आपका कर्त्तव्य है कि पुत्रो पर काबू रखें और उनको सही रास्ते पर लाय । पाडव शाति-प्रिय हैं, परतु साथ ही यह भी समझ लीजिए कि वे युद्ध के लिए भी तैयार है । पाडव आपको पिता-रूप मानते हैं और आपकी अधीनता में सुखपूर्वक रहना चाहते है । आप भी उनको अपना पुत्र समझें और ऐसा उपाय करें जिससे आपके भाग जाग जाय ।"

यह सुन धृतराष्ट्र ने कहा— "सभासदो ! मुझे दोषी न समझा जाय । मै भी वही चाहता हू जो श्रीकृष्ण को प्रिय है । किंतु करू क्या ? मुझमें इतनी शक्ति नही कि पुत्रो से अपनी आज्ञा मनवाऊ । मै निर्दोष हू, लेकिन विवश भी । श्रीकृष्ण ! तुम्हीं मेरे पुत्र दुर्योधन को समझाओ न ।"

इस पर श्रीकृष्ण बोले— "दुर्योधन ! महान् लोगो के वशज होकर तुम्हारे लिए यही उचित था कि धर्म के पथ पर चलते, परतु अभी तुम जो विचार कर रहे हो, वह तो नीच कुल का-सा ही है । लोगो को भय है कि कही तुम्हारे कारण इस यशस्वी कुल का नाश न होजाय । मै इतना ही करना चाहता हू कि पाडवो का आधा राज्य लौटा दो और उनके साथ सधि करलो । यदि यह बात हो गई तो स्वय पाडव तुम्हे युवराज और धृतराष्ट्र को महाराज के रूप में सहर्ष स्वीकार कर लेंगे ।"

भीष्म और द्रोण ने भी दुर्योधन को बहुत समझाया । फिर भी दुर्योधन ने अपना हठ नहीं छोडा । श्रीकृष्ण का प्रस्ताव स्वीकार करने पर वह राजी न हुआ ।

"दुर्योधन की करतूत से गाधारी एव धृतराष्ट्र को जो पीडा पहुच रही है, उसीसे मुझे दु ख होता है ।" विदुर ने कहा ।

धृतराष्ट्र ने दुबारा पुत्र से आग्रह करके कहा कि श्रीकृष्ण का प्रस्ताव मानले, नहीं तो कुल का सर्वनाश हो जायगा ।

भीष्म और द्रोण ने भी बार-बार दुर्योधन को समझाया और सही रास्ते पर लाने का प्रयत्न किया । कहा—"सधि कर लेने में ही तुम्हारी भलाई है । युद्ध का विचार छोड़ दो ।"

जब सबने इस प्रकार बार-बार आग्रह किया तो दुर्योधन उठकर अपने पक्ष का समर्थन करने लगा। बोला— "मधुसूदन, आप पाडवों के हितैषी है। यही कारण है कि हर तरह से आप मेरी निदा करने और मुझे दोष देने लगे है। सभी सभासद मेरे ही सिर पर दोष मढ रहे है, किंतु इसमें मेरा कसूर ही क्या है ? मुझे तो अपना कोई दोष नहीं दीखता। चौपड का खेल युधिष्ठिर ने अपनी खुशी से खेला और राज्य गवा बैठे। अब आप ही बतावें कि इसमें मेरा क्या दोष हो सकता है? मुझ पर नाहक क्यो सारा दोष मढ़ा जा रहा-है ? खेल में वे हारे और शर्त के अनुसार बन में गये। मैंने कौनसा ऐसा अपराध किया कि जिसके लिए अब वे युद्ध छेडकर हम सबको नष्ट कर देना चाहते हैं ? सेना-बल से और धमकी से मानने वाले हम नहीं है। जब मै निरा बालक था आप ही लोगो ने पाडवो को राज्य का आधा हिस्सा दिलाया था। उसपर उनका कोई अधिकार न था। वश की देखभाल करने वाले वृद्ध लोगो ने यह जो किया वह न जाने भय के कारण किया, अथवा नासमझी के कारण, मै नहीं जानता। पर उस समय तो मैंने उनकी बात मानली थी। उसके बाद पाडव फिर उसे खुद ही गवा बैठे। तो फिर अब मै उसे वापस देने को राजी कैसे हो सकता हू ? मै तो सुई की नोक भर जमीन भी उन्हे बिना युद्ध के देने को तैयार नहीं हू।"

दुर्योधन ने अपने आपको निर्दोष सिद्ध करने की जो चेष्टा की उससे श्रीकृष्ण को हसी आगई। वे बोले— "नासमझ दुर्योधन ! शकुनि के साथ कुमन्त्रणा करके तुम्हींने तो चौसर का कुचक्र रचा था ! द्रौपदी को भरी सभा के सामने घसीट लाकर अपमानित करना तुम्हारा ही तो काम था। इतना सब कुछ करने पर अब यह सिद्ध करने का तुम प्रयत्न कर रहे हो कि तुमने कोई अपराध नहीं किया !"

यह कहकर श्रीकृष्ण ने दुर्योधन को उन सब अत्याचारो का विस्तृत रूप से स्मरण दिलाया जो उसने पांडवो पर किये थे।

भीष्म, द्रोण आदि प्रमुख वृद्धो ने भी श्रीकृष्ण के इस वक्तव्य का समर्थन किया।

यह देखकर दु.शासन क्रुद्ध हो उठा और दुर्योधन से बोला— "भाई, मालूम होता है, ये लोग अभी आपको कैद करके पाडवो के हवाले कर देंगे । चलिए, यहासे निकल चलें। हमें यहां अधिक देर नही रहना चाहिए ।"

इस पर दुर्योधन उठा और भाइयो के साथ सभा से बाहर चला गया ।

श्रीकृष्ण ने सभासदो से कहा— "महाजनो ! सारे वश की रक्षा के लिए कभी-कभी एक व्यक्ति का बलिदान देना ही पडता है । शिशुपाल और कंस के मारे जाने पर यादव एव वृष्णिकुल के लोग सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने पाये है । आप तो जानते ही हैं कि सारे देश की भलाई के हित एक गाव को त्याग देना पड जाता है । इसी रीति के अनुसार आप लोग भी अपने वश की रक्षा के हित दुर्योधन का त्याग करदें ।"

इसी बीच धृतराष्ट्र ने विदुर से कहा कि तुम गाधारी को जरा सभा में ले आओ । उसकी सूझ बहुत स्पष्ट है और वह दूर की सोचा करती है । हो सकता है, उसकी बातें दुर्योधन को स्वीकार हो जाय ।" यह सुन विदुर ने राजसेवको को आज्ञा देकर देवी गाधारी को बुला लाने को भेजा ।

गाधारी सभा में आई और धृतराष्ट्र से कहकर दुर्योधन को सभा में फिर बुलाया गया ।

दुर्योधन सभा में लौट आया । क्रोध के कारण उसकी आखें लाल हो रही थी । गाधारी ने भी उसे कई तरह से समझाया, परतु दुर्योधन ये बातें मानने वाला कब था ? अपनी मा को भी उसने नाहीं कर दिया और दुबारा सभा से निकलकर चला गया ।

बाहर जाकर दुर्योधन ने साथियो के साथ मिलकर एक षड्यत्र रचा और राजदूत श्रीकृष्ण को पकडने का प्रयत्न किया । श्रीकृष्ण ने तो पहले ही से इन सब बातो की कल्पना करली थी । दुर्योधन की व्यर्थ चेष्टा देखकर वे हस पडे और अपना विश्व रूप धारण कर लिया । व्यासजी कहते है कि उस समय जन्म के अधे धृतराष्ट्र को भी दिव्यचक्षु प्राप्त होगए और उन्होने भी भगवान कृष्ण के विश्वरूप के दर्शन किये ।

यह देखकर धृतराष्ट्र विस्मय में आगये और प्रार्थना की—"हे कमल-नयन ! अहोभाग्य मेरा कि आपके विश्वरूप के दर्शन प्राप्त हुए । अब इन नेत्रो से और किसीको देखना नहीं चाहता । मेरी दृष्टि फिर से नष्ट हो जाय ।"

यह प्रार्थना करते ही धृतराष्ट्र की दृष्टि चली गई । वे फिर से अधे होगये । वे श्रीकृष्ण से बोले— "जनार्दन, हमारी सारी चेष्टायें व्यर्थ ही गईं । दुर्योधन सही रास्ते पर आता दिखाई नहीं देता ।"

यह सुन श्रीकृष्ण उठे । सात्यकी और विदुर उनके दोनो ओर होगए । श्रीकृष्ण ने तब सब सभासदो से विधिवत आज्ञा ली और सभा से चलकर सीधे देवी कुती के पास पहुचे । उनको सभा का सारा हाल कह सुनाया ।

कुती बोली—"जाकर मेरे पाचो पुत्रो को मेरे शुभाशीर्वाद कहना । जिस उद्देश्य के लिए क्षत्रिय-मातायें पुत्र जन्मती है उस उद्देश्य की पूर्ति का समय आ पहुचा है । अब तुम्हीं मेरे पुत्रो की रक्षा करना ।"

क्षत्रिय-स्त्री पुत्रो को जन्मती है तो युद्ध में उनकी बलि चढ़ाने ही के लिए।

पुरुषोत्तम कृष्ण अपने रथ पर आरूढ़ होकर उपप्लव्य की ओर तेजी से रवाना हो गये ।

अब युद्ध अनिवार्य ही हो गया था ।

: ५८ :

वात्सल्य एवं कर्त्तव्य

श्रीकृष्ण के हस्तिनापुर से लौटते ही शाति-स्थापना की जो थोडी-बहुत आशा रही थी, वह भी लोप हो गई । कुती देवी को जब पता चला कि कुलनाशी युद्ध छिड़ेगा ही तो वह बड़ी व्याकुल हो उठीं ।

एक ओर तो यह भय था कि सभव है वश का सर्वनाश न हो जाय, दूसरी ओर क्षत्रियोचित सस्कृति की प्रेरणा थी कि समर-भूमि में खेत रहना ही पुत्रो के लिए श्रेयस्कर होगा। वह पुत्रो से कैसे कहतीं कि अपमान की कडवी घूट पीकर रह जाय जिससे युद्ध न होने पावे ? यदि कहती भी हैं, तो क्षत्रवीर पांडव उनकी मानते भी क्यो ? वे तो लडेंगे ही। तो फिर ? नतीजा यही न होगा कि सारे वश का आमूल उच्छेदन हो जाय ! जब वश का ही नाश हो जाय तो फिर उससे किसीको क्या फायदा पहुच सकता है ? तबाही के परिणाम-स्वरूप कहीं सुख प्राप्त होता है ? हा दैव ! यह भी कैसी दुविधा है ! कैसे इससे बच पाऊ ?

माता कुती के मन में इसी प्रकार भय एव वीरता में घोर खींचतान-सी हो रही थी। मन में एक हूक-सी उठती—

"भीष्म, द्रोण, कर्ण जैसे अजेय महारथियो को मेरे पुत्र कैसे परास्त कर पायगे ? इन तीनो महावीरो का विचार करते ही मन सिहर उठता है। औरो की तो कोई बात ही नहीं। कौरवो की सेना में ये तीनो ही ऐसे हैं जो मेरे पुत्रो के प्राणहारी बन सकते हैं। उनमें से आचार्य द्रोण शायद मेरे पुत्रो का वध न करें। शिष्यो पर अपने प्यार के कारण, या शिष्यो से लडना उचित न समझ कर, वे मेरे पुत्रो को जीवित छोड दें तो आश्चर्य नहीं। पितामह भीष्म की भी यही बात हो सकती है। अपने पोतो के प्राणो के प्यासे वे नहीं होगे। रहा कर्ण ! उसीका मुझे डर है। दुर्योधन की मनचाही करने की खातिर मेरे पुत्रो को मारने की कर्ण ने ठान रक्खी है। पाडवो के नाम से ही उसे घृणा है। वीर भी तो वह बडा है। जब भी उसका विचार मन में उठता है, एक भयकर-सी आग मन में धधक उठती है। मेरा जेठा लडका अपने ही भाइयो के प्राणो का प्यासा बने, यह मेरी ही करतूत का तो फल है ! क्यो न इसी समय उसके पास जाऊ और उसके जन्म का सच्चा हाल उसे बता दू। अपने जन्म का हाल मालूम होने पर शायद उसके विचारो में परिवर्तन हो जाय और वह पाडवो को मारने का विचार छोड़ दे।"

चिता के कारण आकुल हो रही कुती अपने पुत्रो की सुरक्षा का विचार करती हुई गगा के किनारे वहा जा पहुची जहा कर्ण रोज सध्या वदन किया करता था ।

वहा कर्ण सध्या करता दिखाई दिया । पूर्व को मुह किये, हाथ जोडे, ध्यानमग्न होकर कर्ण खडा था । कुती उसीकी पीठ से लगकर उसका उत्तरीय अपने सिर पर रखे खडी हो गई । सूर्य के मध्याह्न होनेतक कर्ण इसी प्रकार खडा-खडा जप करता रहा । सूर्य के ताप की उसे परवाह न थी ।

मध्याह्न के बाद कर्ण का जप पूरा हुआ । उसने मुडकर देखा, तो उसे बडा आश्चर्य हुआ कि कोई राजकुल की स्त्री धूप से बचने के लिए उसके उत्तरीय को अपने सर पर रख कर खडी है । वह समझ न पाया कि बात क्या है । वह विस्मय में पड गया । और जब उसने ग़ौर से देखा तो उसे यह जानकर असीम आश्चर्य हुआ कि महाराज पाडु की पत्नी और पाडवो की माता देवी कुती ही उसका उत्तरीय सर पर लिये खडी है ।

"राधा और सारथी अधिरथ का पुत्र कर्ण आपको नमस्कार करता है । आज्ञा कीजिए, क्या सेवा मे आपकी करू ?" कर्ण ने शिष्टतापूर्वक अभिवादन करके पूछा ।

"कर्ण ! यह न समझो कि तुम केवल सूत-पुत्र ही हो । न तो राधा तुम्हारी मा है, न अधिरथ तुम्हारा पिता । तुमको जानना चाहिए कि राजकुमारी पृथा की कोख में सूर्य के अश से तुम उत्पन्न हुए हो । तुम्हारा कल्याण हो ।" कुती ने गद्-गद् स्वर में कहा । थोडी देर सुस्ताने के बाद फिर बोली—

"कर्ण ! ये कवच-कुडल तुम्हारे जन्म के है । तुम देव-कुमार हो । फिर भी अपने ही भाइयो को न पहचान पाये और दुर्योधन के पक्ष में होकर मेरे पुत्रो से शत्रुता कर रहे हो ! धृतराष्ट्र के बेटो के आश्रित रहना तुम्हारे लिए अपमान की बात है । तुम अर्जुन के साथ मिल जाओ, वीरता से लड़ो

और राज्य प्राप्त करो । दोनो भाई मिल जाओ और शत्रु का दर्प चूर करो। सारा ससार तुम्हारे आगे सिर झुकावेगा। बलराम और श्रीकृष्ण की जोडी की भाति तुम भी दोनो प्रतापी वीर होगे। पाच छोटे भाई तुम्हारे अधीन रहेगे और तुम उनसे घिरकर ऐसे प्रकाशमान होओगे जैसे देवताओ से घिरे हुए इद्र। जहा कर्त्तव्य धुधला-सा दिखाई पडे, या जब मनुष्य असमजस में पड जाय तब शास्त्रोचित ढग से माता-पिता को सतुष्ट करना ही धर्म माना गया है ।"

कर्ण अभी-अभी सूर्य नमस्कार पूरा कर चुका था कि इतने में माता कुती का यह अनुरोध सुनकर उसके मन में विचार आया कि क्या सूर्य भगवान् भी माता की बात का अनुमोदन कर रहे है ? परतु फिर भी यह सोच कर कि सूर्य देव शायद मेरी परीक्षा ही ले रहे हो, अपने दिल पर पत्थर-सा रख कर वह बोला—

"मा ! तुम्हारी ये बातें धर्म के विरुद्ध है। यदि तुम्हारी खातिर मै अधर्म करने पर उतारू हो जाऊ और क्षत्रियोचित कर्त्तव्य पर कुठाराघात कर दू, तो उससे बडी हानि मुझे मेरा कौन-सा दूसरा दुश्मन पहुचा सकेगा ? बचपन में तुमने मुझे पानी में फेंक दिया और अब, जब वर्ण-सकरो का समय बीत गया, मुझे क्षत्रिय कह कर पुकारने लगी हो ! माता की हैसियत से मेरे प्रति तुम्हारा जो कर्त्तव्य था उसे तुमने समय पर तो पूरा किया नहीं। और अब अपने पुत्रो की भलाई के खयाल से मुझे यह सब सुना रहीं हो। यदि इस समय मै दुर्योधन का साथ छोडकर पाडवो की तरफ चला गया तो क्षत्रिय लोग ही मुझे कायर कहेगे। जिनका नमक आजतक खाया, जिन्होने मुझे धन-सपत्ति और गौरव प्रदान किया उन धृतराष्ट्र-पुत्रो का साथ ऐसे सकट-भरे क्षण में छोड देने की सलाह तुम दे रही हो ! कैसे मै उनकी मित्रता का बधन तोड दू, जब कि मुझीको वे युद्ध के सागर को पार कराने वाली नैया-समान समझते है। मैंने ही तो उन्हें युद्ध के लिए उभाडा है। अब, जबकि युद्ध आगया है, तो उनको मझधार में कैसे छोड जाऊ? सहायता देने का तो दम भरू, किंतु सहायता का समय आने पर उनसे दगा

कर दू ? यह तुम्हारी कैसी सलाह है ? मैंने दुर्योधन का नमक खाया है। अब उसका ऋण चुकाना होगा। चाहे प्राणो की आहुति ही क्यो न देनी पडे। यह ऋण तो चुकाना ही होगा। वरना भोजन पदार्थ की चोरी करने वाले नीच की अपेक्षा भी मै अधिक नीच समझा जाऊगा। आज मेरा कर्त्तव्य यही है कि मै तुम्हारे पुत्रो के विरुद्ध सारी शक्ति लगा कर लडू। मै तुमसे असत्य बोलू ही क्यो ? मुझे क्षमा कर दो। मैंने तुम्हारे पुत्रो के विरुद्ध लडने का व्रत लिया है। लेकिन हा, तुम्हारी भी बात एकदम व्यर्थ न होगी। अब मै यह करूगा कि अर्जुन को छोडकर और किसी पाडव के प्राण नहीं लूगा। हा, या तो अर्जुन इस युद्ध में काम आयगा, या मै काम आजाऊगा। दोनो में से एक को तो मरना ही पडेगा। और चारो चाहे मुझे कितना भी क्यो न तग करें, मै उनको नही मारूगा। मा, तुम्हारे तो पाच पुत्र हर हालत में रहेगे—चाहे मै मर जाऊ चाहे अर्जुन। हम दोनो में से एक बचेगा और बाकी चार तो रहेगे ही। तुम चिंता न करो।"

अपने बडे पुत्र की ये क्षत्रियोचित बातें सुनकर माता कुती ने उसे अपने गले से लगा लिया। उससे कुछ बोला न गया, गला रुध गया और आखो से आसुओ की धारा बह चली। कुछ देर बाद सभलकर बोली—"विधि की बात को कोई नहीं टाल सकता। तुमने अपने चार छोटे भाइयो की प्राण-रक्षा का जो वचन दिया है वही मेरे लिए बडी बात है। तुम्हारा कल्याण हो।"

कर्ण को इस प्रकार आशीर्वाद देकर कुती अपने महल में चली आई।

: ५६ :

पांडवों के सेनापति

श्रीकृष्ण उपप्लव्य लौट आए और हस्तिनापुर की चर्चा का हाल पाडवों को सुनाया।

"जो सत्य एव हित के अनुकूल था, वह उपाय मैंने बताया था। किंतु सब व्यर्थ ही हुआ। अब दड से ही काम लेना पडेगा। सभा के सभी वृद्धजनो के कहने पर भी मूर्ख दुर्योधन ने न माना। अब तो युद्ध की ही जल्दी तैयारी होनी चाहिए।"

युधिष्ठिर अपने भाइयो से बोले—"भैया! अब शाति की आशा नहीं रही। सेना सुसज्जित करो और व्यूह-रचना सुचारु रूप से कर लो।"

●

पाडवों की विशाल सेना को सात हिस्सो में बाट दिया गया। द्रुपद, विराट, धृष्टद्युम्न, शिखडी, सात्यकी, चेकितान, भीमसेन आदि सात महारथी इन सात दलो के नायक बने। अब प्रश्न उठा कि सेनापति किसे बनाया जाय? सबकी राय ली गई।

युधिष्ठिर ने सबसे पहले सहदेव की राय मागी—"सहदेव! इन सातो महारथियो में से किसी एक सुयोग्य वीर को सेनापति बनाना होगा। हमारा सेनापति रण-कुशल हो। अग्नि के समान शत्रु-सैन्य को दग्ध करने वाले भीष्म की शक्ति सहने का माद्दा उसमें हो। इन सातो में से कौन ऐसा है, सहदेव! जो तुम्हारी राय में इन सभी गुणो से युक्त है।"

उन दिनो की प्रथा थी कि छोटों की राय पहले ली जाय। इससे जवानो का आत्म-विश्वास बढ़ता और उनमें जोश आजाता। छोटो से पूछे बगैर ही बडो की राय ले ली जाती, तो फिर छोटो की अपनी ओर से कुछ कहने की हिम्मत ही न बधती। डरते, कि कही उद्दड की उपाधि प्राप्त न हो।

"अज्ञातवास के समय हमने जिनके यहा आश्रय लिया था, जिनकी छत्रछाया में सुरक्षित रहते हुए हम अपने खोये हुए राज्य को प्राप्त करने की तैयारिया कर रहे है, वही विराटराज हमारे सेनापति बनने योग्य हैं।" सहदेव ने कहा।

फिर नकुल से राय ली गई।

"मुझे तो यही उचित प्रतीत होता है कि पाचालराज द्रुपद, जो आयु में, बुद्धि में, वीरता में, कुल में एव बल में सर्वश्रेष्ठ है, हमारे

सेनापति बनाये जाय। उन्होंने भारद्वाज से अस्त्र-विद्या सीखी है। द्रोण से युद्ध करने के अवसर की वे मुद्दत से प्रतीक्षा किये बैठे है। वे सभी राजाओ से सम्मानित है, द्रौपदी के पिता है, पिता की ही भाति वे हमारा सहारा बने हुए है। मेरी राय में वही हमारी सेना के नायक बनने और द्रोण और भीष्म का सामना करने योग्य है।" नकुल ने कहा।

अर्जुन ने कहा—"जो जितेंद्रिय है, द्रोण का वध ही जिनके जीवन का एकमात्र उद्देश्य है, वही वीर धृष्टद्युम्न हमारे सेनापति बनें। जिनके बाणो के प्रहार से स्वय परशुराम भौंचक्के से रह गये, उन भीष्म के बाणो को सहने की शक्ति, साहस एव बल यदि किसीमें है, तो धृष्टद्युम्न में ही है। उन्हींको सेनापति बनाया जाय।"

भीम ने कहा—"राजन्! अर्जुन ने जो कहा, ठीक कहा। फिर भी महात्माओ और ऋषि-मुनियो का कहना है कि शिखडी का जन्म ही हुआ भीष्म के प्राण लेने के लिए। तेज और रौब में भी वह परशुराम के समान दिखाई देता है। मेरी राय में महारथी भीष्म को सिवाय शिखडी के और कोई हरा भी नहीं सकेगा। अत शिखडी को ही सेनापति बनाया जाय।"

अत में युधिष्ठिर ने पूछा—"श्रीकृष्ण की राय क्या है?"

श्रीकृष्ण ने कहा—"इन सबने जिन-जिन वीरो के नाम लिये, वे सभी सेनापतित्व के योग्य है। किंतु अर्जुन की राय मुझे सभी दृष्टि से ठीक प्रतीत होती है। मै उसीका समर्थन करता हू। धृष्टद्युम्न को ही सारी सेना का नायक बना दिया जाय।"

जिसने स्वय द्रौपदी का अर्जुन से पाणिग्रहण करवाया था, जो राज-सभा में हुए द्रौपदी के घोर अपमान और उस पर किये गए घोर अत्याचार की कल्पनामात्र से ही भडक उठता था, अपनी बहन के अपमान का कौरवो से बदला लेने की प्रतीक्षा में जिसने तेरह बरस बडी बेचैनी में काटे थे, वही वीर द्रुपदराज-कुमार धृष्टद्युम्न पाडवो की सेना का नायक बनाया गया और उसका विधिवत् अभिषेक किया गया। वीरो की सिंह-

गर्जना, भैरियो के भैरव-नाद, शखो की तुमुल ध्वनि, दुदुभि के गर्जन आदि से मानो आकाश फटने-सा लगा था। अपने कोलाहल से दिशाओ को गुजाती हुई पाडवो की सेना कुरुक्षेत्र के मैदान में जा पहुची।

: ६० :

कौरवों के सेनापति

उधर कौरवो की सेना के नायक थे भीष्म पितामह। दुर्योधन ने उनके पास अजलिबद्ध होकर कहा—"देवताओ की सेना का भगवान् कार्त्तिकेय ने जिस शान से सचालन किया था, उसी तरह पितामह हमारे सेनानायक बन कर विजय एव यश प्राप्त करें। जैसे ऋषभ (बैल) के पीछे बछडे जाते है, वैसे ही हम भीष्म का अनुकरण करेंगे।"

भीष्म ने तथास्तु कहा। पर साथ में एक शर्त भी लगा दी। बोले—"मेरे सामने जैसे धृतराष्ट्र के लडके है, वैसे ही पाडव भी है। दोनो ही मेरे लिए बराबर है। इसमें सदेह नहीं कि जो प्रतिज्ञा मै कर चुका हू, उसको निभा दूगा। युद्ध का सचालन करके अपना ऋण अवश्य ही चुका दूगा। शत्रु-दल के हजारो-लाखो वीरो को मेरे बाणो का शिकार होना ही पडेगा। परतु फिर भी पाडुपुत्रो का वध करना मुझसे न हो सकेगा। लडाई छेडते समय मेरी सम्मति किसीने नही ली थी। इसी कारण मैंने निश्चय कर लिया है कि जान-बूझकर, अपने प्रयत्न से, पाडु-पुत्रो का वध मै नही करूगा। इसके अलावा एक बात और भी है। सूत-पुत्र कर्ण, जो तुम लोगो का बहुत ही प्यारा है, शुरू से ही मेरी सलाहो का विरोध करता आया है। पहले उससे सलाह ले लेना ठीक होगा। अगर वही सेनापति बन जाय, तो मुझे कोई आपत्ति न होगी।"

कर्ण का उद्दड व्यवहार सदा से ही भीष्म को बहुत खटकता था। कर्ण घमडी भी बहुत था। उसने भी हठ कर लिया कि जबतक भीष्म जीवित रहेंगे, तबतक वह युद्ध-भूमि में प्रवेश नहीं करेगा। भीष्म

के मारे जाने के बाद ही वह लडाई में भाग लेगा और केवल अर्जुन को ही मारेगा ।

कई सद्गुणो से विभूषित सज्जनो में भी अक्सर बराबर के लोगो के प्रति स्पर्द्धा, और अपने से बढे हुए लोगो के प्रति ईर्ष्या हुआ करती है । यह तब भी कोई नई बात नही थी। आज हम किस क्षेत्र में यह कम पाते है ?

दुर्योधन ने सब आगा-पीछा सोचकर भीष्म की शर्त मानली और उन्हीं को सेनापति नियुक्त किया। फलत कर्ण तबतक के लिए युद्ध से विरत रहा। पितामह के नायकत्व में कौरव-सेना समुद्र की भाति लहरें मारती हुई कुरुक्षेत्र की ओर प्रवाहित हुई।

: ६१ :

बलराम

इधर युद्ध की तैयारिया हो रही थी और उधर एक रोज श्री बलरामजी पाडवो की छावनी में एकाएक आ पहुचे। नीले रग का रेशमी वस्त्र पहने, सिह की-सी चाल वाले, उभरी हुई भुजाओवाले हलधर को आया देखकर श्रीकृष्ण, युधिष्ठिर आदि बडे प्रसन्न हुए। सबने उठकर उनका समुचित आदर-सत्कार किया। श्री बलरामजी ने अपने से बडे बूढे विराटराज और द्रुपदराज को विधिवत् प्रणाम किया और धर्मराज के पास बैठ गये ।

"भरत-वश में लालच, क्रोध और द्वेष का बोलबाला हो गया । शाति की चेष्टाए नाकाम रहीं। और सुन रहा हू कि कुरुक्षेत्र की समर-भूमि में अब युद्ध भी छिडने वाला है । यही सुनकर मै यहा आया हू कि कुछ अपना दिल आप लोगो के सामने हलका कर आऊ।" कहते-कहते श्री बलराम का गला भर आया। ठडी आहें भरते वे कुछ देर चुप रहे। फिर बोले—

"धर्मपुत्र! अब ससार का सत्यानाश ही होने वाला है। भयानक, बीभत्स

दृश्य देखने में आयगे। पृथ्वी का हरा-भरा शरीर, कटे हुए अगो से और खूनी कीचड से सनने वाला है। विधि के प्रपच में पडकर ससार भर के राजा-महाराजा और सारी क्षत्रिय-जाति के लोग, पागलो की भाति मृत्यु की खोज में निकले है और यहा आकर इकट्ठे हुए हैं। कितनी ही बार मैंने कृष्ण को कहा कि हमारे लिए तो पाडव और कौरव दोनो ही एक समान हे। दोनो को मूर्खता करने की सूझी है। इसमें हमें बीच में पडने की आवश्यकता नहीं। पर कृष्ण ने मेरी नहीं मानी। अर्जुन के प्रति उसका इतना स्नेह है कि उसने तुम्हारे पक्ष में रहकर युद्ध करना भी स्वीकार किया। और जिस तरफ कृष्ण हो, उसके विपक्ष में मै भला कैसे जाऊ? भीम और दुर्योधन, दोनो ही ने मुझसे गदा-युद्ध सीखा है। दोनो ही मेरे शिष्य है। दोनो पर मेरा एक जैसा प्यार है। इन दोनो कुरुवशियो को यो आपस में लड-मरते देखकर मुझसे नहीं रहा जाता। लडो तुम लोग। पर यह सब देखने मै यहा नहीं रह सकता। मुझे ससार से विराग-सा हो गया है। अतः मै तो तीर्थ करने जा रहा हू।"

भ्रातृ-कलह के इस भीषण दृश्य को देखकर बलराम को दु सह क्षोभ हुआ। उन्होने भगवान का ध्यान किया और तीर्थ-यात्रा करने को निकल पडे।

●

धर्म-सकट का अर्थ है दुविधा। कभी-कभी हरेक मनुष्य को दो ऐसे कर्त्तव्यो का सामना करना पडता है जो एक-दूसरे के विरुद्ध होते हैं। ऐसे ही अवसरो पर लोग किकर्त्तव्यविमूढ हो जाते है। जो सच्चरित्र है, उन्हें बार-बार ऐसी दुविधा का सामना करना पडता है। जो धूर्त्त है, वे तो अपनी ही इच्छाओ के इशारे पर चला करते है। उन्हें असमजस का सामना करने की आवश्यकता ही क्या है? जिन्होने इच्छा की केंचुली मन से उतार दी हो, उन्हें तो अक्सर किकर्त्तव्यविमूढ होना पडता है। महाभारत के इस आख्यान में भीष्म, विदुर, युधिष्ठिर, कर्ण आदि शीलवान लोगो को कितनी ही बार दुविधा में पड़ना पडा। पुराणो में हम पढ़ते है कि कैसे-

कैसे अपने स्वाभाविक गुणो के अनुसार हरेक व्यक्ति ने धर्म-सकट से छुटकारा पाया था।

तात्पर्य यह कि समस्या के एक होने पर भी उसके हल कई हुआ करते हैं।

आजकल के समालोचक इस मूल तथ्य को भूल जाते है और एक ही माप-दड से सबको नापने का प्रयत्न करते है। यह ठीक नहीं है। रामायण में दशरथ, कुभकर्ण, मारीच, भरत, लक्ष्मण आदि दुविधाओ के भवर में पडे और निकल भी आए। हरेक ने इसके लिए अलग-अलग रीति बरती, और उससे हम लाभ उठा सकते है। महाभारत की यह आख्यायिका बताती है कि बलराम ने दुविधा से बचने के लिए किस प्रकार तटस्थ रहना उचित समझा।

महाभारत के युद्ध के समय सारे भारतवर्ष में, दो ही राजा युद्ध में सम्मिलित नहीं हुए—तटस्थ रहे। एक तो थे श्री बलराम। और दूसरे थे भोजकट के राजा रुक्मी। रुक्मी की छोटी बहिन रुक्मिणी ही श्रीकृष्ण की पत्नी थी।

: ६२ :

रुक्मिणी

विदर्भ देश के राजा भीष्मक के पाच पुत्र और एक पुत्री थी। पुत्री का नाम था रुक्मिणी। रुक्मिणी की सुदरता अनुपम थी और स्वभाव मृदुल। जब वह बालिका थी, तभी श्रीकृष्ण की प्रशसा हर तरह के लोगो के मुह उसने सुनी थी और उनपर अनुरक्त हो गई थी। जैसे-जैसे दिन बीतते गये, मन-ही-मन उसकी यह इच्छा दृढ होती गई कि श्रीकृष्ण की वह पत्नी हो और जीवन सफल करे। उसके परिवार के लोगो की भी यही राय थी। पर भीष्मक का बड़ा पुत्र रुक्मी श्रीकृष्ण से बैर रखता था।

श्रीकृष्ण से रुक्मिणी के विवाह की चर्चा सुन कर उसने पिता से आग्रह किया कि कृष्ण के बजाय चेदिराज शिशुपाल से रुक्मिणी का विवाह होना ज्यादा ठीक होगा। राजा भीष्मक थे वृद्ध। राजकुमार की बात जोर पकड गई। और ऐसे आसार नजर आने लगे कि शिशुपाल के साथ ही रुक्मिणी का सबध होगा।

रुक्मिणी श्रीकृष्ण को जी से चाहती थी। वह देवी की अशावतार थी। शिशुपाल जैसे राक्षसी-स्वभाव वाले से उसका मन कैसे मानता? फिर भी अबला ही जो थी। उसके मन में भय हुआ कि शायद पिताजी भी मेरा बचाव न कर पायेंगे। हठी भाई का उद्देश्य कहीं पूरा न हो जाय। यह सोचकर रुक्मिणी व्याकुल हो उठी। बहुत सोच-विचार के बाद उसने निश्चय किया कि किसी-न-किसी तरह इस दु ख-जाल से छूटना ही होगा। नारी-सुलभ लज्जा को एक ओर रखकर उसने एक ब्राह्मण पुरोहित के हाथ श्रीकृष्ण के पास प्रेम-सदेशा लिख भेजा। और उन पुरोहित से प्रार्थना की किसी प्रकार श्रीकृष्ण को राजी करके मेरी रक्षा करें।

ब्राह्मण पत्र लेकर द्वारका पहुचा और श्रीकृष्ण से मिला। रुक्मिणी की व्यथा और उनकी प्रार्थना द्वारकाधीश को सुनाने के बाद उसने वह पत्र श्रीकृष्ण को दिया। पत्र में लिखा था—

"मै तो आप ही को पति मान चुकी हू। मेरा हृदय आप ही की सपत्ति हो गई है। जो वस्तु आपकी है, उसीको चोरी करने के लिए राजा शिशुपाल घात लगाये बैठा है। इससे पहले कि आपकी वस्तु शिशुपाल के हाथ पड जाय, आप यहा आय, और आकर अपनी चीज को बचा लें। लेकिन मुझे प्राप्त करना सरल भी नही है। शिशुपाल और जरासध की सेनाओ को हराकर भगाने के बाद ही आप मुझे प्राप्त कर सकेंगे। शौर्य दिखलाकर, वीरोचित रीति से, आप मुझे लेजाय। बडे भैया ने निश्चय कर लिया है कि शिशुपाल के साथ ही मेरा ब्याह करें। विवाह के दिन प्रथा के अनुसार मुझे पूजा के लिए गौरी-मदिर जाना होगा। साथ में सहेलिया भी होगी। वह अवसर

मुझे बचाने का हो सकता है। तभी आप मुझे लेजा सकेंगे। यदि आप यह न करेंगे, तो मै अपने प्राणो का उत्सर्ग कर दूगी, जिससे कम-से-कम अगले जन्म में तो आपको पा सकू ."

द्वारकाधीश ने पत्र पढा। एक क्षण कुछ सोचा किया और रथ मगाकर विदर्भ देश को रवाना हो गये।

●

विदर्भ देश की राजधानी कुडिनपुर की शोभा अनूठी हो रही थी। राजकन्या का विवाह होने वाला था, इसलिए नगर बडी सुदरता के साथ सजाया गया था। विवाह की तैयारिया बडी धूमधाम से हो रही थीं। शिशुपाल अपने बधु-बाधवो के साथ आ पहुचा था। और ये सब-के-सब द्वारकाधीश के शत्रु थे।

उधर जब श्री बलराम ने सुना कि कृष्ण अकेले विदर्भ देश रवाना हो गये, तो वे बडे चिंतित हुए। सोचा, विदर्भ नरेश की पुत्री के सिलसिले में ही कृष्ण वहा गया होगा। वहा सभव है, कृष्ण अपने दुश्मनो से घिर जाय और उसके प्राणो पर सकट आ जाय। यह सोचकर उन्होने तत्काल ही एक बडी सेना इकट्ठी की और कुडिनपुर को वेग से प्रस्थान कर दिया।

उधर विवाह के दिन राजकन्या रुक्मिणी राजमहल से निकलकर गौरी-मदिर की ओर चली। साथ में सहेलिया और सैनिको की एक बडी भीड़ उसको घेरे हुए थी। मदिर में जाकर उसने विधिपूर्वक देवी की पूजा की। पूजा के बाद रुक्मिणी ने हाथ जोडकर देवी से प्रार्थना की—

"देवी! तेरे चरणो में मै सिर नवाती हू। मेरी मनोव्यथा तुम बडी अच्छी तरह जानती हो। मै तुमसे क्या कहू? मुझे यही वरदान दो कि श्रीकृष्ण मेरे पति बनें।"

रुक्मिणी जब मदिर से निकलीं तो सामने श्रीकृष्ण का रथ देखा। देखते ही उसकी ओर कुछ ऐसी खिची हुई-सी चलीं जैसे चुंबक की ओर लोहे की सुई। रथ के पास पहुचते ही श्रीकृष्ण ने सहारा देकर उसे रथ पर चढ़ा लिया और सैनिको तथा सहेलियों के देखते-देखते श्रीकृष्ण का रथ

हँवा से बातें करने लगा।

सैनिक लोग कुमार रुक्मी के पास दौडे गये और इसकी सूचना की। तुरत ही रुक्मी ने सेना लेकर श्रीकृष्ण का पीछा किया। पर रास्ते में ही बलरामजी की सेना, जो कुडिनपुर की ओर जा रही थी, मिली। श्रीकृष्ण रुक्मिणी समेत उस सेना से आ मिले। दोनो सेनाओ में घमसान युद्ध हुआ। बलराम और श्रीकृष्ण ने रुक्मी की सेना को तितर-बितर कर दिया और विजय का डका बजाते हुए द्वारका लौट आये। वहा पहुचने पर श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी के साथ विधिपूर्वक ब्याह कर लिया।

अभिमानी रुक्मी श्रीकृष्ण के हाथो हार जाने के कारण बहुत ही दु खित हुआ। नगर में वापस जाते उसे बडी झेंप आई। विदर्भ न जाकर, जहा श्रीकृष्ण के साथ युद्ध हुआ था वहीं भोजकट नाम का नया नगर बसाकर वह रह गया।

●

कुरुक्षेत्र में होने वाले युद्ध के समाचार सुनकर रुक्मी एक अक्षौहिणी सेना लेकर युद्ध में सम्मिलित होने को गया। उसने सोचा कि यह अवसर वासुदेव की मित्रता प्राप्त कर लेने के लिए ठीक होगा। इसलिए वह पांडवो के पास पहुचा और अर्जुन से बोला—"पाडु पुत्र! आपकी सेना से शत्रु-सेना कुछ अधिक मालूम होती है। इस कारण मै आपकी सहायता करने को आया हू। शत्रु-सेना के जिस हिस्से पर आप कहे आक्रमण करने को तैयार हू। मै इतना शक्तिशाली हू कि द्रोण, भीष्म या कृपाचार्य, इनमें से किसी एक को युद्ध में जीत सकता हू। मै आपको विजय दिला दूगा। अत. बताइये कि आपकी क्या इच्छा है ?"

यह सुन अर्जुन ने हसते हुए श्रीकृष्ण की ओर देखा और रुक्मी से बोले—"राजन्! हम शत्रु की भारी सेना देख कर भय नहीं खाते। न हम इस शर्त पर आपकी सहायता ही चाहते है। आप बिना किसी शर्त के सहायता करना चाहते हो, तो आपका स्वागत है। नहीं तो आपकी इच्छा।"

यह सुन रुक्मी बड़ा क्रुद्ध हुआ और अपनी सेना लेकर दुर्योधन के पास

चला गया।

"पाडव हमें नहीं चाहते; इस कारण मैं आपकी सहायता को आया हू।" रुक्मी ने दुर्योधन से कहा।

"यह बात है ? पाडवो के अस्वीकार करने पर आपने हमारी तरफ आने की कृपा की ! किंतु पाडवो ने जिसकी सहायता स्वीकार नही की उसकी सहायता स्वीकार करने की हमें जरूरत नहीं।" यह कहकर दुर्योधन ने भी रुक्मी की सहायता ठुकरा दी। बेचारा रुक्मी दोनो तरफ से अपमानित होकर भोजकट को वापस लौट गया।

●

रुक्मी कर्त्तव्य से प्रेरित होकर नही, बल्कि अपनी प्रतिष्ठा बढाने के उद्देश्य से कुरुक्षेत्र गया और अपमानित हुआ। युद्ध में तटस्थ रहने के भी कई कारण होते हैं। कोई शाति-प्रियता के कारण युद्ध में शरीक नही होते। कोई स्वार्थ, गर्व आदि राजसी गुणो के कारण, और कोई सुस्ती, भय, आदि तामसी गुणो के कारण युद्ध से किनाराकशी करते हैं। मतलब यह कि सबका कार्य एक जैसा होने पर भी उद्देश्य में अपने-अपने स्वभाव के अनुसार आकाश-पाताल का अतर हो जाता है।

महाभारत में बलराम भी तटस्थ रहे और रुक्मी भी। किंतु जहा बलराम सात्त्विक-गुण से प्रेरित होकर युद्ध से हट गये, वहा रुक्मी को अपने राजसी गुण के कारण तटस्थ रहना पडा।

: ६३ :

असहयोग

युद्ध आरंभ करने के एक दिन पहले पितामह भीष्म, दुर्योधन को धीरज बधाने के लिए, उनके पक्ष के वीरो की युद्ध-कुशलता एवं दूसरी खूबियो का सुविस्तृत वर्णन करने लगे। अपनी ओर से लडने वाले वीरो

की विशेषताए सुनकर दुर्योधन का हौसला बढता गया। इतने में कर्ण का जिक्र आया।

भीष्म ने कहा—"मै कर्ण को कोई बडा भारी वीर नहीं मानता, यद्यपि वह तुम्हारे स्नेह का पात्र बना हुआ है। पाडवो के प्रति तुम्हारे मन में द्वेष-भाव बढाना उसीका काम था। अपने मुह अपनी प्रशसा करते वह कभी नहीं थकता। उसके गर्व की कोई सीमा ही नहीं। मै तो अतिरथियो में भी उसकी गिनती नहीं करता। उसमें विवेक की बहुत कमी है। उसे दूसरो की निंदा करने का व्यसन-सा हो गया है। इसके अलावा, अपने जन्म-जात कवच-कुडलो से भी वह हाथ धो बैठा है। इसलिए वह युद्ध में हमारी अधिक सहायता कर सकेगा, इसमें शका है। इसके अतिरिक्त परशुरामजी का शाप उसने और ले लिया है। ऐन वक्त पर इसकी स्मरण-शक्ति नष्ट हो जायगी। इस कारण इस बात की कोई आशा नहीं की जा सकती कि अर्जुन के साथ लडने पर कर्ण जीवित भी रह सकेगा।"

भीष्म की बातें सच्ची होने पर भी कर्ण एव दुर्योधन को बहुत कडवी लगीं।

इतने में आचार्य द्रोण ने भी जले पर नमक छिडका। वे बोले—"पितामह बिल्कुल ठीक कहते है। कर्ण मदाध है, घमडी है। जिन बातो पर ध्यान देना चाहिए उनकी ओर ध्यान न देने के कारण तथा अनावश्यक बातो को तूल देने से मेरा भी खयाल है कि अर्जुन के साथ युद्ध में इसकी हार ही होगी।"

दोनो वृद्ध-योद्धाओ की कडवी बातें सुनकर कर्ण को बडा गुस्सा आया। उसकी आखें लाल हो गईं। भीष्म की ओर देखकर वह बोला—

"पितामह, मैंने आपका क्या बिगाड़ा है, जो आप मुझे हमेशा ही नीचा दिखाने के लिए कमर कसे बैठे रहते हैं। आप मुझसे जलते क्यो है, और घृणा करते है? और इस प्रकार कडवे वचनो से बेधते रहते है? इससे मेरे दिल पर उलटा ही असर होता है। आपकी राय में मै युद्ध के योग्य नही हू। तो आपके बारे में भी मेरी राय सुन लीजिये। असल बात यह है कि

आप मुझसे नफरत करते है और दुर्योधन का भला नहीं चाहते। यही कारण है, आप हर उचित-अनुचित उपायो से हम दोनो मित्रो में फूट पैदा करने की चेष्टा कर रहे हैं। और मेरे प्रति दुर्योधन का स्नेह कम करने का प्रयत्न करते रहते हैं। आप इतने समझदार होकर यह अन्याय क्यो करते हैं ? फिर बुढापे के कारण अब आपमें दम भी तो कुछ नहीं रहा है जो इतना बढ-चढ कर बोल रहे हैं। आपको नहीं मालूम कि क्षत्रियो में इज्जत बुढापे की नही, बल्कि वीरता की होती है। दुर्योधन और मेरे बीच जो मि ,ता कायम है, उसे तोडने और हममें मन-मुटाव पैदा करने का आपका ".यत्न व्यर्थ ही होगा।"

भीष्म के प्रति इतना कह चुकने के बाद कर्ण दुर्योधन को सबोधन करते हुए बोला—"महाराज आप भलीभाति सोच-विचार कर वही करें, जिसमें आपका हित हो। मेरी राय में तो इन बूढ़े भीष्म का भरोसा अधिक नहीं करना चाहिए। ये तो यही चाहते है कि हममें आपस की फूट पैदा हो जाय, और सदा अनबन बनी रहे। मेरे बारे में इन्होने जो कुछ कहा है, उससे आपके काम में अडचन ही पैदा होगी। यह मेरा तेज कम करने और मेरा हौसला पस्त करने को मानो कमर कसे बैठे हैं। ये यह नहीं सोचते कि बुढापे में जीवन का क्या ठिकाना। मौत तो इनके दरवाजे पहुंची हुई है। फिर भी गर्व इतना कि और किसीको कुछ समझते ही नहीं। माना कि वृद्धो से सलाह लेनी और उनकी सलाह माननी चाहिए। पर बुढापे में कार्य-शक्ति की एक सीमा होती है। फिर इनका बुढापा ऐसा है कि मानो फिर से जवानी आ रही हो। पर ऐसी ऊपर से थोपी जवानी भी क्या काम दे सकती है ? आपने क्या सोचकर इन वृद्ध को सेना-पति बनाया है ? परिणाम यही होगा कि पराक्रम दूसरे लोग करेंगे और यश इनको प्राप्त होगा। प्राणो पर तो खेलेंगे जवान लोग, और यश प्राप्त करेंगे बूढ़े। जबतक सेना का सचालन इनके बूढे, कापते हाथो में रहेगा, तबतक मेरा हौसला नहीं बढेगा। मै लड़ाई नहीं कर सकूगा। मुझे तो आप भीष्म के बाद ही याद करना। मै तभी हथियार उठाऊगा।"

घमंड में भूले हुए व्यक्तियो को अपने दोष नहीं सूझते। वे अक्सर यही समझते रहते है कि दोष बताने वाले में घमड बहुत अधिक होता है। अपना दोष दूसरे के मुह से सुनना भी उन्हे नागवार लगता है।

भीष्म को कर्ण की अनर्गल बातो पर क्रोध तो बहुत आया। पर उन्होने समय की विषमता का विचार करके क्रोध पी लिया। वे बोले—

"कर्ण! परिस्थिति बडी विकट है। और मेरे कधो पर इसे सभालने का भार है। इसी कारण तेरे इन अनुचित वचनो को मैंने सुन लिया है और सह लिया है। यदि यह बात न होती, तो अबतक तुम जीवित भी न रह पाते। कौरवो के पास न जाने किस बुरी घडी में तुम आये कि जिससे उनपर यह भारी सकट आ पडा ह।" इतना कहकर भीष्म ने अपनेको सभाल लिया।

दोनो को इस प्रकार वाक्-युद्ध करते देख दुर्योधन बोले—"पितामह! आप शात हो जाय। मै तो आप दोनो ही की सहायता का अभिलाषी हू और दोनो ही की मदद से विजय प्राप्ति की आशा कर रहा हू। दोनों ही महान् वीरता का परिचय देन वाले है और कल सूर्य उगते ही युद्ध शुरू होन वाला है। ऐसे अवसर पर हम आपस में न झगडें।

भीष्म तो शात हो ही गये थे। किंतु कर्ण अपनी ज़िद्द पर अडा रहा। उसने यही हठ पकड ली कि जबतक भीष्म सेनापति रहेगे तबतक वह हथियार नही उठायगा। लाचार होकर दुर्योधन ने मान लिया और कर्ण का प्रण पूरा होकर रहा। महाभारत के युद्ध में पहले दस दिन कर्ण ने लडाई में बिल्कुल हिस्सा नहीं लिया। हा, उसने अपनी सेना को अवश्य लडाई में भेज दिया।

दस दिन पूरे हुए। महारथी भीष्म का शरीर तीरो से बिंध कर छलनी-सा बन चुका था। युद्ध के मैदान में वह हताहत पडे थे। तब जाकर कर्ण को होश आया। उसे अपनी भूल महसूस हुई। उसने भीष्म के पांव पकड़ कर क्षमा मागी। भीष्म ने कर्ण को क्षमा ही नहीं किया बल्कि आशीर्वाद भी दिया।

इस पर स्वय कर्ण की प्रेरणा से आचार्य द्रोण सेनापति बनाये गये। द्रोणाचार्य के सेनापतित्व में कर्ण ने युद्ध में हिस्सा लिया। द्रोणाचार्य भी खेत रहे। उसके बाद फिर कर्ण ने सेनापतित्व स्वीकार करके युद्ध का सचालन किया।

: ६४ :

गीता की उत्पत्ति

कुरुक्षेत्र के मैदान में दोनो तरफ की सेनाए लडने को तैयार खडी थी। उन दिनो की रीति के अनुसार दोनो पक्ष के वीरो ने युद्ध-नीति पर चलने की प्रतिज्ञाए लीं।

युद्ध की प्रणाली एव पद्धति समय-समय पर बदलती रहती थी। उन दिनो की युद्ध-प्रणाली को ध्यान में रखते हुए हमें यह कथा पढनी चाहिए। तभी हर घटना का सही चित्र हमारे सामने आवेगा। नहीं तो घटनाओ में कहीं-कहीं अस्वाभाविकता का भ्रम हो सकता है।

महाभारत के युद्ध की शर्तें ये थीं

रोज सूर्यास्त के बाद लडाई बंद होजाय। युद्ध बद होने के बाद दोनो पक्ष के लोग प्रेम के साथ आपस में मिलें। समान बल वालो में ही टक्कर हो। अनुचित या अन्यायपूर्ण ढग से कोई लड नहीं सकता। सेना से दूर हट जाने वालो पर बाणो या हथियारो का प्रहार न हो। रथी रथी से, हाथीसवार हाथीसवार से, घुड़सवार घुडसवार से और पैदल पैदल से ही लडे। शत्रु पर विश्वास करके जो लडना बंद कर दे उस पर, या डरकर हार मानने या सिर झुकाने वाले पर शस्त्र का प्रयोग न होना चाहिए। दो योद्धा आपस में युद्ध कर रहे हो, तो उनको सूचना दिये बिना, या सावधान किये बिना, तीसरे को उन पर या किसी एक पर शस्त्र नहीं चलाना चाहिए। निहत्थे, असावधान, पीठ दिखाकर भागने वाले, या कवच से रहित लोगो

को हथियार चलाकर नहीं मारना चाहिए। हथियार पहुचाने और ढोनेवालो, अनुचरो, भेरी बजाने वालो और शख फूकने वालो पर भी हथियार चलाना नहीं चाहिए। लडाई के इन नियमो को कौरवो एव पाडवो दोनों न प्रतिज्ञापूर्वक मान लिया।

ज्यो-ज्यो समय बदलता जाता है, ससार की रीतिनीति भी बदलती जाती है। न्याय एव अन्याय की विवेचना भी एक जैसी स्थिर नही रहती, न ही न्याय अन्याय को निर्धारित करने वाले नियम ही कायम रहते है। आजकल की लडाइयो में जो नीति बरती जाती है, उसके अनुसार, जो भी सामान या जानवर लडाई में काम दे सकें, उन सबको नष्ट किया जा सकता है। चाहे वे घोडे जैसे बेजबान जानवर हो, या दवाइयो जैसी आवश्यक वस्तुए हो। किंतु उन दिनो की रीति कुछ और ही थी।

कहने का मतलब यह नहीं कि उन दिनो के प्रचलित विधि-निषेधो का कभी उल्लघन होता ही नहीं था। उलटे, महाभारत के कई प्रसगो से साफ पता चलता है कि उन दिनो भी, विभिन्न कारणो से शर्तें कभी-कभी तोडी जाती थीं। कभी-कभी ऐसा हुआ करता है कि कुछ खास अवसरो पर, विशेष कारणो से, प्रचलित नियमो का उल्लघन करना पडता है। कभी-कभी यहा तक नौबत पहुँच जाती है कि पुराने विधि-निषेधो के स्थान पर नये ही नियम बनाने पड जाते है।

महाभारत के युद्ध में भी कभी-कभी ये नियम तोडे गये है अवश्य, किंतु आम तौर पर सबने उपरोक्त शर्तें मान ली थीं और उन्हींके अनुसार वे लडे भी थे। कभी किसीके शर्त तोडने की खबर पड़ी, तो उसकी सबने निंदा ही की, तोडने वाला भी लज्जित हुआ और अत में पछताया।

सेनापति भीष्म ने कौरव-सेना के वीरो को उत्साहित करते हुए कहा—

"वीरो! वह देखो तुम्हारे सामने स्वर्ग का द्वार तुम्हारा स्वागत करने के लिए खुला पडा है। तुमको ऐसा अहोभाग्य प्राप्त हो सकता है कि तुम देवराज इद्र के साथ या ब्रह्मा के साथ इद्रलोक या ब्रह्मलोक में जाकर निवास करो। तुम सब उसी मार्ग का अनुसरण करो, जिस पर

तुम्हारे बापदादाओ एव उनके भी पूर्वजो के पवित्र चरण-चिह्न अकित है। तुम्हारे विख्यात वशो का यही सनातन धर्म रहा है कि या तो विजय का यश प्राप्त करें, या वीरोचित स्वर्ग। अत वीरो! चिता छोड दो, और आनद एव उत्साह के साथ जूझ पडो। यश और कीर्त्ति प्राप्त करो। घर में पलग पर पडे-पडे बीमारी से मरना क्षत्रियोचित मृत्यु नही है। क्षत्रिय का यही धर्म है कि समर-भूमि में जौहर दिखलावे, विजय प्राप्त करे या शस्त्र-प्रहार से मृत्यु को प्राप्त हो।"

सेनापति भीष्म की ये उत्साह भरी बातें सुनकर वीर योद्धाओ ने भेरिया बजाकर कौरवो का जयजयकार किया। मानो मरते दमतक युद्ध करने और वीर गति प्राप्त करने की घोषणा की।

कौरव-सेना के वीरो की ध्वजाए बडी शान से रथो पर फहरा रही थी। भीष्म की ध्वजा में ताड के पेड और तारिकाओ का चित्र अकित था। सिंह की पूछ से चित्रित अश्वत्थामा की ध्वजा हवा में लहरा रही थी। द्रोणाचार्य की ध्वजा हरे रग की थी और उस पर कमडलु एव धनुष के चित्र प्रकाश में चमक रहे थे। दुर्योधन की सुविख्यात ध्वजा में साप फन फैलाये हुए दिखाई देता था। कृपाचार्य की ध्वजा पर वृषभ का और जयद्रथ की ध्वजा पर शूकर के चित्र सुशोभित हो रहे थे। इसी भाति हरेक वीर के रथ पर विभिन्न रंग-रूप की ध्वजाए लहरा रही थीं।

कौरवो की सेना की व्यूह रचना देखकर युधिष्ठिर ने अर्जुन को आज्ञा दी—

"शत्रुओ की सेना सख्या में बहुत बडी मालूम होती है। हमारी सेना कुछ कम है, इस कारण इसकी व्यूह-रचना ऐसे करो, जिसमें वह अधिक न फैल जाय। एक जगह सब वीरो को इकट्ठे रहकर लडना होगा। अत सेना को सूची-मुख (सूई की नोक के समान) व्यूह में सज्जित करो।"

इस प्रकार दोनो पक्ष की सेनाओ की व्यूह-रचना हो गई। अर्जुन ने युद्ध के लिए तैयार हुए वीरो को देखा, तो उसके मन में शका हुई कि हम यह क्या करने जा रहे हैं। उसने अपनी यह शका श्रीकृष्ण पर प्रकट

की और तब अर्जुन के इस भ्रम को दूर करने के लिए श्रीकृष्ण ने जिस कर्मयोग का उपदेश दिया, वह तो विश्वविख्यात है। श्रीमद्‍भगवद्‍गीता के रूप में वह ग्रथ आज भी सारे ससार के लोगो को—चाहे वे किसी भी देश के हो—मुक्ति-मार्ग पर चलने का रास्ता बताता है।

: ६५ :

आशीर्वाद-प्राप्ति

सब लोग इसीकी राह देख रहे थे कि कब युद्ध शुरू हो। पर एकाएक पाडव-सेना के बीच में हलचल मच गई। देखते क्या है कि धर्मराज युधिष्ठिर ने अचानक अपना कवच और धनुष बाण उतार कर रथ पर रख दिया है और रथ से उतरकर हाथ जोड कौरव-सेना के हथियार-बद सैनिक-पक्तियो को चीरते हुए भीष्म की ओर पैदल जा रहे है। बिना कुछ सूचना दिये उनको इस प्रकार जाते देखकर दोनो ही पक्ष वाले अचभे में आगये।

अर्जुन तुरत रथ से कूद पडा और युधिष्ठिर के पीछे कौरव सेना में घुस गया। दूसरे पाडव और श्रीकृष्ण भी उनके साथ ही हो लिये। उन्हे यह डर हो रहा था कि अपनी स्वाभाविक शाति-प्रियता के आवेश में कहीं युधिष्ठिर इस घडी युद्ध न करने की या युद्ध बद करने की न ठान लें।

अर्जुन लपककर युधिष्ठिर के पास जा पहुचा और उनसे बोला—"महाराज, आप इस हालत में हमें छोडकर कहा जा रहे है? आपने कवच और शस्त्र क्यो उतार डाले? शत्रु तो कवच और अस्त्र-शस्त्रो से सज्जित खडे है। और बस, अभी युद्ध शुरू ही होने वाला है। आखिर आपकी मशा क्या है?"

पर युधिष्ठिर को तो यह सब सुनाई नहीं देता था। वे अपनी ही धुन में चले जा रहे थे। अर्जुन की बातें उन्होने सुनी ही नहीं। वह आगे बढ़ते चले गये।

इतने में श्रीकृष्ण बोले—"अर्जुन ! मैं समझ गया कि महाराज युधिष्ठिर की इच्छा क्या है। वे युद्ध शुरू होने से पहले पितामह भीष्म आदि बडे-बूढो की अनुमति एव आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए उस प्रकार नि - शस्त्र होकर जा रहे है। क्योकि बिना बडे-बूढो की आज्ञा लिये युद्ध करना अनुचित माना जाता है। यही कारण है कि धर्मराज ने यह न्यायोचित और विजय प्राप्त करने वाली नीति अख्तियार की। धर्मराज का उद्देश्य अच्छा ही है।"

उधर दुर्योधन की सेना के वीरो ने जब देखा कि युधिष्ठिर बाहे ऊपर उठाये और हाथ जोडे चले आ रहे है तो समझा, कि वे सधि करने के उद्देश्य से ही आ रहे होगे। यह सोचकर किसीने तो उन्हे धिक्कारा। कुछ ने आनद का अनुभव किया। वे आपस में कहने लगे—वह देखो ! राजा युधिष्ठिर हाथ जोडे नि शस्त्र होकर चले आ रहे हैं। हमारी भारी सेना देखकर वे डर गये और अब हमसे सुलह करने आ रहे है। धिक्कार है ऐसे डरपोको को, जो सारे क्षत्रिय-कुल के अपमान का कारण बन रहे हैं।

शत्रु-सेना के हथियार-बद वीरो की कतार को चीरते हुए युधिष्ठिर सीधे पितामह भीष्म के पास जा पहुचे और झुककर उनके चरण छुये। फिर बोले—"पितामह ! हमने आपके साथ लडने का दु साहस कर ही लिया। कृपया हमें युद्ध शुरू करने की अनुमति दीजिये और आशीर्वाद भी कि हम युद्ध में विजय प्राप्त करें।"

भीष्म बोले—"वत्स युधिष्ठिर, मुझे तुमसे यही आशा थी। तुमने भरत-वश की मर्यादा रख ली। तुमसे मै बहुत ही प्रसन्न हुआ। मैं स्वतत्र नहीं हू—विवश होकर मुझे तुम्हारे विपक्ष में रहना पडा है। फिर भी मेरी यही कामना है कि रण में तुम्हारी विजय हो। जाओ, हिम्मत से युद्ध करो—विजय तुम्हारी ही होगी। तुम कभी परास्त नहीं हो सकते।"

भीष्म की आज्ञा और आशीर्वाद प्राप्त कर लेने के बाद युधिष्ठिर आचार्य द्रोण के पास गये और परिक्रमा करके उनको दंडवत किया।

आचार्य ने आशीर्वाद देते हुए कहा—"धन किसीके अधीन नही होता। किंतु मनुष्य तो धन ही का गुलाम बना रहता है, यही कारण है कि मै भी कौरवो के अधीन हू—उनका साथ देने को बधा हू। फिर भी मेरी यही कामना है कि जीत तुम्हारी ही हो।" आचार्य द्रोण से आशीष ले धर्मराज ने आचार्य कृप एव मद्रराज शल्य के पास जाकर उनके भी आशीर्वाद प्राप्त किये और अपनी सेना में लौट आये।

युद्ध शुरू हुआ, तो पहले बडे योद्धाओ में द्वद्व होने लगा। बराबर की ताकत वाले, एक ही जैसे हथियार लेकर दो-दो की जोडी में लडने लगे। अर्जुन के साथ भीष्म, सात्यकि के साथ कृतवर्मा और अभिमन्यु बृहत्पाल के साथ भिड गये। भीमसेन दुर्योधन से जा भिडा। युधिष्ठिर शल्य के साथ लडने लगे। धृष्टद्युम्न ने आचार्य द्रोण पर सारी शक्ति लगाकर हमला बोल दिया और इसी प्रकार प्रत्येक वीर युद्ध-धर्म का पालन करते हुए द्वद्व-युद्ध करने लगा।

इन हजारो द्वद्व-युद्धो के अलावा 'सकुल' युद्ध भी होने लगा। हजारो-लाखो सैनिक झुड-के-झुड जाकर विरोधी सैनिक दल पर टूट पडने लगे। इस प्रकार एक दल के दूसरे दल से लडने को 'सकुल-युद्ध' कहा जाता था। दोनो पक्ष के असख्य सैनिक पागलो की भाति अधाधुध लडे और गाजर-मूली की भाति कट मरे। रक्त और मास के साथ रौंदी जाकर हरी-भरी भूमि कीचड-भरे दलदल-सी बन गई। ऊपर से कितने ही घोडे और हाथी भी इस दलदल में कट-कटकर गिरे। इस कारण रथो का चलना कठिन हो गया। उनके पहिये कीचड में धस जाते थे। कभी-कभी लाशो के अटक जाने से भी रथो की गति रुक जाती थी।

आजकल की युद्ध-प्रणाली में द्वद्व-युद्ध की प्रथा तो बंद हो गई है। अधाधुध 'सकुल' युद्ध ही हुआ करता है।

भीष्म के नेतृत्व में कौरव-वीरो ने दस दिन तक युद्ध किया। दस दिन के बाद भीष्म आहत हुए और द्रोणाचार्य सेनापति नियुक्त किये गये। द्रोणाचार्य भी जब खेत रहे तो कर्ण को सेनापतित्व ग्रहण करना पडा।

सत्रहवें दिन की लडाई में कर्ण का भी स्वर्गवास हुआ। उसके बाद शल्य ने कौरवो का सेनापति बनकर सेना का सचालन किया ।

इस प्रकार महाभारत का युद्ध, कुल अठारह दिन चला। युद्ध के अतिम दिनो में घोर अन्याय और कुचक्रो से काम लिया गया । कुयुक्तियो का बोलबाला हो गया।

प्राय. देखा जाता है कि धर्म अचानक नष्ट नही हो जाता । समय-समय पर उसे विषम परिस्थितियो का सामना करना पडता है और उसकी परीक्षा-सी हुआ करती है। बडे-बडे धर्मात्मा भी ऐसी नाजुक घडियो में अपना औसान भूल जाते है और अधर्म की राह चल पडते है। बडे जिस रास्ते जाय, साधारण लोग भी उसीका अनुसरण करते है । फलत अधर्म पर सब-के-सब उतारू हो जाते है। धीरे-धीरे धर्म की आवाज नक्कारखाने में तूती की-सी हो जाती है। अत में धर्म का नामो-निशा तक मिट जाता है और ससार पर अधर्म ही का राज हो जाता है।

: ६६ :

पहला दिन

अक्सर कौरवो की सेना के अग्रभाग पर दु शासन ही रहा करता था और पाडवो की सेना के आगे भीमसेन। वीरो के गर्जन, शखो के बजने की तुमुल ध्वनि, विविध बाजो का शब्द, भेरियो का भैरवनिनाद, घोडो का हिनहिनाना, हाथियो का चिंघाडना आदि सभी शब्दो ने मिलकर आकाश को गुजा दिया था। बाणो को 'साय-सांय' करके जाते देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो आकाश से तारे टूट रहे हो। बाप ने बेटे को मारा। बेटे ने पिता के प्राण लिये। भानजे ने मामा का वध किया। मामा ने भानजे का काम तमाम किया। युद्ध का यह दृष्य था।

पहले दिन की लड़ाई में भीष्म ने पाडवो पर ऐसा हमला किया कि देख-

कर पाडव-सेना थर्रा उठी। पितामह का रथ जिधर चला, उधर ही कालदेव का भयकर नृत्य-सा होने लगा। सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु यह देखकर क्रोध में आगया और वृद्ध पितामह का बढना रोका। दोनो पक्ष के वीरो में से सबसे छोटे बालक अभिमन्यु को, सबसे वयोवृद्ध धनुर्धारी भीष्म से भिडते देखकर देवता लोग भी मुग्ध हो गये।

अभिमन्यु का रथ आगे बढ़ा। उसकी ध्वजा पर सोने का कर्णिकार वृक्ष चित्रित था। अभिमन्यु ने कृतवर्मा पर एक बाण चलाया, शल्य पर पाच और भीष्म को नौ बाण मारे। एक और बाण ने दुर्मुख के सारथी का सिर धड से अलग गिरा दिया। दूसरे बाण ने कृपाचार्य के धनुष को नष्ट कर दिया। अभिमन्यु की यह युद्ध-कुशलता देखकर देवताओ ने फूल बरसाये। भीष्म और उनके अनुगामी वीरो ने भी सुभद्रा-पुत्र की भूरि-भूरि प्रशसा की और कहा कि यह पिता के ही समान वीर है।

इसके बाद कौरव-वीरो ने अभिमन्यु को चारो ओर से घेर लिया और एक साथ उस पर बाणो की बौछार कर दी। किंतु अभिमन्यु इससे तनिक भी विचलित न हुआ। भीष्म ने जितने बाण मारे उन सबको अभिमन्यु ने अपने बाणो से काटकर उडा दिया। एक बाण उसने ऐसा निशाना ताककर मारा कि जिससे भीष्म की ध्वजा कट गई। भीष्म के रथ की ध्वजा कटी देखकर भीमसेन का दिल बासो उछल पडा और वह सिह की भाति दहाड उठा। काकाजी की गरज सुनकर भतीजे का हौसला दस गुना बढ गया।

सुकुमार बालक की इस अद्भुत रण-कुशलता को देखकर पितामह का मन भी अभिमान एव आनद से फूल उठा। उनको खेद हुआ कि मुझ बूढे को अपनी सारी शक्ति लगाकर अपने पोते से लडना पड रहा है! यह सोचकर वे बडे व्यथित हुए। फिर भी अपना कर्त्तव्य समझकर बालक पर बाणो की बौछार करने लगे। यह देखकर विराट, उत्तर, धृष्टद्युम्न, भीमसेन आदि पाडव-पक्ष के वीरो ने आकर चारो ओर से अभिमन्यु को घेर कर अपने बीच में ले लिया और सबोने भीष्म पर जोरो का

हमला कर दिया। इसका नतीजा यह हुआ कि भीष्म को अभिमन्यु की तरफ से ध्यान हटाकर इन लोगो से अपना बचाव करना पड़ गया।

विराटराज-पुत्र कुमार उत्तर हाथी पर सवार होकर शल्य से आ भिडा। शल्य के रथ के चारो घोडे हाथी के पाव के नीचे आगये और कुचल कर मर गये। यह देख मद्रराज बडे जोश में आगये और अपना शक्ति नामक हथियार उत्तर पर चला दिया। वह अस्त्र उत्तर का कवच भेदकर उसकी ठीक छाती के अदर जा लगा। उसके हाथ सें अकुश और तोमर छूटकर गिर गये और हाथी के मस्तक पर से राजकुमार उत्तर का मृत-शरीर पृथ्वी पर लुढक पडा।

उत्तर के स्वर्ग सिधार जाने पर भी उसके हाथी ने शल्य पर धावा करना न छोडा। मद्रराज में और उत्तर के हाथी में ऐसी भीषण भिडत हुई कि देखते ही बनता था। शल्य ने खड्ग का प्रहार करके हाथी की सूड काटकर गिरा दी। तिस पर भी हाथी का जोश ठडा न हुआ। यह देखकर शल्य ने उसके मर्म-स्थानो को बाणो से बीध डाला। तब वह हाथी, भयानक चिघाड के साथ गिर पडा।

विराटराज के जेठे पुत्र श्वेत ने दूर से देखा कि उसके छोटे भाई को शल्य ने मार डाला है, इससे उसे अपार क्रोध हो गया। क्रोध के मारे वह ऐसे लाल हो उठा जैसे घी डालने से अग्नि प्रज्वलित हो उठी हो। राज-कुमार ने अग्नि-ज्वाला की भाति मद्रराज के रथ पर हमला कर दिया। कुमार श्वेत के हाथो शल्य की कहीं मृत्यु न हो जाय, इस भय से सात रथिको ने मद्रराज को अपने घेरे में ले लिया। उन सातो ने रथ पर से श्वेत पर उजले बाणो की बौछार की तो ऐसा प्रतीत हुआ जैसे काले-काले बादलो पर असख्य बिजलिया कौंध रही हो। श्वेत इससे तनिक भी विचलित न हुआ। उसने अपने तेज बाणो के प्रहार से कौरव-वीरो के धनुष काट डाले। इस पर सातो वीरो ने सात शक्तियो का श्वेत पर प्रयोग किया। श्वेत ने सात भाले फेंककर शक्तियो के टुकडे कर दिये। श्वेत ने वह कमाल दिखाया कि स्वयं कौरव-वीर भी विस्मित रह गये। इतने में शल्य को आफत में

फसा देखकर दुर्योधन एक भारी सेना लेकर उनकी रक्षा के लिए चला। इस सेना में और पाडव-सेना में भयानक युद्ध छिड गया। हजारो वीर खेत रहे। असख्य रथो के धुर्रे उड गये। हजारो की सख्या में हाथी और घोडे ढेर होकर गिर पडे। श्वेत ने दुर्योधन की सेना की धज्जिया उडा दीं और उसे तितर-बितरकर के भीष्म पर ही वार कर दिया। और दोनो में घमासान युद्ध होने लगा।

राजकुमार श्वेत ने भीष्म के रथ की ध्वजा फिर काटकर गिरा दी। भीष्म ने श्वेत के रथ के घोडे और सारथी को बाणो से मार गिराया और रथ की ध्वजा काट डाली। तब फिर श्वेत ने अपना शक्ति नामक शस्त्र भीष्म पर चला दिया। भीष्म ने तीर चलाकर उसे बीच ही में रोक लिया।

इस पर श्वेत ने भारी गदा उठाकर जोरो से घुमाई और भीष्म के रथ पर दे मारी। देखते-ही-देखते भीष्म ने रथ पर से कूदकर अपने प्राण बचा लिये। श्वेत की गदा के वार से भीष्म का रथ चूर-चूर होकर बिखर गया। भीष्म क्रोध के मारे आपे से बाहर होगये और एक बाण खींचकर श्वेत पर जोर से मारा। बाण के लगते ही विराट-कुमार श्वेत के प्राण-पखेरू उड गये। यह देख दु शासन बाजे बजाता हुआ नाच उठा। इसके बाद भीष्म ने पाडवो की सेना में भयकर प्रलय मचा दी।

पहले दिन की लडाई में पाडवो की सेना बहुत ही तग आगई। धर्मराज युधिष्ठिर के मन में भय छा गया। दुर्योधन आनद के कारण झूमता हुआ दिखाई दिया। पाडव घबराहट के साथ श्रीकृष्ण के पास गये और उपाय सोचने लगे।

श्रीकृष्ण सबका साहस बधाते हुए युधिष्ठिर से बोले—"भरतश्रेष्ठ! आप कोई चिंता न करें। आपके चारो भाई विख्यात शूर है। तो फिर आप नाहक भय-विह्वल क्यो हो रहे हैं? आपका साथ देने के लिए जब विराटराज, पाचालराज, उनके वीर पुत्र धृष्टद्युम्न एव हम है तो फिर घबराने का कारण ही क्या रहा? क्या आपको यह भी स्मरण नही रहा कि भीष्म

की हत्या करना ही शिखडी के जीवन का एकमात्र ध्येय है ?" इस प्रकार श्रीकृष्ण युधिष्ठिर और पाडव-सेना का धीरज बधाने लगे।

: ६७ :

दूसरा दिन

पहले दिन की लडाई में पाडव-सेना की जो दुर्गति हुई उससे सबक लेकर पाडव-सेना के नायक धृष्टद्युम्न ने दूसरे दिन बडी सतर्कता के साथ व्यूह-रचना की और सैनिको का साहस बधाया।

क्षुब्ध सागर-सी फैली अपनी सेना को देखकर दुर्योधन मारे दर्प के मस्त हो उठा और गरजकर बोला—"वीरो! प्राण हथेली पर लेकर लडो। जीत हमारी होकर रहेगी।"

भीष्म के सेनापतित्व में कौरव-सेना ने पाडवो की सेना पर फिर भीषण आक्रमण कर दिया। पाडवो की सेना तितर-बितर हो गई। बडा हाहाकार मच गया। असख्य वीर मौत के घाट उतारे जाने लगे।

यह देख अर्जुन से न रहा गया। अपने सारथी वासुदेव से बोला—"यदि हम इसी प्रकार लापरवाह रहे तो भीष्म हमारी सेना को मटियामेट करके छोडेंगे। इसलिए हमें मन लगाकर लडना होगा और भीष्म का वध करके ही दम लेना होगा। नहीं तो हमारी सेना की कुशल नही।"

"ठीक कहते हो, धनंजय! यह लो। मैं भीष्म की ओर अपना रथ लिये चलता हू। खूब सतर्क रहना। लो, यह भीष्म खडे हैं।" कहते-कहते श्रीकृष्ण ने अर्जुन का रथ भीष्म की ओर घुमा दिया।

अर्जुन के रथ को अपनी ओर तेजी से आते देखकर भीष्म ने उसका बाणो से वीरोचित स्वागत किया। सारा विश्व जिन्हें वीरो में श्रेष्ठ कहकर पूजता था। उन महारथी भीष्म ने बडी सतर्कता के साथ, चुने हुए बाण, निशाना लगाकर अर्जुन पर चलाये। दुर्योधन ने पहले ही से आज्ञा

दे रक्खी थी कि सभी वीर हर हालत में भीष्म की ही रक्षा में तत्पर रहे। अत कौरव-वीर भीष्म को चारो ओर से घेरकर अर्जुन का मुकाबला करने लगे।

किंतु अर्जुन भला कब इन आघातो की परवाह करने वाला था! वह निधडक कौरव-सेना की पक्ति तोडता हुआ आगे बढा। सारी कौरव-सेना में तीन ही ऐसे वीर थे, जो अर्जुन का मुकाबला कर सकते थे। भीष्म, द्रोण तथा कर्ण। इन तीन वीरो को छोडकर और कोई भी अर्जुन के आगे क्षण भर भी नही टिक सकता था। सारे कौरव-वीरो को अपना प्रतिरोध करते देखकर अर्जुन ने उनकी पक्ति तोड दी और उनके ठीक बीचोबीच जा डटा और फिर अपना गाडीव-धनुष हाथ में लेकर इस कुशलता से उसने युद्ध किया कि कौरव-सेना के सभी महारथी देखकर दग रह गये। शत्रुओ के रथो के बीच होता हुआ अर्जुन का रथ इस वेग से इधर-उधर चक्कर काटता रहा कि कोई उसे कहीं देख नहीं पाता था। इस अद्भुत युद्ध-कुशलता को देखकर दुर्योधन का कलेजा काप उठा। एकबारगी भीष्म पर से उसका विश्वास उठ-सा गया।

भय-विह्वल होकर वह बोला—"पितामह, प्रतीत होता है, आपके व आचार्य द्रोण के जीते-जी अर्जुन और श्रीकृष्ण सारी कौरव-सेना को खाक में मिलाकर रहेगे। महारथी कर्ण ने, जो मुझसे स्नेह करता है, आपके कारण हथियार न उठाने का प्रण कर रक्खा है। जान पडता है, मुझे निराशा ही का सामना करना होगा। आप मुझे किसी विधि उबारें और कोई-न कोई उपाय करके अर्जुन को मौत के मुह में पहुचा दें।"

इन कटु वचनो से भीष्म को बडा क्रोध हुआ और जोश में आकर भीष्म ने अर्जुन पर जोरो से हमला कर दिया। भीष्म और अर्जुन में ऐसा भयानक सग्राम छिड गया कि आकाश में स्वय देवता लोग उसे देखने के लिए आ इकट्ठे हुए। भीष्म और अर्जुन दोनो ही के रथो में सफेद घोडे जुते हुए थे। दोनो ही समान शक्ति-सपन्न थे और रण-कुशलता में भी एक दूसरे से कम न थे। बडे उत्साह के साथ दोनो वीरो ने अपनी-अपनी कुश-

लता दिखाई, मानो उन्हे उसमें असीम आनद आ रहा हो। बडी देर तक यह युद्ध होता रहा। दोनो तरफ से एक दूसरे पर असख्य बाण चलाये गये। बाणो ने बाणो को काटकर गिरा दिया। कभी-कभी भीष्म के चलाये कुछ बाण श्रीकृष्ण की छाती पर भी लग गये। घावो से लहू निकलने लगा। श्रीकृष्ण के श्याम रग के शरीर पर खून की बूदें ऐसी सुशोभित हुई जैसे तमाल वृक्ष (पलाश-वृक्ष) की हरी-भरी टहनियो पर लाल-लाल फूल शोभा दे रहे हो। श्रीकृष्ण को इस प्रकार घायल देखकर अर्जुन आपे से बाहर हो गया। क्रोधित होकर वह भीष्म पर टूट पडा और एक बार जोर का वार कर दिया।

इस प्रकार अर्जुन और भीष्म के बीच बडी देरतक तुमुल युद्ध होता रहा। फिर भी हार-जीत का कोई निर्णय न हो सका। दोनो ने अदभुत चतुरता का परिचय दिया था। जब दोनो के रथ वेग से आकर एक दूसरे से टकराते थे तब दूर से देखनेवाले को केवल ध्वजा देखकर ही पहचानते थे कि कौनसा रथ भीष्म का और कौनसा अर्जुन का। वरना दोनो रथो में कोई अतर ही दिखाई नहीं पडता था। यह चमत्कार देखकर मनुष्य तो मनुष्य, स्वय देवता लोग भी विस्मय में पड जाते थे। एक ओर यह अदभुत युद्ध हो रहा था, दूसरी ओर द्रुपदराज के पुत्र धृष्टद्युम्न, जो द्रोणाचार्य के जन्म के वैरी थे, आचार्य के साथ भिडे हुए थे।

आचार्य द्रोण ने धृष्टद्युम्न पर पैने बाणो की बौछार करके उन्हे घायल कर दिया। पर धृष्टद्युम्न जरा भी न घबराया। वह घृणा-पूर्वक हसता हुआ आचार्य पर पैने बाण बरसाता रहा। आचार्य ने सहज ही में उन बाणो को काट गिराया। इसमें धृष्टद्युम्न का सारथी भी मारा गया। इससे राजकुमार को बहुत क्रोध हो आया। उत्तेजित होकर भारी गदा हाथ में लेकर वह द्रोण पर टूट पडा। आचार्य ने गदा को बाणो से चूर-चूरकर दिया। फिर धृष्टद्युम्न तलवार लेकर द्रोण पर ऐसे झपटा, जैसे हाथी पर सिंह। किंतु द्रोण ने शरो की वर्षा से राजकुमार का शरीर बुरी तरह से बींध डाला। यहा तक कि धृष्टद्युम्न

से चला भी नही गया। इतने में पाचाल राजकुमार की यह हालत देखकर भीमसेन उसके बचाव के लिए दौडा और द्रोणाचार्य पर बाणो की एक साथ वर्षा कर दी। इससे पल भर के लिए द्रोण रुक गये। यह समय पाकर भीमसेन ने धृष्टद्युम्न को अपने रथ पर बिठा लिया और युद्ध-क्षेत्र से निकाल लिया।

यह देख दुर्योधन ने कलिगराज की सेना को आज्ञा दी कि वह भीम का पीछा करे और उस पर हमला करे।

कलिग-सेना को भीमसेन ने तहस-नहस कर दिया। उस सेना के असख्य सैनिक मृत्यु के घाट उतार दिये। भीम ने ऐसा प्रलय मचाया कि देखकर सेना हाहाकार कर उठी। वह कहने लगी कि कही यमराज तो भीम के रूप में नही उतर आये! एक बार निराशा का यह भाव मन में आना था कि कौरव-सेना की हिम्मत टूट गई। सैनिको के मन में भय छा गया। उनका हौसला पस्त हो गया। कौरव-सेना का यह हाल देखकर भीष्म अर्जुन से लडना छोडकर उनकी सहायता के लिए इधर ही आ पहुचे। यह देखकर सात्यकि, अभिमन्यु आदि पाडव-वीर भी भीमसेन की रक्षा के लिए आगये और भीष्म पर सबने हमला कर दिया। सात्यकि के चलाये एक बाण ने भीष्म के सारथी को मार गिराया। सारथी के गिर जाने पर घोडे हवा से बातें करते हुए अत्यत वेग से भाग खडे हुए। यह देख पाडव-सेना के वीर बासो उछल पडे और साथ ही कौरवो की सेना पर टूट पडे। इससे कौरव-सेना में बडी तबाही मची। सब कौरव-वीर पश्चिम की ओर देख-देखकर यह मनाने लगे कि युद्ध बद हो, ताकि इस तबाही से मुक्ति मिले।

निदान सूर्य अस्त हुआ। सध्या हुई। भीष्म द्रोणाचार्य से बोले—"आचार्य! उचित यही होगा कि अब युद्ध बद कर दिया जाय। आज हमारी सेना के वीर बडे थके है।"

और युद्ध बद हुआ। अर्जुन आदि पाडव-वीर विजय के बाजे बजाते और आनद से झूमते हुए अपने शिविरो को लौटे।

पहले दिन की लडाई के बाद पाडवो में जो आतक छाया हुआ था, वह आज के युद्ध के बाद कौरवो के मन में छा रहा था।

: ६८ :

तीसरा दिन

तीसरे दिन सबेरे भीष्म ने अपनी सेना की गरुड के आकार में व्यूह-रचना की और उसके अगले सिरे का बचाव दुर्योधन के जिम्मे किया। सब प्रकार की तैयारिया बडी सतर्कता के साथ की गई थीं। इसलिए कौरवो को दृढ विश्वास था कि शत्रु आज हमारा व्यूह तोड ही नहीं सकेंगे।

उधर पाडवो ने भी बडी सतर्कता के साथ व्यूह-रचना की। अर्जुन और धृष्टद्युम्न ने सलाह करके कौरवो का गरुड-व्यूह तोडने के उद्देश्य से अपनी सेना का व्यूह अर्द्ध-चद्र की शक्ल में बनाया। एक सिरे पर भीमसेन और दूसरे सिरे पर अर्जुन रक्षा करने के लिए खडे हो गये कि जिससे सेना का बचाव भलीभाति हो सके।

इस प्रकार दोनो सेनाओ की व्यूह रचना हो जाने के बाद दोनो पक्ष फिर युद्ध में लग गये और एक दूसरे पर हमला करने लगे। दोनो सेनाओ की टुकडिया इस प्रकार आपस में एक दूसरे से गुथ गईं और उनमें इतना भीषण सग्राम होने लगा कि रथो, हाथियो और घोडो के तेज चलने के कारण धूल उडकर आकाश में छा गई, जिसके कारण सूरज भी छिप गया। अर्जुन ने कौरव-सेना पर बडा भीषण हमला किया। फिर भी वह शत्रु-सैन्य का मोर्चा न तोड सका।

कौरव-सेना के वीरो ने भी पांडवो की कतारें तोडने की चेष्टा की और वे सारी शक्ति लेकर अर्जुन पर टूट पडे। कौरव-वीरो ने, अपने सब प्रकार के पैने हथियारो से अर्जुन के रथ पर भीषण हमला कर दिया। टिड्डी-दल की भाति अपनी ओर आते हुए उन हथियारो

को अर्जुन ने अपनी रण-कुशलता से रोक लिया और बडी तेजी से अपने चारो ओर बाण चलाते हुए उसने बाणो का एक घेरा-सा खडा कर लिया और इस प्रकार शत्रु-दल के भयानक हथियारो को निकम्मा कर दिया।

उधर दूसरी ओर शकुनि को भारी सेना के साथ आया देखकर सात्यकि और अभिमन्यु ने उसका मुकाबला किया। शकुनि भी बडा कुशल योद्धा था। सात्यकि के रथ को उसने तहस-नहस कर दिया। तब सात्यकि जोश में आगया और अभिमन्यु के रथ पर चढ़कर शकुनि की सेना पर भीषण हमला करके उसे नष्ट कर दिया।

युधिष्ठिर जिस सेना का सचालन कर रहे थे, उस पर भीष्म और द्रोणाचार्य एक साथ टूट पडे। यह देख नकुल और सहदेव युधिष्ठिर की सहायता करने दौड पडे और द्रोणाचार्य की सेना पर बाणो से जोरो का हमला कर दिया। उधर भीम और घटोत्कच ने एक साथ दुर्योधन पर हमला बोल दिया। घटोत्कच ने ऐसी कुशलता का परिचय दिया कि उसके सामने स्वय भीमसेन का पराक्रम भी फीका पड गया।

भीमसेन के चलाये एक बाण से दुर्योधन जोर का धक्का खाकर बेहोश होगया और रथ पर गिर पडा। यह देख उसके सारथी ने सोचा कि दुर्योधन को लडाई के मैदान से हटा लिया जाय जिससे कौरव-सेना को दुर्योधन के मूच्छित होने का पता न चले। उसे भय हुआ कि अगर सेना को पता चल गया कि दुर्योधन मूच्छित होगये है तो खलबली मच जायगी और व्यूह-रचना टूट जायगी। इन्हीं विचारो से प्रेरित होकर सारथी जल्दी से रथ को युद्धि-भूमि से हटा कर छावनी की ओर होगया। किंतु उसने जो सोचा था, हुआ उससे उलटा ही। कौरव-सेना का अनुशासन स्थिर रखने के उद्देश्य से उसने जो कार्य किया था, वही उसके अनुशासन के टूटने और सेना में खलबली मच जाने का कारण बन गया। कौरव-सैनिको ने समझा कि दुर्योधन युद्ध-क्षेत्र से भाग खडे हुए। इससे सारी कौरव-सेना भयभीत हो उठी। सैनिको में भगदड मच गई। इस प्रकार सेना का अनुशासन भग हो जाने पर व्यूह-रचना भी नष्ट हो गई।

घबराये हुए और भय के मारे भागने वाले सैनिको का पीछा करके भीमसेन ने उन्हे बाण मार-मार कर बहुत परेशान किया ।

तितर-बितर हो रही कौरव-सेना को सेनापति भीष्म एव आचार्य द्रोण ने किसी तरह इकट्ठा किया और फिर से व्यवस्थित रूप से व्यूह-रचना की । इसी बीच दुर्योधन की मूर्च्छा दूर हुई तो उसने भी मैदान में आकर परिस्थिति को सम्हालने में भीष्म और द्रोण का हाथ बटाया । जब जरा शाति हुई और व्यवस्था बधी तो वह भीष्म के पास गया और पितामह भीष्म को जली-कटी सुनाने लगा । बोला—

"आप और आचार्यजी क्या करते है, जो अपनी सेना को भी ठीक से सम्हाल कर नहीं रख सकते और जब उस पर हमला होता है तो उसे तितर-बितर होते देख कर भी कुछ करते-धरते नहीं । आपके सेनापतित्व में सेना का यह हाल हो, यह हमारे और आपके लिए बडे अपमान की बात है । पर मालूम ऐसा होता है कि आप पर इसका कोई असर नहीं हो रहा है । इसका तो यही अर्थ है कि आप पाडवो को चाहते है । यदि यह सही है, तो पहले ही से आपने क्यो नही कह दिया कि मै पाडवो, सात्यकि, धृष्टद्युम्न आदि के विरुद्ध नहीं लड सकता । मुझे स्पष्ट क्यो नहीं बता दिया कि तेरे शत्रु ही मेरे प्रिय है ? यदि यह बात न होती—और आप और द्रोणाचार्य मन लगा कर पाडवो से लडते तो उस सेना को हराना आप दोनो के बायें हाथ का खेल है । अब भी समय है कि आप दोनो स्पष्ट रूप से मुझे बता दें । अगर मेरा साथ छोड देना है तो बिना किसी झिझक के कह दें और पाडवो के पक्ष में चले जाय । मै अकेला ही उनसे लडूगा ।"

युद्ध में बुरी तरह से हार जाने से दुर्योधन घबरा गया था । फिर उसे पहले ही से मालूम था कि भीष्म मेरी चालो को पसद नहीं करते। यही नहीं, घृणा की दृष्टि से देखते है । इसी कारण खिसिया कर उसने इस प्रकार भीष्म को जली-कटी सुनाई ।

दुर्योधन की इन मूर्खता भरी और नादान बातो पर भीष्म को जरा हसी-सी आई । वे बोले—"बेटा ! मैने अपनी बात तुमसे छिपाई कहा है ?

स्पष्ट रूप से तुमको जो सलाह मैंने दी—उसकी ओर तुमने जरा भी ध्यान नहीं दिया। कितनी बार तुम्हे समझा कर कहा कि पाडवो पर विजय तुम कभी नहीं पा सकोगे। पर तुमने मेरी चेतावनी पर ध्यान ही कब दिया और कर्ण के बहकावे में आकर युद्ध छेड दिया। यह मेरी तो भूल नहीं थी। फिर यदि मै तुम्हारा साथ दे रहा हू तो वह केवल कर्त्तव्य से प्रेरित होकर। यद्यपि मै बूढ़ा हो गया हू, पर लड़ाई में मै पीछे हटने वाला नहीं हू। तुम अपने मन से यह ख्याल हटा दो कि मै पाडवो के प्रेम के कारण उन्हें हराने में कोई कोई कसर उठा रखूगा।"

इतना कह कर भीष्मने फिर से युद्ध शुरू कर दिया।

इधर पाडवो की सेना में आनद छाया हुआ था। दिन के पहले भाग में उन्होंने कौरव-सेना पर जिस प्रकार हमला कर के तितर-बितर कर दिया था, उससे इस बात की आशा न थी कि भीष्म इस बिखरी सेना को फिर से इकट्ठा करके हम पर टूट पड़ेंगे। पर उनका यह विचार गलत साबित हुआ। भीष्म ने ऐसा भयानक हमला किया कि पाडव-सेना के पाव उखड-से गये। ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो भीष्म ने माया से अपने को एक से अनेक बना लिया हो। जिधर देखो, उधर भीष्म ही भीष्म दिखाई देते थे। दुर्योधन की जली-कटी बातो ने उनके क्रोध को इतना भडका दिया कि वे ऐसे दिखाई दिये, जैसे कोई जलता हुआ अगार इधर-से-उधर घूमकर प्रलय मचा रहा हो। जो भी भीष्म के सामने आया कि भस्म होगया, जैसे पतग आग में गिरकर भस्म हो जाता है। भीष्म ने ऐसा प्रलयकारी युद्ध किया कि पाडव-सेना भय-विह्वल हो उठी और तितर-बितर होकर भागने लगी। श्रीकृष्ण, अर्जुन और शिखडी के प्रयत्नो के बावजूद सेना अनुशासन न रख सकी।

यह सब देख श्रीकृष्ण बोले— "अर्जुन! अब तैयार हो जाओ। आज तुम्हारी परीक्षा का समय आगया। तुमने शपथ खाई थी न, कि भीष्म द्रोण आदि गुरुजनो एव मित्रो तथा सबधियो का सहार करूगा? अब समय आगया कि अपनी शपथ को पूरा कर दिखाओ। हमारी सेना

इस समय भय-विचलित हो रही है। उनके पाव उखड रहे हैं। यही समय है कि भीष्म पर जोर का आक्रमण करके अपनी सेना का उत्साह बधाओ और उसे नष्ट होने से बचाओ।"

अर्जुन ने यह सब देखा और श्रीकृष्ण के कथन पर विचार करके निश्चय-पूर्वक बोला—"माधव, आप रथ को भीष्म की ओर कर लीजिए।"

अर्जुन का रथ तेजी से भीष्म की ओर चला। भीष्म ने अर्जुन को अपनी ओर आते देख बाणो की बौछार से उसे रोकने की चेष्टा की। अर्जुन ने गाडीव पर चढाकर तीन बाण ऐसे खींच कर मारे कि भीष्म का धनुष टूट गया। भीष्म ने दूसरा धनुष हाथ में लिया और प्रत्यचा चढाना ही चाहते थे कि अर्जुन के बाण ने उसके भी टुकडे कर दिये। अर्जुन की यह निपुणता देखकर पितामह मुग्ध हो गये। पर भीष्म ने भी बडी निपुणता से एक साथ बहुत से अचूक बाण अर्जुन को लक्ष्य करके मारे। अर्जुन ने उन बाणो का काट तो किया, परतु श्रीकृष्ण को उससे तसल्ली न हुई। उन्होने मन-ही-मन सोचा कि भीष्म के प्रति अर्जुन के मन में जो श्रद्धा है, उसके कारण अर्जुन ठीक से युद्ध नहीं कर रहा है। उधर भीष्म का आक्रमण तो हर घडी बल पकडता जा रहा था। पाडव-सेना घबराई हुई भाग रही थी। ऐसी विषम परिस्थिति पर जरा भी हिचकिचाने से बना-बनाया काम बिगडने का भय था।

यह सोचकर श्रीकृष्ण ने, भीष्म के बाणो से बचने के लिए, अर्जुन के रथ को घुमा-फिरा कर बडी निपुणता से चलाया, परतु फिर भी भीष्म के चलाये हुए कई बाण अर्जुन एव श्रीकृष्ण के शरीर पर लग ही गये। इसपर श्रीकृष्ण को असीम क्रोध हो आया। उनसे न रहा गया। उन्होने खुद भीष्म को मारने की ठानी। घोडो की रास छोड दी और चक्र हाथ में लेकर रथ पर से कूद पडे और भीष्म की ओर दौडे।

किंतु भीष्म इससे जरा भी विचलित न हुए। उनके मुख पर प्रसन्नता झलक रही थी। आह्लाद के साथ बोल उठे—"आओ, माधव, आओ! आओ! नमस्कार है तुम्हे। मेरे अहोभाग्य कि मेरी खातिर तुम्हे रथ

पर से उतरना पडा! यह लो, करो मेरा वध कि जिससे मेरा सुयश तीनो लोको में व्याप्त हो जाय। तुम्हारे हाथो मरकर तो मै वह पद प्राप्त करूगा, जिससे इस पार लौटना नहीं पडता।"

अर्जुन यह देख सन्न रह गया। उसने सोचा कि यह तो बडा अनर्थ हो जायगा। वह रथ से उतरा और श्रीकृष्ण के पीछे भागा। बडे परिश्रम से श्रीकृष्ण के पास पहुचकर उन्हे पकड पाया और बोला—"नाराज न हो, माधव, मै स्वय यह करूगा। मेरी सुस्ती को क्षमा करें।"

अर्जुन के आग्रह पर श्रीकृष्ण वापस लौटे और फिर से अर्जुन का रथ हाकने लगे।

श्रीकृष्ण के इस कार्य से अर्जुन उत्तेजित हो उठा और कौरव-सेना पर वह मानो वज्र के समान गिरा। हजारो की सख्या में कौरव-वीरो को उसने मौत के घाट उतार दिया और शाम होते-होते कौरव-सेना बडी बुरी तरह से हार गई। थकी-हारी सेना मशालो की रोशनी में अपने शिविर को लौट चली।

कौरव-सैनिक आपस में बातें करते थे कि भीष्म को हराना अर्जुन की ही सामर्थ्य की बात थी। अर्जुन के सिवा और किसकी हिम्मत होती, जो हारी लडाई को जीत में बदल लेता।

: ६९ :

चौथा दिन

लडाई में हर दिन एक ही जैसी घटनाए हुआ करती है। मार-काट व हार-जीत के सिवाय उसमें होता भी क्या है कि जिससे कथा मनोरजक बने? परतु महाभारत के आख्यान की सर्व प्रधान घटना ही युद्ध है। उसे अगर ध्यान से न पढा जाय तो कथा के भावो और भावोद्वेगो का सही परिचय प्राप्त नहीं हो सकता।

पौ फटी। भीष्म ने कौरवो की सेना का फिर से व्यूह रचा। द्रोण, दुर्योधन आदि वीर उन्हे घेर कर खडे हो गये। वे उस समय ऐसे मालूम होते थे मानो देवताओ से घिरे देवराज इद्र वज्र हाथ में लिये खडे हो। भीष्म ने सब देखभाल कर सेना को आगे बढने की आज्ञा दी। हनुमान की ध्वजा वाले रथ पर से अर्जुन ने भीष्म की हलचलो का निरीक्षण कर लिया और युद्ध के लिए तैयार हो गया। लडाई शुरू हो गई।

अश्वत्थामा, भूरिश्रवा, शल्य, चित्रसेन, शल-पुत्र आदि पाचो वीरो ने बालक अभिमन्यु को एक साथ घेर लिया और भीषण वार करने लगे। अर्जुन का वीर बालक उससे जरा भी विचलित न हुआ और पाचो आक्रमण-कारियो का इस दृढता के साथ मुकाबला किया, जैसे हाथियो के समूह का एक सिह का बच्चा मुकाबला करता हो। अर्जुन ने जब यह देखा तो उसे बडा क्रोध आया और तुरत अभिमन्यु के पास पहुच गया। अर्जुन के आजाने से युद्ध में और गरमी आगई। इतने में धृष्टद्युम्न भी एक भारी सेना लेकर उधर ही आ पहुचा।

शल का पुत्र मारा गया। यह खबर पाकर शल और शल्य दोनो उस जगह आ पहुचे और धृष्टद्युम्न पर बाणो की वर्षा करने लगे। शल्य ने एक तीखा बाण चला कर धृष्टद्युम्न का धनुष काट डाला। यह देख अभिमन्यु से न रहा गया। उसने शल्य पर तेज बाणो की बौछार कर दी। अभिमन्यु का क्रोध देखकर कौरव-वीर काप उठे। शल्य पर भारी सकट आया जानकर दुर्योधन और उनके भाई उसकी मदद पर आगये और शल्य को चारो ओर से घेर लिया। इसी बीच भीमसेन भी उधर आ पहुचा और जम-कर युद्ध करने लगा। दु शासन आदि ने जब यह देखा तो एकबारगी काप उठे। यह देख दुर्योधन को बडा क्रोध हो आया। उसने क्रोध में ही हाथियो की भारी सेना लेकर भीमसेन पर हमला कर दिया। चिंघाडते हुए हमला करने वाले हाथियों का मुकाबला करने के लिए भीमसेन रथ पर से कूद पडा और लोहे की एक भारी गदा लेकर उन पर पिल पडा। भीम की मार खाकर हाथी भयभीत हो उठे और आपस में ही लडने लगे।

वह दृश्य बडा भीषण व साथ-साथ दयनीय भी था। कौरवो की हाथी-सेना का यह हाल देखकर पाडव-सेना के वीरो ने उन हाथियो पर बाणो की और बौछार कर दी जिससे वे और भी भयभीत हो गये।

भीमसेन उन मस्त हाथियो के बीच में घुस गया और उनको बुरी तरह से काट-काटकर गिराने लगा। उस समय ऐसा मालूम होता था, मानो देवराज इद्र पर्वतो के पख काट रहे हो। असख्य हाथी मारे गये और पहाडो की भाति रण-भूमि में गिर पडे। बचे-खुचे घबराहट के मारे इधर उधर भागते हुए कौरवो की सेना का ही नाश करने लगे।

यह सब देखकर दुर्योधन से न रहा गया। उसने आज्ञा दे दी कि सारी कौरव-सेना एकत्र होकर अकेले भीम पर आक्रमण कर दे। पर कौरव-सेना के इस आक्रमण से भीमसेन जरा भी विचलित न हुआ और सुमेरु पर्वत के समान अचल डटा रहा।

इसी बीच पाडव-सेना के और वीर भीम की सहायता को आ पहुचे।

दुर्योधन ने भीम पर जो बाण चलाये थे, उनमें से कई भीमसेन की छाती पर लग गये थे। इससे भीम जरा चिढ गया था। वह फिर से रथारूढ होगया और अपने सारथी से बोला—"विशोक! देखो तो, धृतराष्ट्र के ये बेटे मेरे सामने युद्ध-क्षेत्र में आ खड हुए है। मै बडा ही खुश हू। मेरे इच्छा-रूपी पेड पर मानो आज ही फल निकल रहे है और मेरे हाथ आगये है। तुम रास को जरा सभाल कर पकड लो। घोडो को सतर्कता से हाको। मै आज ही इन सबको यमराज के दरबार में भेजे देता हू।"

यह कहते-कहते भीमसेन ने धनुष तानकर दुर्योधन पर कई बाण एक साथ चला दिये। बाणो का प्रहार ऐसा भीषण था कि दुर्योधन के अगर कवच न होता तो उसके प्राण ही न रहते। कवच के कारण वह बच गया। पर इस हमले में भीमसेन ने दुर्योधन के आठ भाई मार डाले।

दुर्योधन ने भी क्रोध में आकर कई तीखे बाण भीमसेन पर चलाये। एक बाण से भीमसेन के धनुष के टुकडे कर दिये। इस पर भीमसेन ने दूसरा धनुष ले लिया और तलवार की-सी तेज धार वाला बाण चलाकर

दुर्योधन का धनुष काट डाला। दुर्योधन ने भी दूसरा धनुष ले लिया और खूब निशाना साध भीमसेन की छाती पर एक भीषण अस्त्र चलाया। चोट खाकर भीम मूर्च्छित-सा होकर रथ पर बैठ गया। यह देख अभिमन्यु आदि वीरो ने दुर्योधन पर प्रखर अस्त्रो की वर्षा कर दी। अपने पिता का यह हाल देखकर घटोत्कच के क्रोध का ठिकाना न रहा। वह आपे से बाहर होगया और उसने भयानक युद्ध शुरू कर दिया। घटोत्कच के भीषण आक्रमण के आगे कौरव-सेना टिक न सकी।

सेना को विह्वल होती देखकर भीष्म पितामह द्रोण से बोले—"द्विजवर! इस राक्षस के आगे आज हम नहीं ठहर सकेंगे। एक तो हमारे सैनिक थके हुए है, दूसरे शाम भी हो चली है। अधेरा हो जाने पर तो राक्षस की शक्ति और भी बढ़ेगी। इस कारण आज का युद्ध अभी बद कर दें। कल फिर देखा जायगा।" यह कहकर भीष्म ने सेना लौटा ली।

उस दिन की लडाई में दुर्योधन के कितने ही भाई मारे गये। चिंता-ग्रस्त दुर्योधन अपने शिविर में जाकर व्यथित हृदय बैठ गया। उसकी आखें भर आईं।

●

हस्तिनापुर में बैठ, सजय के मुह से भारत-युद्ध की घटनाओ का वर्णन सुनते हुए, धृतराष्ट्र आर्त्त स्वर में बोले—

"संजय! तुम तो सदा मेरे ही बधु मित्रो एवं पुत्रो के मारे जाने और दुख उठाने की बात सुनाते जा रहे हो! क्या इसका मतलब यह है कि मेरे पुत्र और उनके साथी ही हार रहे है? संजय! सचमुच मुझे बहुत शोक होता है। कौन-सी ऐसी बात है, जिससे मेरे पुत्र जीतने की आशा करते है? यह मेरे लिए असह्य हो रहा है। ऐसा मालूम होता है, मानो प्रारब्ध का लिखा कोई मेट नहीं सकता।"

सजय ने उत्तर दिया—"राजन्! यह जो कुछ अन्याय हो रहा है, वह सब आप के ही कर्म का परिणाम है। अब घबराने से क्या बन सकता

है ? अस्थिर न होइए ! दृढता के साथ सारी घटनाओ का हाल सुनते जाइए ।"

"विदुर की सब बातें अब सच साबित हो रही है ।" कहकर धृतराष्ट्र ने गहरी सास ली और अपने बिस्तर पर पड गये ।

"सजय ! जैसे कोई तैर कर समुद्र को पार नही कर सकता वैसे-ही इस असीम दु ख को मै कभी पार नही कर सकूगा ।" धृतराष्ट्र ने रुद्ध कठ से कहा ।

कुरुक्षेत्र के मैदान का आखो देखा हाल सजय धृतराष्ट्र को सुनाता जाता था । वहाका बयान सुनते-सुनते धतराष्ट्र व्यथित हो जाते और वह दु ख उनकी सहन-शक्ति से भारी हो जाता, तो वह कुछ कह-सुनकर अपना शोक-भार हलका कर लेते ।

"मेरे सारे पुत्र भीमसेन के ही हाथो मार डाले जाने वाले है! हमारे पक्ष में कौनसा ऐसा शूर-वीर है, जो मेरे पुत्रो की रक्षा कर सके ! मेरे ध्यान में तो ऐसा कोई वीर हमारी तरफ दीखता नहीं । युद्ध में हार कर हमारी सेना मैदान छोडकर भागती है तो भीष्म, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा आदि वीर खडे-खडे क्या देखा ही करते है ? सेना को बचाने का वे कोई प्रयत्न नहीं करते ? कौन-सी अशुभ घडी में मेरे बेटो की रक्षा करने का उन्होंने निश्चय किया था ? अगर यही हालत रही तो मेरा एक भी पुत्र जीता नहीं बचता दीखता । हा दैव ! तूने मेरे भाग्य में क्या लिख रखा है?" कहकर वृद्ध धृतराष्ट्र रोने लगे ।

सजय बोले—"राजन् ! शात होइए । पाडव धर्म पर स्थिर है । इसलिए युद्ध में भी विजय उन्हीकी होनी है । माना कि आपके भी पुत्र बडे वीर है । किंतु उनके मन में कुविचार ही उठते है । यही कारण है कि उनकी अवनति ही होती जा रही है । पाडवो की उन्होंने बुराई की । वे अब अपने ही किये का फल पा रहे है । पाडव और कुछ नही करते, केवल क्षत्रियोचित ढग से न्यायपूर्वक युद्ध कर रहे है । न्याय के मार्ग से विचलित न होने के कारण उनका बल नष्ट नही हुआ । उल्टे वह बढ

रहा है। आपको विदुर ने, द्रोण ने, भीष्म ने और मैंने कितना समझाया। फिर भी आपने किसीकी न सुनी । अपने हितैषियो की बात न मानी। अपनी ही राह चले। जैसे कोई योगी मूर्खता-वश दवा न खाने की हठ करे, वैसे ही आप अपने मूर्ख पुत्र ही की राय मानते रहे और वह बात नही मानी जिससे कुल का हित हो सकता था। अब आप पछता रहे है, लेकिन इससे क्या फायदा हो सकता है ? और सुनिये, आपके पुत्र दुर्योधन ने भी चौथी रात को भीष्म से यही प्रश्न किया जो आपने अभी मुझसे किया। भीष्म ने उसका क्या उत्तर दिया, यह भी आपको अभी सुनाता हू।"

इस भूमिका के साथ सजय ने कहना शुरू किया।

●

चौथे दिन का युद्ध बद हुआ। रात हो चली। दुर्योधन अकेले पितामह भीष्म के शिविर में गया और बडी नम्रता के साथ पूछा—"पितामह! यह तो सारा ससार जानता है कि आप, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा, कृतवर्मा, भूरिश्रवा, विकर्ण, भगदत्त आदि साहसी वीर मृत्यु से जरा नहीं डरते। इसमें भी कोई सदेह नही कि आप लोगो की शक्ति और पराक्रम के सामने पाडवो की सेना कुछ नहीं है। आपमें से एक-एक के विरुद्ध पाचो पाडव इकट्ठे भी जुट जाय, फिर भी जीत उनकी नही हो सकेगी। इतना सब कुछ होते हुए भी क्या कारण है कि कुती के पुत्र हमें रोज युद्ध में हराते जाते है ? अवश्य इसमें कोई रहस्य मालूम होता है । मुझे यह समझाइये।"

भीष्म ने शात-भाव से उत्तर दिया— "बेटा दुर्योधन ! मेरी बात सुनो। मैंने कितने ही प्रकार से तुम्हें समझाया। ऐसी युक्तिया बताई जिनसे तुम्हारा हित हो सकता था। परतु तुमने एक न सुनी। बुजुर्गो का कहा न माना। पर अब भी चेत जाओ। पाडवो से सधि कर लो, जिसमें तुम्हारी भी कुशल हो और ससार की भी। आखिर दोनो एक ही कुल के हो—भाई-भाई हो। राज्य को आपस में बाटकर दोनो बधु-गण सुखपूर्वक भोग सकते हो । इससे पहले भी मैंने तुम्हें यही सलाह दी।

पर तुमने नहीं मानी। उल्टे पाडवो का अपमान किया। अब तुम यह अपने ही किये का फल पा रहे हो। भगवान् कृष्ण जिनके रक्षक है, उन पाण्डवो की विजय अवश्य होगी, इसमें सदेह नहीं। मै अब भी तुमको सावधान किये देता हू कि पाडवो से सधि कर लेना ठीक होगा। इससे एक तो तुम्हे शक्तिमान भाई प्राप्त होगे। दूसरे, तुम राज्य का भी सुख भोग सकते हो। स्मरण रहे—श्रीकृष्ण और अर्जुन नर-नारायण के अवतार हैं। उनकी अवहेलना करोगे तो तुम्हारा सर्वनाश निश्चित है।"

भीष्म से बिदा लेकर दुर्योधन अपने शिविर में चला गया। पलग पर लेटा हुआ बडी देरतक विचारो में डूबा रहा। उसे नींद नहीं आई।

: ७० :

पांचवां दिन

अगले दिन सुबह होने पर दोनो सेनाए फिर सुसज्जित हो गईं। भीष्म ने आज और भी अधिक सुरक्षित रूप से अपनी सेना की व्यूह-रचना की। उधर पाडव-सेना की भी व्यूह-रचना युधिष्ठिर ने बडी सतर्कता से की। सदा की भाति भीमसेन सेना के आगे खडा होगया। शिखडी, धृष्टद्युम्न और सात्यकि, उनके पीछे सेना की रक्षा करते हुए खडे रहे और सब पाडव-वीर श्रेणी-बद्ध होकर उनके पीछे। सबसे पिछली कतार में युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव खडे थे।

शख-ध्वनि के साथ लडाई शुरू हो गई। भीष्म ने धनुष तानकर बाणो की झडी लगानी शुरू कर दी और शीघ्र पाडव-सेना को नाकोदम कर दिया। सेना में हाहाकार मच गया। यह देखकर धनजय ने भीष्म पर कई बाण मारे और उन्हे बहुत सताया।

सदा की भाति अपनी सेना को भयभीत होते देखकर दुर्योधन ने आचार्य द्रोण को बुरा-भला कहा, जिससे द्रोण क्रोध में आगये और बोले—

"तुम पाडवो के पराक्रम से परिचित नहीं हो, यही वजह है जो तुम ऐसी बकझक किया करते हो। फिर भी मै अपनी ओर से तो कोई कसर नही रखता।" यह कहकर द्रोणाचार्य पाडवो की सेना पर टूट पडे। यह देख सात्यकि ने उसका पूरी ताकत से जवाब दिया। दोनो में भयानक युद्ध छिड गया। परतु आचार्य द्रोण के आगे भला सात्यकि कबतक टिकता ? सात्यकि की बुरी गत होते देखकर भीमसेन उसकी सहायता को दौडा और आचार्य पर बाणो की बौछार कर दी।

इसपर युद्ध और भी जोर पकड गया। द्रोण, भीष्म और शल्य, तीनो कौरव-वीर भीमसेन के मुकाबले में आ डटे। यह देखकर शिखडी ने भीष्म और द्रोण पर तीखे बाणो की झडी लगादी। शिखण्डी के मैदान में आते ही भीष्म रग-भूमि छोडकर चले गए। भीष्म का कहना था कि शिखडी चूकि जन्म से पुरुष नहीं, स्त्री है, इसलिए उसके साथ लडना क्षात्र-धर्म के विरुद्ध है।

जब भीष्म मैदान छोडकर हट गये तो द्रोणाचार्य ने शिखडी पर हमला कर दिया। महारथी होते हुए भी, द्रोण के आगे शिखडी ज्यादा देर न टिक सका। विवश होकर द्रोण के आगे से उसे हट जाना पड़ा।

दोपहर तक भीषण सकुल युद्ध होता रहा। दोनो तरफ से सैनिक आपस में गुत्थमगुत्था होकर लडने लगे। दोनो तरफ के असख्य वीर इस युद्ध में बलि चढ गये।

तीसरे पहर दुर्योधन ने सात्यकि के विरुद्ध एक भारी सेना भेज दी। सात्यकि ने उस सेना का सर्वनाश कर दिया और भूरिश्रवा को खोजते हुए जाकर उनसे भिड गया। किंतु भूरिश्रवा भी साधारण वीर न था। बडा पराक्रमी था। सात्यकि की सेना पर जोरो से हमला करके सबको खदेड दिया। अकेला सात्यकि अततक डटा रहा। यह हाल देखकर सात्यकि के दसो पुत्र भूरिश्रवा पर टूट पडे।

दसो वीर युवको के हमले का अकेले भूरिश्रवा ने बडी वीरता से मुकाबला किया। यद्यपि सात्यकि के दसो बेटो ने उसे घेरकर बाणो की

बौछार कर दी तो भी भूरिश्रवा ने अद्भुत चतुरता का परिचय दिया। उन सबके धनुष उसने काट डाले और दसो को एक साथ ही यमपुरी पहुचा दिया। दसो पराक्रमी वीर जमीन पर धडाम से ऐसे गिर पडे जैसे वज्र गिरने पर पेड। अपने सारे पुत्रो को यो युद्ध-भूमि में मृत होकर पडे देखकर सात्यकि मारे शोक और क्रोध के आपे से बाहर होगया और भूरिश्रवा पर झपटा। दोनो के रथ आपस में टकराकर चूर-चूर होगये। तब दोनो ढाल-तलवार लेकर भूमि पर लडने लगे। इतने में भीम तेजी से रथ चलाता हुआ सात्यकि के आगे आ खडा हुआ और उसे ज़बरदस्ती रथ पर बिठाकर युद्ध-भूमि से बाहर लेआया। भूरिश्रवा तलवार का ऐसा धनी था कि जिसके आगे किसीकी नहीं चलती थी। भीमसेन यह बात भली-भाति जानता था और इसी कारण उसने सात्यकि को भूरिश्रवा से लडने से रोक लिया।

उस दिन सध्या होते-होते अर्जुन ने हजारो कौरव-सैनिको का जीवन समाप्त कर दिया। जितने वीर अर्जुन के विरुद्ध लडने के लिए दुर्योधन ने भेजे वे सब ऐसे बेबस होकर मरे जैसे आग में कीडे। यह देखकर पाडव-सेना के वीरो ने अर्जुन को चारो ओर से घेर लिया और ज़ोर का जयजय-कार कर उठे। इतने में सूरज डूबा और भीष्म ने युद्ध बद करने की आज्ञा दी। थकेथकाये सैनिक अपनी-अपनी छावनी की ओर चले गए।

: ७१ :

छठा दिन

अगले दिन प्रात काल युधिष्ठिर की आज्ञा के अनुसार सेनापति धृष्टद्युम्न ने पाडव-सेना की मकर-व्यूह में रचना की। उधर क्रौंच-व्यूह में रची हुई कौरव-सेना सामने खडी थी।

उन दिनो, सैन्य-व्यूहो के नाम, किसी पशु या पक्षी के-से होते थे। यह तो सब जानते है कि व्यायाम के जो आसन प्रचलित है, उनके भी नाम

पशु-पक्षियो के नाम पर होते है---जैसे मत्स्यासन, गरुडासन, इत्यादि । यह भी उसी समय से प्रचलित हुआ है, ऐसा मालूम होता है । सेना-व्यूहो के नाम भी इसी भाति रखे जाते थे ।

किसी व्यूह-विशष की रचना करते समय इन बातो का ध्यान रखना पडता था कि सेना का फैलाव कैसा हो ? विभिन्न सेना-विभागो का बटवारा कैसा हो ? अर्थात प्रत्येक स्थान पर कौन-सा विभाग किस सख्या में स्थित हो, कौन-कौन से सेना-नायक किन-किन मुख्य स्थानो पर खडे रह कर सैन्य-सचालन करें, आदि। इन सब बातो को खूब सोच-विचार कर आक्रमण एव बचाव दोनो प्रकार की कार्रवाइयो की कुशल व्यवस्था रखना ही व्यूह-रचना का उद्देश्य होता था। जिस व्यूह का आकार मगरमच्छ का-सा होता उसका नाम मकर-व्यूह रखा जाता था। क्रौच, गरुड आदि व्यूहो के भी नाम इसी तरह पडे । उन दिनो के समर-शास्त्र में कई प्रकार के व्यूहो का वर्णन पाया जाता है ।

भारत-युद्ध के सचालक योद्धा लोग, जिस दिन जो उद्देश्य साधना हो, उस पर और घटनाओ के रुख पर पहले ही से सोच-विचार कर लेते थे और उसीके अनुसार व्यूह-रचना का निश्चय करते थे ।

छठे दिन सवेरे युद्ध छिडते ही दोनो तरफ की जन-हानि बडी तादाद में होने लगी ।

आचार्य द्रोण का सारथी मारा गया। इस पर द्रोण ने स्वयं रास पकडकर रथ चला लिया और पाडव-सेना में घुस कर ऐसा प्रलय मचाया मानो आग का अगारा रुई के ढेर को जलाकर राख कर रहा हो ।

शीघ्र ही दोनो सेनाओ के व्यूह टूट-फूट गये। इस पर दोनो पक्ष के सेना-समूह बाध तोडकर निकल पडे और एक-दूसरे से भिड गये। एसी मार-काट मची कि रक्त की नदी-सी बह निकली। सारे युद्ध-क्षेत्र में मरे हुए हाथी-घोड़े, और खेत रहे सैनिको की लाशो तथा टूटे रथो के बड़े-बड़े ढेर लग गये ।

इतने में भीमसेन शत्रु-सैन्य में अकेले घुस गया और दुर्योधन के भाइयो

का वध करने की इच्छा से उन्हे खोजने लगा । शीघ्र ही दुर्योधन के भाइयो ने भीम को आ घेरा । दु शासन, दुर्विषह आदि ने एक साथ भीमसेन पर चारो ओर से बाणो का वार कर दिया । वायुपुत्र भीम, जिसे भय छू तक न गया था—ऐसे आक्रमण से भला कब विचलित होने वाला था ! वह अकेले ही उन सभीके मुकाबले में डटा रहा । दुर्योधन के भाइयो की इच्छा तो भीमसेन को कैद कर लेने की थी । किंतु भीमसेन की इच्छा उन सबका काम ही तमाम कर डालने की थी ! लडाई की भयानकता का क्या कहे ! ऐसा भयानक सग्राम हुआ कि जैसे देवताओ तथा असुरो के बीच हुआ बतलाते है । इतने में अचानक भीमसेन को न जाने क्या सूझा । वह उठ खडा हुआ और अपने सारथी विशोक से बोला— "विशोक! तुम यहीं पर ठहरे रहो, मै जरा आगे चलता हू और धृतराष्ट्र के इन दुष्ट पुत्रो का काम तमाम करके लौटूगा । मै न लौटू, तबतक तुम यहीं पर खडे रहना ।" यह कहकर भीमसेन हाथ में गदा लेकर रथ पर से कूद पड़ा और शत्रु-दल के बीच में जा घुसा । घोडो, सवारो एव रथो को चकनाचूर करता हुआ वायुपुत्र भीमसेन दुर्योधन के भाइयो की ओर इस प्रकार बढ रहा था, मानो कराल काल हाथ में दड लिये घूम रहा हो ।

धृष्टद्युम्न ने जब भीमसेन को रथ पर चढ़कर शत्रु-सेना में घुसते देखा तो वेग से उसका पीछा किया । अत में भीम के रथ को एक जगह खडा देखा । पर वहा रथ पर अकेला सारथी ही था, भीमसेन न था । वह चौंक पडा और अज्ञात आशका से उसका दिल धडकने लगा । रथ के पास जाकर सारथी से पूछने लगा—

"विशोक ! मेरे प्राणप्रिय भीमसेन कहां गये ?"

सारथी विशोक ने द्रुपद राजकुमार को नमस्कार करके निवेदन किया, "सेनापते ! पाडु-पुत्र मुझे यहा पर ठहरने की आज्ञा देकर आप हाथ में गदा लिये इसी सेना-समुद्र में कूद पडे है और धृतराष्ट्र के पुत्रो की खोज में है । आगे का हाल तो मुझे मालूम नही ।"

यह सुन धृष्टद्युम्न शकित हो उठा । उसे भय हुआ कि कहीं सारे

कौरव-पुत्र एक साथ मिलकर भीमसेन पर हमला न कर दें। यह सोच पाडव-सेनापति स्वय भी शत्रु-सेना में घुस पडा। भीमसेन की गदा की मार से जो हाथी-घोडे मरे पडे थे, उन्ही के द्वारा भीम का पता लगाता हुआ धृष्टद्युम्न आगे बढा।

दूर शत्रुओ के समूह में भीमसेन दिखाई दिया। धृष्टद्युम्न ने देखा कि भीमसेन हाथ में गदा लिये भूमि पर खडा है। उसकी लाल-लाल आखो से मानो चिनगारिया निकल रही हैं, सारा शरीर घावो से भरा है। शत्रु-दल के रथारूढ़ वीर, भीमसेन को चारो तरफ से घेरे हुए बाणो की बौछार कर रहे है। यह देखकर धृष्टद्युम्न का हृदय अभिमान एव श्रद्धा से भर आया। वह रथपर से कूद पडा और दौडकर भीम को छाती से लगा लिया और खीचकर अपने रथ पर बिठा लिया। फिर उसके शरीर पर लगे बाणो को एक-एक करके निकालने लगा।

यह देख दुर्योधन ने अपने सैनिको से कहा—"देखते क्या हो? द्रुपद-कुमार और भीमसेन पर हमला बोल दो। भले ही वे चुनौती स्वीकार करें या न करें। दोनो में से कोई बचने न पावे।" यह सुनते ही कितने ही कौरव-वीर एक साथ उन दोनो पर टूट पडे। भीम और धृष्टद्युम्न ने न तो चुनौती दी, न स्वीकार ही की। वे युद्ध करने को प्रस्तुत न हुए। फिर भी कौरव-वीर उन पर बाण बरसाते रहे।

यह देख धृष्टद्युम्न से न रहा गया। उसने कौरवो पर मोहनास्त्र का प्रयोग किया जिससे वे सब अचेत हो गये। (धृष्टद्युम्न ने मोहनास्त्र का प्रयोग द्रोणाचार्य से सीखा था।) इतने में दुर्योधन वहा आ पहुचा। उसने मोहनास्त्र के प्रभाव को दूर करने वाला अस्त्र चलाया। उसके प्रयोग से सारे कौरव-वीर फिर जाग्रत हो उठे और दुर्योधन ने सबको उत्साहित करके धृष्टद्युम्न पर जोरो से आक्रमण कर दिया।

इतने में युधिष्ठिर ने वीर अभिमन्यु के सेनापतित्व में भीमसेन और धृष्टद्युम्न की सहायता के लिए सेना भेज दी। अभिमन्यु ठीक समय पर अपनी सेना के साथ धृष्टद्युम्न की मदद पर जा पहुचा।

यह मदद पहुंच जाने पर धृष्टद्युम्न बडे उत्साह के साथ लडने लगा। इधर भीमसेन भी जरा विश्राम करके कैकय-राज के रथ पर आरूढ होकर कौरवो पर भीषण प्रहार करने लगा। इतना सब होने पर भी द्रोण के पराक्रम एव उग्रता के आगे भीमसेन आदि की वीरता फीकी-सी पड जाती थी। आचार्य द्रोण ने द्रुपद कुमार के सारथी और घोडो को मार डाला और उसके रथ को चकनाचूर कर दिया। इस पर धृष्टद्युम्न अभिमन्यु के रथ पर जा चढा और अविचलित भाव से अपना युद्ध जारी रक्खा। पर अत में द्रोण ने वह तबाही मचाई कि पाडव-सेना के पाव उखड गये। पाडव सैनिको के हृदय काप उठे।

इसके बाद तो अधाधुध सकुल युद्ध होने लगा। असख्य वीर और सैनिक मारे गये। दुर्योधन और भीमसेन के भी दो-दो हाथ हुए। दोनो ने पहले तो वाक्-बाणो का एक दूसरे पर प्रहार किया। फिर हथियारो की लडाई हुई। दोनो वीर रथो पर आरूढ होकर एक-दूसरे पर भीषण शस्त्र-प्रहार करने लगे। अत में दुर्योधन बुरी तरह घायल हुआ और बेहोश होकर रथ पर गिर पडा। तब कृपाचार्य ने बडी चतुराई से उसे अपने रथ पर ले लिया जिससे दुर्योधन की जान बच गई। उसी समय भीष्म उधर आ पहुचे और कौरव-सेना का सचालन आप ही करने लगे। उन्होने पाडव-सेना को तितर-बितर कर दिया। बडी देर तक इसी प्रकार तुमुल युद्ध होता रहा, यहातक कि पश्चिमी आकाश लाल हो चला। सूरज डूबा ही चाहता था। फिर भी कुछ मुहूर्त्त तक युद्ध जारी ही रहा।

सूर्यास्त के बाद युद्ध समाप्त हुआ। आज का युद्ध इतना भयकर था कि धृष्टद्युम्न और भीमसेन के सकुशल शिविर में लौट आने पर युधिष्ठिर ने बड़ा आनद मनाया। उनकी खुशी की सीमा न थी।

: ७२ :

सातवां दिन

दुर्योधन का सारा शरीर घावो से भरा था। असह्य पीडा हो रही थी। पितामह भीष्म के पास जाकर वह बडा झल्लाया और बोला—"पितामह! प्रतिदिन पाडवो की ही जीत होती जा रही है। वे ही हमारे व्यूह को तोडते और हमारे वीरो को मौत के घाट उतारते जा रहे है, फिर भी न जाने आप क्यो कुछ करते-धरते नही?"

दुर्योधन को सात्वना देते हुए भीष्म ने उत्तर दिया—

"बेटा दुर्योधन! द्रोणाचार्य, शल्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, विकर्ण, भगदत्त, शकुनि, राजा सुशर्म, मगध नरेश, कृपाचार्य और स्वय मुझ जैसे महारथी लोग जब तुम्हारी खातिर प्राणो तक की बलि चढाने को तैयार है तो फिर तुम्हे चिता काहे की? धीरज धरो, भगवान् सब ठीक ही करेंगे।" यह कहकर भीष्म सेना की व्यूह-रचना में लग गये।

जब व्यूह-रचना हो चुकी तो भीष्म बोले—"राजन्! अपनी इस सेना को तो देखो! हजारो की सख्या में रथ-घोडे, घुड-सवार, उत्तम हाथी, देश-विदेश से आये हुए शस्त्र-धारी सैनिक आदि से सज्जित इस विराट-सेना से मनुष्यो की कौन कहे, देवताओ तक को परास्त किया जा सकता है, फिर भय किस बात का?"

यह कह कर भीष्म ने दुर्योधन को एक ऐसा लेप दिया, जिसके लगाने से दुर्योधन के सारे घाव ठीक हो गये और वह फिर से ताजा हो उठा। इससे दुर्योधन का साहस एव उत्साह बढ गया और वह खुशी-खुशी फिर लडने को तत्पर हो गया।

उस दिन कौरवो की सेना का व्यूह मडलाकार रचा गया। एक-एक

हाथी के निकट सात-सात रथ खडे थे। हरेक रथ की रक्षा के लिए सात घुड-सवार सैनिक नियुक्त थे। एक-एक घुड-सवार का सात-सात धनुर्धारी वीर साथ दे रहे थे। एक-एक धनुर्धारी वीर का बचाव करने को दस-दस वीर ढाल लिये खडे थे। सभी वीर अभेद्य कवच पहने हुए थे। इस सुसज्जित, विशाल सेना-समूह के बीच में, अपने रथ पर खडा दुर्योधन ऐसे शोभायमान हुआ, जैसे देवताओ की सेना में देवराज इद्र।

उधर युधिष्ठिर ने पाडवो की सेना को 'वज्र-व्यूह' में रचवाया। उस दिन का युद्ध केंद्रित न था, बल्कि कई मोर्चों पर व्याप्त था। प्रत्येक मोर्चे पर विख्यात वीरो में घमासान युद्ध होता रहा। एक मोर्चे पर अर्जुन के विरुद्ध स्वय भीष्म डटे हुए थे। एक स्थान पर द्रोणाचार्य और विराट-राज में भीषण युद्ध हो रहा था। दूसरे एक मोर्चे पर शिखडी और अश्वत्थामा में लडाई हो रही थी। एक जगह धृष्टद्युम्न और दुर्योधन भिडे हुए थे। एक ओर नकुल और सहदेव अपने मामा शल्य पर बाण बरसा रहे थे। दूसरी ओर अवति के दोनो राजा युधामन्यु से लडते दिखाई दे रहे थे। एक मोर्चे पर दुर्योधन के चार भाइयो की अकेला भीमसेन खबर ले रहा था तो दूसरे मोर्चे पर घटोत्कच और भगदत्त में भयानक द्वद्व छिडा हुआ था। किसी और मोर्चे पर अलम्बुष और सात्यकि की टक्कर थी, तो कही दूर पर भूरिश्रवा धृष्टद्युम्न का मुकाबला कर रहे थे। युधिष्ठिर का श्रुतायु के साथ द्वद्व हो रहा था, जबकि कृपाचार्य और चेकितान एक दूसरे मोर्चे पर भिड रहे थे।

●

द्रोणाचार्य के साथ हुई लडाई में विराटराज को हार खानी पडी। उनका रथ, सारथी और घोडे सब नष्ट हो गये। इस पर विराटराज अपने पुत्र शख के रथ पर चढ गये। विराट-कुमार उत्तर एव श्वेत, पहले ही दिन की लडाई में काम आ चुके थे। सातवें दिन के युद्ध में तीसरे कुमार शख ने पिता के देखते-देखते प्राण त्याग दिये।

उधर शिखडी के रथ को अश्वत्थामा ने तोड-फोड़ डाला। इस पर

शिखडी जमीन पर कूद पडा और ढाल-तलवार लेकर अश्वत्थामा पर झपटा, किंतु अश्वत्थामा ने बाणो की बौछार से उसकी तलवार के टुकडे कर दिये। पर अपनी टूटी तलवार ही शिखडी ने बडे जोर से घुमा कर अश्वत्थामा पर फेंक मारी। अश्वत्थामा ने कुशलता से एक बाण ऐसा निशाना ताक कर मारा कि वेग के साथ आ रही तलवार रास्ते में ही कट गिरी। शिखडी बुरी तरह घायल हुआ और सात्यकि के रथ पर चढकर मैदान छोड कर भाग गया।

राक्षस अलम्बुष और सात्यकि में जो युद्ध हुआ, उसमें पहले सात्यकि की बडी बुरी गत हुई। किंतु थोडी ही देर में वह सभल गया और राक्षस अलबुष की बुरी तरह खबर ली। अलम्बुष हारकर उल्टे पाव भाग खडा हुआ।

दुर्योधन के रथ के घोडे धृष्टद्युम्न के बाणो के बुरी तरह शिकार हुए। इस पर दुर्योधन हाथ में खड्ग लेकर मैदान में कूद पडा और धृष्टद्युम्न की ओर झपटा। किंतु शकुनि ने बीच में पडकर दुर्योधन को रथ पर बिठा लिया और युद्ध-भूमि से हटा लिया।

अवती के दोनो भाई— विंद और अनुविंद युधामन्यु के विरुद्ध लडे और हार गये। उनकी सारी सेना नष्ट-भ्रष्ट हो गई।

वृद्ध भगदत्त हाथी पर सवार होकर घटोत्कच से लडा और उसकी सारी सेना को तितर-बितर कर दिया। अकेला घटोत्कच अत तक डटा रहा। भयानक युद्ध हुआ और अत में घटोत्कच हारकर मैदान छोड भाग खडा हुआ। भगदत्त की इस विजय पर कौरव-सेना में बडी खुशी मनाई गई।

एक दूसरे मोर्चे पर मद्रराज शल्य, अपने भानजो नकुल और सहदेव से लड रहा था। नकुल के रथ के घोडे मारे गये। वह तुरत सहदेव के रथ पर सवार होकर मामा शल्य पर बाण चलाने लगा। सहदेव के चलाये पैने बाणो से शल्य मूच्छित हो गया। शल्य का यह हाल देखकर उसके सारथी ने बडी चतुराई से अपने रथ को वहासे हटा लिया जिससे शल्य के प्राणो की रक्षा हो गई। कौरव-सेना ने जब देखा कि स्वय राजा शल्य

मैदान छोड कर भाग रहे है तो उसमें घबराहट फैल गई। माद्री पुत्रो ने विजय-शख बजाते हुए शल्य की सेना को तहस-नहस कर दिया।

दोपहर को युधिष्ठिर और श्रुतायु में जोर का युद्ध होने लगा। युधिष्ठिर का रथ श्रुतायु के रथ की ओर बढा। जाते-जाते युधिष्ठिर ने श्रुतायु पर कई बाण चलाये। श्रुतायु ने उन सब बाणो को रोका ही नहीं, बल्कि सात तीखे बाण युधिष्ठिर पर खींच कर मारे, जिससे युधिष्ठिर का कवच टूट गया और वह घायल हो गये। इस पर युधिष्ठिर को बडा क्रोध आगया और उन्होने एक बडा भयानक बाण श्रुतायु की छाती पर मारा। उस दिन युधिष्ठिर अपने स्वाभाविक शात-भाव से रहित-से हो गये और क्रोध के कारण प्रज्वलित हो उठे। अत में श्रुतायु अपने रथ, घोडे और सारथी से हाथ धो बैठा और घायल होकर लडाई का मैदान छोडकर भाग खडा हुआ। इस पर दुर्योधन की सेना में खलबली मच गई। सैनिक घबराहट में पड गये। इस घटना के बाद तो दुर्योधन की सेना का साहस और टूट गया और सैनिको में भय छा गया।

राजा चेकितान कृपाचार्य के साथ लडने लगा। कृपाचार्य ने चेकितान के सारथी को मार डाला और रथ को भी चकनाचूर कर दिया। इस पर चेकितान, खड्ग लेकर जमीन पर कूद पडा और कृपाचार्य के घोडो और सारथी को मार डाला। तब आचार्य कृप भी रथ से उतरे और पृथ्वी पर ही खडे हो चेकितान पर कई बाण चलाये। उन बाणो के प्रहार से चेकितान बहुत ही परेशान हो गया और तब क्रोध में आकर कृपाचार्य पर अपनी गदा वेग से घुमा कर फेंकी, परतु कृपाचार्य ने उसे भी बाणो से काट दिया। इस पर चेकितान तलवार घुमाता हुआ कृपाचार्य पर झपटा। कृपाचार्य ने भी तुरत धनुष फेंक दिया और खड्ग लेकर तैयार हो गये। दोनो में घात-प्रतिघात होता रहा। अत में दोनो ही घायल होकर गिर पडे। भीमसेन चेकितान को और शकुनि कृपाचार्य को अपने-अपने रथ पर बिठाकर शिविर में लेगये।

धृष्टकेतु ने छियानवें बाण भूरिश्रवा की छाती पर ताक कर चलाये।

सभी बाण निशाने पर जा लगे। उस समय भूरिश्रवा उन बाणो के साथ ऐसे देदीप्यमान हुए, जैसे सूर्य अपनी किरणो से सुशोभित होते हैं। ऐसे में भी भूरिश्रवा धृष्टकेतु के पीछे बुरी तरह पड गये और उसे युद्ध-भूमि से खदेड कर छोडा।

दुर्योधन के तीन भाई अभिमन्यु के साथ लड कर बुरी तरह हारे। अभिमन्यु चाहता तो उनके प्राण ले लेता। किंतु उसे भीमसेन की प्रतिज्ञा याद थी। इस कारण उनको जीवित छोडकर दूसरी ओर को हट गया। इतने में पितामह भीष्म अभिमन्यु से भिड पडे। अर्जुन ने जब यह देखा तो श्रीकृष्ण से बोला—"सखे ! मै भीष्म पर हमला करना चाहता हू। आप उधर को ही रथ चलाइये।"

अर्जुन के वहा पहुचते ही उसके और भाई भी वहा आ पहुचे। अकेले भीष्म पाचो पाडवो का सामना करने लगे। पर यह युद्ध अधिक देर नही चला। सूरज अस्त होने लगा और युद्ध बन्द हुआ। दोनो पक्ष के सैनिक और वीर थके-मादे, घावो की पीडा से तडपते व कराहते हुए अपने शिविरो में जा पहुचे।

दोनो तरफ के वीरो ने अपने-अपने शरीर पर लगे बाण निकाले और घावो को वैद्यक-रीति के अनुसार पानी से धो कर औषधि लगाई और थोडा विश्राम करने लगे। कुछ देर मन-बहलाव के लिए सगीत और वाद्य का आनद लेने लए। दोनो ओर के सैनिक उस आनद में इतने लीन हो गये कि युद्ध की चर्चा तक भूल गये।

: ७२ :

आठवां दिन

आठवें दिन सवेरे भीष्म ने कौरव सेना की व्यूह-रचना कछुए की शकल से की। इस पर युधिष्ठिर धृष्टद्युम्न से बोले—"कौरवो के कूर्म-व्यूह को

देखकर अपने सैन्य की व्यूह-रचना इस तरह करो कि जिससे शत्रु-व्यूह को तोडा जा सके। जल्दी इसकी व्यवस्था होनी चाहिए।

तब धृष्टद्युम्न ने पाडवो की सेना की तीन शिखरो (चोटियो) वाले व्यूह में रचना की। इस व्यूह के एक सिरे पर भीमसेन और दूसरे सिरे पर सात्यकि अपनी-अपनी सेनायें लेकर मुस्तैदी से खडे होगए। बीच वाले सिरे पर स्वय युधिष्ठिर खडे रहे।

सामरिक कला में हमारे पूर्वजो को काफी प्रवीणता प्राप्त थी। लडने के तौर-तरीको के बारे में यद्यपि कोई सुविस्तृत शास्त्र तो नहीं रचा गया तो भी प्राय सभी क्षत्रियो को उनका परपरागत ज्ञान पीढी-दर-पीढी प्राप्त होता चला आता था। शत्रु पक्ष के अस्त्र-शस्त्र तथा उन शस्त्रो की शक्ति इत्यादि बातो को देखते हुए, उस समय की प्रचलित युद्ध-पद्धति के अनुसार, उन दिनो के राजा लोग, अपने अस्त्र-शस्त्रो एव तौर-तरीको में आवश्यक परिवर्त्तन और परिवर्द्धन भी समय-समय पर कर लेते थे।

कुरुक्षेत्र के युद्ध को हुए कई हजार वर्ष हो चुके है। अत· महाभारत में जिस युद्ध का वर्णन है, उसकी आजकल के युद्ध की कार्रवाइयो के साथ तुलना करके उसे कोरी कल्पना ठहरा देना या निरर्थक बतगड समझना उचित नहीं। अभी डेढ ही सौ साल हुए, इग्लैड के वीर नेलसन ने अपनी सुप्रसिद्ध नौ-सेना को लेकर फ्रासीसियो के छक्के छुडा दिये थे। किंतु यदि उसी विजेता नेलसन के जहाजो और हथियारो की तुलना आजकल की नौ-सेना व हथियारो से की जाय तो उसके समय की लडाइया विलक्षण ही प्रतीत होगी! यदि डेढ ही सौ बरस के पहले की परिस्थिति यह थी तो भारत-युद्ध के समय की बात तो पूछना ही क्या है!

एक बात और भी है, जिसे हमें ध्यान में रखना चाहिए। युद्ध को ही विषय बनाकर जो काव्य या आख्यान-ग्रथ रचा जाय, उससे युद्ध की कार्रवाइयो एव विभिन्न हथियारो का प्रामाणिक विवरण तथा व्याख्या की आशा नहीं की जा सकती। हमारे यहा प्राचीन काल में युद्ध के जो तौर-तरीके और पद्धति प्रचलित थी, वह क्षत्रियोचित सस्कृति का ही एक अग

मानी जाती थी। युद्ध के तौर-तरीको के रहस्य एव गति-विधि का ज्ञान उन्हीं लोगो तक सीमित रहा जिनका उनसे काम पडता था। कवियो या ऋषियो के रचित ग्रथो में उन पद्धतियो की व्याख्या या विवरण नहीं पाये जा सकते। आजकल के किसी गल्प या उपन्यास में कहीं किसी रोग के इलाज का जिक्र हो तो लेखक से इस बात की तो आशा नहीं की जाती कि वह इलाज का पूरा विवरण, दवाओ की फेहरिस्त के साथ देता जाय। यदि दे भी तो बडा बेतुका-सा होगा! ठीक इसी तरह व्यासजी से भी युद्ध-प्रणाली के पूरे शास्त्र की आशा रखना सर्वथा अनुचित होगा।

"मकर-व्यूह क्या चीज होती है? कूर्म-व्यूह किसे कहते है? शृगाटक होता क्या है? बाणो की बौछार से अपने चारो तरफ किला-बदी कर लेना कैसे हो सकता था? शरीर के बाणो से बिध जाने पर भी कैसे जीवित रहा जाता था? कवचो से वीरो की कहातक रक्षा होती थी?" इत्यादि बातो का विवरण व्यासजी ने अपने ग्रथ में इस ढग से नहीं दिया है जिससे आजकल के पाठकगण उसे समझ सकें। जितना विवरण उन्होंने दिया है वही उनकी विशेष प्रतिभा का द्योतक है।

●

आठवें दिन का युद्ध शुरू हुआ तो पहले ही धावे में भीमसेन ने धृतराष्ट्र के आठ बेटो का वध कर दिया। यह देखकर दुर्योधन का हृदय विदीर्ण होगया। कौरव-सेना के लोग डरे कि कहीं भीमसेन अपनी प्रतिज्ञा आज ही न पूरी करदें।

उस दिन एक ऐसी घटना हुई जिससे अर्जुन शोक-विह्वल हो उठा। उसका लाड़ला बेटा और साहसी वीर इरावान, जो एक नागकन्या से पैदा हुआ था, उस दिन खेत रहा। वीर इरावान पाडवो की सहायता के लिए आया हुआ था और उसने ऐसी कुशलता से युद्ध किया था कि सारी कौरव-सेना में भारी तबाही मच गई थी। यह देखकर दुर्योधन ने राक्षस वीर अलबुष को इरावान के विरुद्ध लडने के लिए भेजा। दोनो में बड़ी देर तक घोर सग्राम होता रहा। अत में राक्षस के हाथो इरावान मारा गया।

अर्जुन को जब इस बात की खबर मिली तो यह दुख उससे सहा नहीं गया। भरी हुई आवाज में श्रीकृष्ण से बोला—"वासुदेव! चाचा विदुर ने पहले ही कहा था कि दोनो पक्ष वालो को युद्ध से दुसह दुःख प्राप्त होगा। धिक्कार है हमें, जो सिर्फ संपत्ति के अर्थ ऐसे निकृष्ट कार्य करने पर उतारू हो गए है! इस भारी हत्याकांड के परिणामस्वरूप हम या वे (कौरव) न जाने कौनसा सुख प्राप्त करेंगे? मधुसूदन, अब मैंने जाना कि भाई युधिष्ठिर ने क्यो दुर्योधन से अनुरोध किया था कि कम-से-कम पाच गाव देकर ही संधि करलें। सचमुच उन्होंने दूर की सोची थी। किंतु मूर्ख दुर्योधन ने पाच गाव भी देने से इन्कार कर दिया, जिससे अब दोनो पक्षो में ये जो पाप-कर्म हो रहे है—उन सबका वही कारण बना। यदि मै इस युद्ध में भाग ले रहा हू तो वह केवल इसी लिए कि लोग यह कह कर मेरी निंदा न करें कि यह कायर है, डरपोक है!

"जब मै युद्ध-क्षेत्र में पडे हुए इन क्षत्रियो को देखता हू तो मेरा हृदय गरम हो उठता है। धिक्कार है हमारे जीवन को, जो अधर्म की ही भित्ति पर स्थित है!"

●

भीमसेन के पुत्र घटोत्कच ने जब देखा कि इरावान मारा गया तो उसने इतने जोर से गर्जना की कि सारी सेना सुनकर थरथरा उठी और उसके बाद वह कौरव-सेना पर टूट पडा और घोर प्रलय मचाने लगा। कई स्थानो पर घबराहट के मारे सेना बिखर गई। यह हाल देखकर स्वयं दुर्योधन घटोत्कच के मुकाबले में आगया।

दुर्योधन का साथ देने के लिए वग-नरेश भी अपनी गज-सेना के साथ उधर ही जा पहुचे। दुर्योधन ने बडी वीरता के साथ युद्ध किया और घटोत्कच की सेना के कितने ही वीरो को मार गिराया। इस पर घटोत्कच को बडा क्रोध हो आया। उसने दुर्योधन पर शक्ति नामक हथियार का प्रयोग किया। उसके प्रहार से तो दुर्योधन मारा ही जाता। पर वग-नरेश ने अपना हाथी बीच में डालकर उसको बड़ी खूबी से बचा लिया। दुर्योधन के बजाय

हाथी घटोत्कच की शक्ति की भेंट चढ गया।

इसी बीच में भीष्म को पता लग गया कि दुर्योधन सकट में है। तो उन्होने आचार्य द्रोण के नेतृत्व में एक भारी सेना दुर्योधन की सहायता के लिए भेज दी। कुमुक पहुच जाने पर कई सुविख्यात कौरव-वीरो ने घटोत्कच पर एक साथ हमला कर दिया।

उस समय जो गर्जन चारो दिशा में हुआ उससे युधिष्ठिर को मालूम होगया कि घटोत्कच पर कोई आफत आई है। उन्होने तत्काल भीमसेन को घटना-स्थल पर भेज दिया। भीमसेन के आजाने पर तो युद्ध की भयानकता और भी अधिक होगई। पर जल्दी ही सूर्यास्त होगया और युद्ध भी बद हुआ।

: ७४ :

नवां दिन

नवे दिन का युद्ध शुरू होने से पहले दुर्योधन भीष्म के पास गया और हमेशा की तरह जलीकटी सुनाकर उनके हृदय पर मानो भालो का प्रहार-सा करने लगा। पितामह को इससे पीडा तो बहुत हुई; परतु फिर भी उन्होंने धीरज न छोडा। वे बोले—

"बेटा, तुम्हारी ही खातिर यथाशक्ति प्रयत्न कर रहा हू और युद्ध में अपने प्राणो तक की आहुति देने को प्रस्तुत हू। फिर भी तुम इस बूढे को इस प्रकार जब-तब क्लेश क्यो पहुचाते हो? उचित और अनुचित का कुछ खयाल किये बिना तुम जो ये कटु वचन कह रहे हो, सो क्यो? मुझे ऐसा लगता है कि विनाश का समय निकट आजाने पर हरा भी पीला ही दीख पडता है। तुम्हारी इन बातो से भी ऐसा ही मालूम देता है। तुम्हे भी हित में अहित का भ्रम हो रहा है और सब उलटा ही सूझ रहा है। जानबूझ कर अपनी ही इच्छा से तुमने जो वैर मोल लिया उसका परिणाम अब तुम्हें

भेज दिया। भीष्म ने अद्भुत पराक्रम से लडकर पाडवो के सारे प्रयत्न बेकार कर दिये। पाडवो की सेना की पितामह ने उस दिन तो बडी दुर्गत की। वन में भूली-भटकी फिरने वाली गायो की भाति पाडव-सैनिको की भी बडी दीन और दयनीय अवस्था हो गई।

यह देखकर श्रीकृष्ण ने रथ रोक लिया और अर्जुन से बोले— "पार्थ! जिस अवसर की प्रतीक्षा में तुम भाइयो ने तेरह वर्ष बिताए वह अवसर अब हाथ आया है। क्षत्रिय-धर्म को स्मरण कर लो और भीष्म को मारने में आगा-पीछा न करो।"

यह सुन कर अर्जुन ने सर झुका लिया और बोला— "पूजने योग्य आचार्यों और पितामह की हत्या करने से वनवास करना ही श्रेयस्कर था। फिर भी आपका कहा मानता हू। रथ चलाइए।"

अर्जुन ने अनमने होकर यह कहा और चिंतित भाव से लडने लगा। किंतु भीष्म तो ऐसे प्रकाशमान हो रहे थे जैसे दुपहरी का सूर्य!

अर्जुन का रथ जब भीष्म की ओर बढ़ा तो पांडव-सेना में उत्साह की लहर दौड गई। वीरो में पुन साहस आगया। पर भीष्म ने अर्जुन के रथ पर बाणो की ऐसी वर्षा की कि जिससे सारा रथ ही बाणो के अधकार में मानो छिप गया। न तो अर्जुन दिखाई देता था, न श्रीकृष्ण। न रथ दिखाई देता था, न घोडे। फिर भी श्रीकृष्ण जरा भी न घबराए। अविचलित भाव से सतर्कता के साथ रथ चलाते रहे। अर्जुन के बाणो ने कई बार भीष्म के धनुष को काट-काट कर गिरा दिया। हर बार भीष्म अर्जुन के कौशल की सराहना करते और दूसरा धनुष उठा लेते और फिर अर्जुन और श्रीकृष्ण पर बाण चलाते, यहातक कि अर्जुन और श्रीकृष्ण दोनो को बडी पीड़ा हुई।

इस पर कृष्ण झुझला कर अर्जुन से यह कहते हुए कि 'तुम ठीक तरह से नही लडते हो' और कुपित से होकर रथ से उतर पडे और हाथ में चक्र लेकर भीष्म पर झपटे।

क्रोध में भरे श्रीकृष्ण को अपनी ओर आते हुए देख भीष्म पितामह

उनका स्वागत करते हुए बोले—"भगवान् कृष्ण ! स्वागत हो ! तुम्हारे हाथो मारा जाकर मै अवश्य ही स्वर्ग प्राप्त करूगा ।"

इतने मे अर्जुन दौडकर श्रीकृष्ण के पास पहुचा और दोनो हाथो से उन्हे कसकर पकड लिया । बोला—"केशव ! आपने शस्त्र न उठाने की प्रतिज्ञा की है ! अपना वचन आप न तोडिये । पितामह को बाणो से मार गिराने का काम मेरा है । मै ही इसे पूरा करूगा । आप चलिये । मेरा रथ चलाते रहिए । मेरे लिए यही बहुत है ।"

यह सुन वासुदेव फिर रथ पर चढ गए और उसे चलाने लगे ।

भीष्म ने फिर से युद्ध शुरू किया । पाडवो की सेना की बडी बुरी गत बनी । सैनिक बहुत पीडित हो रहे थे । थोडी देर मे सूर्यास्त हुआ और उस दिन का युद्ध बद कर दिया गया ।

: ७५ :

भीष्म का विछोह

दसवे दिन का युद्ध शुरू हुआ । आज पाडवो ने शिखडी को आगे किया था । आगे-आगे शिखडी और उसके पीछे अर्जुन । शिखडी की आड मे अर्जुन ने पितामह के ऊपर खूब बाण बरसाये । आज भीष्म का तेज ऐसा प्रखर हो रहा था मानो ग्रीष्म मे मध्याह्न का सूर्य ।

शिखडी के बाणो ने वृद्ध पितामह का वक्ष-स्थल बेध डाला । क्षण भर के लिए भीष्म की आखो से मानो चिगारिया निकली । ऐसा प्रतीत हुआ मानो उनकी अग्निमय दृष्टि ही शिखडी को जलाकर राख कर देगी, परतु पल भर बाद ही भीष्म का क्रोध शात हो गया ।

उन्होने अपने को सभाल लिया और यह सोचकर कि जीवन-सध्या हुआ ही चाहती है, वे कुछ देर शिखडी का प्रतिरोध किये बिना मूर्त्तिवत् खड़े रहे । यह दृश्य देखकर सब अचभे मे आगये । देवता तक विस्मित

हो उठे ।

पर भीष्म के मन की बातें शिखडी क्या जानता ? वह तो बाण-पर-बाण बरसाये ही जा रहा था। भीष्म ने अपने मुह पर जरा भी बल न आने दिया और शिखडी के बाणो का प्रत्युत्तर नहीं दिया। अर्जुन ने जब यह देखा कि पितामह प्रतिरोध नही कर रहे तो जरा जी कडा करके भीष्म के मर्म-स्थानो को लक्ष्य करके तीखे बाणो से बीधना शुरू किया। भीष्म का सारा शरीर बिंध गया। पर इतने पर भी उनका मुख मलिन न हुआ। वे मुस्कराते हुए पास ही खडे दु शासन से कहने लगे—"देखो, ये बाण अर्जुन के हैं, शिखडी के नही। जैसे केंकडी के शरीर को उसके बच्चे ही फाड देते हैं, उसी प्रकार अर्जुन के ये बाण मेरे शरीर को बींध रहे है।" अपने प्यारे शिष्य के चलाये बाणो के प्रति भी पितामह की इस प्रकार की कोमल भावना ही थी।

भीष्म ने शक्ति-अस्त्र अर्जुन पर चलाया। अर्जुन ने उसे तीन बाणो से काट गिराया। अब भीष्म को यह निश्चय होगया कि आज का युद्ध उनका आखिरी युद्ध होगा। इस कारण वे हाथ में ढाल-तलवार लेकर रथ से उतरने लगे। इतने में अर्जुन के चलाये बाणो से उनकी ढाल के टुकडे-टुकडे होगए। अर्जुन का बाण बरसाना जारी था। उसके बाणो ने पितामह के शरीर पर उगली रखने को भी जगह न छोडी थी। पितामह के सारे शरीर पर बाण-ही-बाण चुभ गये थे। और ऐसी अवस्था में ही भीष्म रथ से सिर के बल जमीन पर गिर पडे। भीष्म के गिरने पर आकाश में खडे देवताओ ने अपने दोनो हाथ जोड कर नमस्कार किया और दिशाओ में सुवास भरी मद-मद पवन पानीकी बूंदे छिडकाती हुई चलने लगी।

आकाश से पृथ्वी पर उतरकर प्राणीमात्र के शरीर तथा आत्मा के लिए कल्याण-स्वरूप पूजनीया माता गगा के पुत्र महात्मा भीष्म, पिता शातनु को सुख पहुंचाने की खातिर राज्य-श्री एव सुख-भोग को त्याग कर आजीवन ब्रह्मचर्य के व्रत पर अटल रहने वाले महान् वीर भीष्म, परशुराम को

परास्त करने वाले अद्वितीय योद्धा भीष्म, अविश्वासी दुर्योधन की खातिर अपने सत्यव्रत पर दृढ रहकर, तिल-तिल करके प्राणो की आहुति देते रहकर, तथा युद्ध-भूमि में आग के तप्त अगारे के समान तीखे बाणो से सारे शरीर के बिंध जाने पर भी अपनी शक्ति के अतिम क्षण तक पाडवो को कपाने वाले भीष्म, महाभारत के युद्ध के दसवें दिन, शक्ति की अतिम बूद समाप्त हो जाने पर रथ से भूमि पर गिरे ! और भीष्म के गिरने के साथ ही कौरवो के हृदय भी गिर गये ।

●

भीष्म गिरे तो पर उनका शरीर भूमि पर न लगा । सारे शरीर में जो बाण लगे थे वे एक तरफ से घुस कर दूसरी तरफ़ निकल आए थे । भीष्म का शरीर ज़मीन पर न पड कर उनके सहारे ही ऊपर उठा रहा । उस विलक्षण शर-शय्या पर पडे भीष्म के शरीर से एक अनूठी आभा फूट रही थी । वे पहले से भी अधिक ज्वलत दिखाई दे रहे थे । भीष्म के गिरते ही दोनो पक्ष के वीरो ने युद्ध बद कर दिया और भीष्म के दर्शनार्थ झुड-के-झुड दौड पडे । भरत देश के सभी राजा भीष्म के आगे सिर झुकाये, हाथ जोडे उसी प्रकार खडे रहे, जैसे सारे देवता सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा को नमस्कार करने खडे हो ।

●

"मेरे सिर के नीचे कोई बाण नहीं लगा है, इस कारण वह लटक रहा है। उसे ऊपर उठाये रखने के लिए सिर के नीचे कुछ सहारा तो कोई लगा दो ।" अपने चारो ओर खडे राजाओ से भीष्म ने कहा ।

पास में खडे राजा लोग शिविरो में दौडे और कई सुदर और मुलायम तकिये ले आए । रेशम और रुई के उन कोमल तकियो को पितामह ने लेने से इन्कार कर दिया । अर्जुन से बोले— "बेटा अर्जुन, मेरे सिर के नीचे कोई सहारा नहीं है । वह लटक रहा है । कोई ठीक-सा तकिया तो लगादो ।"

भीष्म ने ये वचन उसी अर्जुन से कहे जिसने अभी-अभी प्राणहारी

बाणो से उनको बींध डाला था। भीष्म का आदेश सुनते ही अर्जुन ने अपने तरकश से तीन तेज बाण निकाले और पितामह के सिर को उनकी नोक पर रख कर उनके लिए उपयुक्त तकिया बना दिया।

भीष्म बोले— "हे राजागण! अर्जुन ने जो सिरहाना बनाया है, उसीसे मै प्रसन्न हुआ हू। अभी मेरा शरीर त्याग करने के लिए उचित समय नहीं हुआ है। अत सूर्यनारायण के उत्तरायण होने तक मै यहीं और ऐसा ही पडा रहूगा। मेरी आत्मा भी उस समय तक शरीर में स्थित रहेगी। आप लोगो में से जो भी उस समय तक जीवित बचें, वे आकर मुझे देख जाय।"

इसके बाद पितामह ने अर्जुन से कहा— "बेटा! मेरा सारा शरीर जल रहा है और प्यास लग रही है। थोडा पानी तो पिलाओ।"

अर्जुन ने तुरत धनुष तानकर भीष्म की दाहिनी बगल में पृथ्वी पर बडे जोर से एक तीर मारा। बाण पृथ्वी में घुसकर सीधा पाताल जा लगा। उसी क्षण उस स्थान से जल का एक सोता फूट निकला। कवि कहते है कि इस प्रकार माता गगा अपने महान् और प्यारे पुत्र की प्यास बुझाने स्वय आई और भीष्म ने अमृत के समान मधुर और शीतल जल पीकर अपनी प्यास बुझाई। वे बहुत ही खुश और प्रसन्न दिखाई दिये।

फिर दुर्योधन से बोले— "बेटा दुर्योधन! तुम्हे अच्छी बुद्धि प्राप्त हो! देखा तुमने, अर्जुन ने मेरी प्यास कैसे बुझाई? कैसे जल निकला? यह बात ससार में और किसीसे हो सकती है? अब भी समय है। विलब न करो। अर्जुन से सधि कर लो। मेरी कामना है कि मेरे साथ ही इस युद्ध का भी अवसान हो जाय। बेटा! तुम मेरी बात पर ध्यान देकर पाडवो से अवश्य सधि करलो।"

मृत्यु को सामने देखने पर भी जैसे रोगी को दवा नही सुहाती, कडवी ही लगती है, वैसे ही दुर्योधन को पितामह की ये बातें बहुत ही कडवी लगीं। वह कुछ बोला नहीं।

धीरे-धीरे सभी राजा अपने-अपने शिविरों को लौट आये।

: ७६ :

पितामह और कर्ण

जब कर्ण को यह पता चला कि भीष्म पितामह घायल होकर रणक्षेत्र में पडे है तो वह उनके पास गया, उनको दडवत प्रणाम किया और बोला—

"पूज्य कुलनायक ! सर्वथा निर्दोष होने पर भी आपकी घृणा का पात्र बना हुआ यह राधापुत्र कर्ण आपको प्रणाम करता हूँ।"

प्रणाम करके जब कर्ण उठा तो पितामह को उसके मुख पर भय की छाया-सी दिखाई दी। यह देख भीष्म का दिल भर आया। बडे प्रेमपूर्वक कर्ण के सिर पर उन्होने हाथ रखा और आशीर्वाद दिया और चुभे हुए बाणो से होने वाले कष्ट को दबा कर बोले— "बेटा, तुम राधा के पुत्र नही—देवी कुती के पुत्र हो। यह मुझे ससार का सारा मर्म जानने वाले नारदजी ने बताया है। सूर्यपुत्र ! मैंने तुमसे द्वेष नहीं किया। अकारण ही तुमने पाडवो से वैर रखा। इसी कारण तुम्हारे प्रति मेरा मन मलिन हुआ। तुम्हारी दान-वीरता और शूरता से मैं भलीभाति परिचित हू। इसमें कोई सदेह नही कि शूरता में तुम कृष्ण और अर्जुन की बराबरी कर सकते हो। तुम पाडवो के जेठे हो। इस कारण तुम्हारा कर्त्तव्य यह है कि तुम उनसे मित्रता कर लो। मेरी यही इच्छा है कि इस युद्ध में मेरे सेना-पतित्व के साथ-ही-साथ पाडवो के प्रति तुम्हारे वैर-भाव का भी आज ही अत हो जाय।

यह सुन कर्ण बडी नम्रता के साथ बोला— "पितामह ! म जानता हू कि मै कुती का पुत्र हू। यह भी मुझे मालूम है कि मै सूत-पुत्र नहीं हू। परतु फिर भी दुर्योधन से मैने जो सपत्ति प्राप्त की है, उसके कारण मै उनकी

सहायता करने को बाध्य हो चुका हू । यह बात मुझसे हो ही नही सकती कि अब मै दुर्योधन का साथ छोड दू और उनके शत्रुओ से जा मिलू । मेरा कर्त्तव्य यही है कि मै दुर्योधन के ही पक्ष में रहकर युद्ध करू । आप कृपया मुझे इस बात की अनुमति दें कि मै दुर्योधन की तरफ से लडू । मने जो कुछ किया या कहा, उसमें जितने दोष हो, उनके लिए मुझे क्षमा करदें ।"

कर्ण का कथन भीष्म बडे ध्यान से सुनते रहे । उसके बाद बोले—"जो तुम्हारी इच्छा हो, वही करो । जीत धर्म की ही होगी ।"

भीष्म के आहत होने के बाद भी महाभारत का युद्ध बद नही हुआ । पितामह ने सबके हित के लिए जो सलाह दी, कौरवो ने उस ओर ध्यान नहीं दिया और युद्ध जारी रक्खा ।

●

भीष्म के बिना कौरवो की सेना ठीक उसी तरह नि सहाय जान पडी जैसे गडरिये के बिना भेड-बकरियो का झुड । सत्य पर अटल रहने वाले भीष्म के आहत होते ही सभी कौरव एक स्वर से बोल उठे—"कर्ण! अब तुम्हीं हमारी रक्षा कर सकते हो ।"

कौरवो ने सोचा कि कर्ण के युद्ध में सम्मिलित हो जाने पर अवश्य हमारी ही जीत होगी । जब तक भीष्म सेनापति बने रहे तब तक कर्ण ने युद्ध में भाग नहीं लिया था । भीष्म ने कर्ण का दर्प दूर करने के विचार से जो कुछ कहा था, उस पर बिगडकर कर्ण ने शपथ खा कर कहा था कि जब तक भीष्म जीवित रहेंगे तबतक मै युद्ध नहीं करूगा । अगर उनके हाथो पाडवो का वध और दुर्योधन की जीत हो जायगी तो मै दुर्योधन की आज्ञा लेकर वन में चला जाऊगा । और अगर वे युद्ध में हार गये और वीरोचित स्वर्ग को प्राप्त होगये तो उस समय मै अकेला ही लडकर सारे पाडवो को युद्ध में परास्त करके दुर्योधन को विजेता का यश दिलाऊगा ।

दस दिन पहले जिस कर्ण ने यह शपथ खाई थी और दुर्योधन की सहमति से उसे निभाया था, वही कर्ण आज युद्ध में आहत भीष्म के पास पैदल दौडा गया और उनके सामने हाथ जोड़कर खडा होगया और बोला—

"परशुराम को परास्त करने वाले वीर! आज आप शिखडी के हाथो आहत होकर इस युद्ध-भूमि में पडे है। धर्म के शिखर माने जाने वाले आप जैसे महात्मा का जब यह हाल हुआ तो इसका यही अर्थ हो सकता है कि ससार में पुण्य का फल किसीको प्राप्त नहीं होता! कौरवो को सकट की बाढ से पार लगाने वाली नौका के सदृश थे आप! अब आपके बिना पाडवो के हाथो कौरवो को भारी पीडा पहुचने वाली है। इसमें कोई सदेह नही कि कृष्ण और अर्जुन उसी प्रकार कौरवो का सर्वनाश कर देंगे जैसे पवन और अग्नि मिलकर जगल का नाश करती है। आपसे प्रार्थना है कि आप अपनी कृपा-दृष्टि मुझ पर डालकर अनुगृहीत करें।"

महात्मा भीष्म कर्ण को आशीर्वाद देते हुए बोले—"कर्ण! जिसने भी तुम्हे अपना मित्र बना लिया, उसको तुम वैसे ही सहारा दिया करते हो, जैसे नदियो को समुद्र, बीजो को मिट्टी और प्राणियो को मेघ। अब दुर्योधन की तुम्हीं रक्षा करना। जिसके लिए तुमने काभोजो को जीना था, हिमालय के दुर्गों पर बसे हुए किरातो को कुचल डाला, जिसके लिए गिरिव्रज के राजाओ से लडकर विजय प्राप्त की और जिसके लिए और भी कितने ही प्रतापी कार्य किये है, उसी दुर्योधन की सेना के अब तुम ही रक्षक बनकर रहना। तुम्हारा कल्याण हो। जाओ, और शत्रुओ से युद्ध करो। कौरवो की सेना को अपनी ही सपत्ति समझकर उसकी रक्षा करो।"

भीष्म पितामह से आशीष पाकर कर्ण बहुत प्रसन्न हुआ और रथ पर चढकर युद्ध-क्षेत्र में जा पहुचा। कर्ण को देखते ही दुर्योधन आनद के मारे फूल उठा। भीष्म के विछोह का जो दु ख उसके लिए दु सह-सा प्रतीत हो रहा था, अब कर्ण के आजाने पर किसी तरह उसे भूल जाना उसके लिए सभव मालूम होने लगा।

: ७७ :

सेनापति द्रोण

दुर्योधन और कर्ण इस बारे में सोच-विचार करने लगे कि अब सेनापति किसे बनाया जाय ?

कर्ण बोले— "यहा पर जितने भी क्षत्रिय उपस्थित है, वे सब सेनापति बनने की योग्यता रखते है। शारीरिक बल, पराक्रम, यत्नशीलता, बुद्धि, शूरता, धीरज, कुल, ज्ञान आदि सभी बातो में यहा इकटठे हुए सभी क्षत्रिय राजा एक-दूसरे की समता कर सकते है। पर सवाल यह है कि इनमें से सेनापति किसे बिनाया जाय? सभी एक साथ तो सेनापति बन नहीं सकते। किसी एक को ही इस पद के लिए चुनना होगा और सभव है इससे दूसरे लोग बुरा मानें। यह हमारे लिए हानिकर साबित होगा। इन सब बातो को ध्यान में रखते हुए मुझे तो यही सबसे अच्छा प्रतीत होता है कि आचार्य द्रोण को ही सेनापति बनाया जाय। वे सभी वीरो के आचार्य है, शस्त्र-धारियो में श्रेष्ठ है और क्षत्रियो में तो उनकी समता करने वाला कोई है नहीं। मेरी राय में तो अपने आचार्य को ही सेनापति के पद पर बिठाया जाय।"

कर्ण की यह बात दुर्योधन ने मान ली।

"आचार्य ! जाति, कुल, शास्त्र-ज्ञान, वय, बुद्धि, वीरता, कुशलता आदि सभी बातो में आप सबसे श्रेष्ठ है। आप ही अब इस सेना का सेनापतित्व स्वीकार करें। हमारी इस सेना का यदि आप संचालन करेंगे तो यह निश्चित है कि युधिष्ठिर को अवश्य जीत लेंगे।" यह कहकर दुर्योधन ने सभी क्षत्रिय वीरो के सामने द्रोणाचार्य से सेनापतित्व स्वीकार करने की विनती की।

एकत्र राजा लोगों ने यह सुनकर सिंहनाद करके दुर्योधन को प्रसन्न किया। शास्त्रोचित रीति से द्रोणाचार्य का सेनापति पद पर अभिषेक हुआ। उस समय ऐसा जयजयकार हुआ, मानो आकाश विदीर्ण हो जायगा। बदी लोगो के स्तुति-गान और जय-घोष को सुनकर कौरव तो ऐसे उत्साह में आगये कि उन्हे यह भ्रम होने लगा कि उन्होंने पाडवो पर विजय ही पाली।

●

आचार्य द्रोण ने युद्ध के लिए सेना को शकट-व्यूह में रचा। कर्ण के रथ को उसी दिन पहले-पहल युद्ध के मैदान में इधर-उधर चलते देख कौरव-सेना के वीरो में एक नया ही जोश और आनद दौड गया।

कौरवो की सेना के सिपाही आपस में बातें करने लगे— "पितामह तो अर्जुन को मारना नहीं चाहते थे। अनमने भाव से युद्ध कर रहे थे। परतु कर्ण ऐसा नहीं करेंगे। अब तो पाडवो का नाश होकर रहेगा।"

द्रोणाचार्य ने पाच दिन तक कौरवो की सेना का सचालन करते हुए घोर युद्ध किया। यद्यपि अवस्था में वे बूढे थे, फिर भी जवानो को लजाने वाली फुर्ती के साथ युद्ध के मैदान में एक छोर से दूसरे छोर तक चक्कर काटते रहे और पागलो के से जोश के साथ युद्ध करते रहे। उनके भीषण आक्रमण के आगे पाडवो की सेना उसी तरह तितर-बितर हो जाती थी, जैसे आधी के चलने पर मेघ-राशि। सात्यकि, भीम, अर्जुन, धृष्टद्युम्न, अभिमन्यु, द्रुपद, काशीराज आदि सुविख्यात वीरो के विरुद्ध अकेले द्रोणाचार्य भिड जाते और एक-एक को खदेड देते। पाचो दिन उनके हाथो पाडवो की सेना बहुत ही सताई गई। आचार्य द्रोण ने पाडव सेना के नाको दम कर दिया।

: ७८ :

दुर्योधन का कुचक्र

द्रोणाचार्य के सेनापतित्व ग्रहण करने के बाद दुर्योधन, कर्ण और दु शासन, तीनो ने आपस में सलाह करके एक योजना बनाई और उसके अनुसार दुर्योधन आचार्य के पास जाकर बोला, "आचार्य ! किसी भी उपाय से आप युधिष्ठिर को जीवित ही कैद करके हमारे हवाले कर सकें तो कहना ही क्या ! इससे अधिक हम आपसे कुछ नहीं चाहते। यदि इस एक कार्य को आप सफलतापूर्वक पूरा करदें तो फिर मै और मेरे साथी सतोष मान लेंगे।"

यह सुनकर द्रोणाचार्य एक दम खुश हो उठे। पाडवो को मारना उनको भी प्रिय न था। यद्यपि कर्त्तव्य से प्रेरित होकर वे युद्ध में शरीक हुए थे, फिर भी उनके मन-ही-मन यही सघर्ष चल रहा था कि पाडु-पुत्रो को—विशेषकर युधिष्ठिर को—मारना अधर्म तो नही है ! इस कारण अब दुर्योधन की यह सूचना पा करके बडे खुश हुए।

बोले— "दुर्योधन ! तुम्हारी क्या यही इच्छा है कि युधिष्ठिर के प्राणो की रक्षा हो जाय ? तुम्हारा कल्याण हो ! जब तुम्हीने यह कह दिया कि धर्मपुत्र के प्राण न लिये जाय तो फिर इसमें शक ही क्या हो सकता है कि वह अजात-शत्रु है ? लोगो ने 'शत्रुरहित' की जो उपाधि उसको दी है वह आज सार्थक हुई और तुमने उसे सार्थक किया। जब तुम स्वयं यह अनुरोध करने लगे हो कि युधिष्ठिर का वध न किया जाय, उसे जीवित ही पकड लिया जाय तो इसमें तो युधिष्ठिर का यश दस गुना बढ जाता है। धन्य है युधिष्ठिर को, जिसका कोई शत्रु नही !"

यह कह आचार्य कुछ देर सोचते रहे और फिर बोले— "बेटा !

मैंने जान लिया कि युधिष्ठिर को जीवित पकडवाने से तुम्हारा क्या उद्देश्य है। तुम्हारा उद्देश्य यही है न कि पाडवो को आधा राज्य देकर उनसे सधि कर लें, नही तो युधिष्ठिर को जीता पकडने की बात ही तुम क्यो करते ?" यह कहते-कहते आचार्य द्रोण बहुत ही गद्गद् हो उठे और वे सोचने लगे—

"बुद्धिमान धर्मपुत्र का जन्म सफल है, कुतीनदन बडभागी है, जिसने अपने शील-स्वभाव से सबको प्रभावित कर दिया है।" बार-बार यही सोचने लगे और धार्मिक जीवन की विजय पर असीम सतोष का अनुभव करने लगे। फिर यह सोचकर कि दुर्योधन के मन में अपने भाइयो के प्रति अभीतक स्नेह ह, द्रोण और भी प्रसन्न हुए।

●

किंतु दुर्योधन का उद्देश्य तो कुछ और ही था ! उसके हृदय में वैरभाव और कुकर्म की इच्छा ज्यो-की-त्यो बनी हुई थी—वह तनिक भी कम नहीं हुई थी। जब द्रोणाचार्य ने युधिष्ठिर को जीता पकडने की बात मान ली तो ऐसा करने का अपना उद्देश्य भी उसने आचार्य को बताया।

दुर्योधन को अबतक यह विदित हो चुका था कि युधिष्ठिर को मार डालने से न तो युद्ध बद होगा, न पाडवो का क्रोध ही कम होगा। उलटे, पाडव और भी अधिक उत्तेजित हो जायगे और तबतक लडेंगे, जबतक कि सारे सैनिक खत्म न हो जाय। दुर्योधन को यह भी पता चल गया था कि उसीकी हार होगी और पाडवो की जीत होगी। यदि ऐसा न होकर दोनो तरफ के सभी योद्धाओ का नाश हो गया तो भी कृष्ण तो मरेंगे नहीं। न ही द्रौपदी जैसी स्त्रिया ही मरेंगी। कृष्ण जीवित रहे तो यह भी निश्चित है कि राज्य द्रौपदी या कुती के हाथो में चला जायगा। अत. युधिष्ठिर का वध करने से कोई लाभ नहीं हो सकता। उलटे, यदि युधिष्ठिर को जीता पकड लिया जाय तो युद्ध भी शीघ्र ही बंद हो जायगा और जीत भी कौरवो की होगी। थोडा-सा राज्य युधिष्ठिर को देने का बहाना करना होगा, सो वह कर देंगे और बाद में फिर जुआ खेल कर सहज ही में उसे छीन

भी लेंगे। क्षत्रियोचित धर्म मानने वाले और बात के पक्के युधिष्ठिर को जुआ खेलकर वन में भेजा जा सकता है। इधर दस दिन के युद्ध में दुर्योधन को यह भी मालूम हो चुका था कि लडने से कुल की तबाही ही होती है, लेकिन सफल होना शायद सभव नहीं होगा। इन्हीं सब विचारो से प्रेरित होकर दुर्योधन ने द्रोणाचार्य से युधिष्ठिर को जीवित पकड लाने का अनुरोध किया था।

द्रोण को जब दुर्योधन के असली उद्देश्य का पता लगा तो वे बहुत उदास हो गये। उनको विचार आया कि वे झूठ ही आनद मनाते थे कि दुर्योधन का दिल अच्छा है। इससे उनके मन में दुर्योधन के प्रति बडी घृणा उत्पन्न हो गई। वे मन-ही-मन दुर्योधन की निंदा करने लगे। परतु फिर भी यही सोचकर उन्होने सतोष मान लिया कि युधिष्ठिर के प्राण न लेने का कोई-न-कोई बहाना तो मिला ही।

इधर पाडवो को जासूसो द्वारा यह मालूम हो गया कि आचार्य द्रोण ने युधिष्ठिर को जीवित पकडने का निश्चय किया है। पाडव तो द्रोणाचार्य की अद्वितीय शूरता एव शस्त्र-विद्या के अनुपम ज्ञान से भलीभाति परिचित थे ही। अत जब सुना कि द्रोणाचार्य ने युधिष्ठिर को पकडने का निश्चय ही नही किया है, बल्कि प्रतिज्ञा भी की है तो उन्हे भी भय हो आया। सबको यही चिंता होने लगी कि किसी भी तरह युधिष्ठिर की रक्षा का पूरा-पूरा प्रबध किया जाय।

इस कारण पाडव-सेना की व्यूह-रचना इस तरह से की गई कि जिससे युधिष्ठिर के चारो ओर उनकी सुरक्षा के लिए काफी सेना मुस्तैदी से रह सके। सेना का एक बहुत बडा दल युधिष्ठिर की रक्षा के निमित्त नियुक्त किया गया।

●

द्रोण के सेनापतित्व में युद्ध प्रारभ हो गया। पहले दिन के सग्राम में उन्होंने अपने पराक्रम का काफी परिचय दिया। जैसे आग किसी सूखे वन को जलाती हुई फैलती है, वैसे ही पांडव-सेना को जलाते हुए आचार्य द्रोण चक्कर काटते रहे। किसीको पता भी नही चला कि द्रोण है किस

मोरचे पर । ऐसी फुरती के साथ इधर-उधर रथ चलाते, बाण बरसाते और सर्वनाश मचाते रहे कि पाडव सेना को भ्रम हुआ कि कहीं द्रोण अनेक तो नही बन गए ।

पाडव-सेना का व्यूह उस मोरचे पर टूट गया जिस पर सेनापति धृष्ट-द्युम्न था और महारथियो में घोर द्वद्व छिड गया । माया-युद्ध का निपुण शकुनि सहदेव से युद्ध करने लगा । जब उनके रथ टूट गये तो दोनो वीर रथ से उतर पडे और गदाए लेकर एक-दूसरे से ऐसे टकराये, मानो दो पहाड जीवित होकर भिड गये हो ।

भीमसेन और विविंशति में जो युद्ध हुआ, उसमें दोनो के रथ टूटफूट गए । शल्य ने अपने भानजे नकुल को बहुत सताया । नकुल को इससे बडा क्रोध चढा । उसने मामा के रथ की ध्वजा और छतरी काटकर गिरादी और विजय का शख बजा दिया । दूसरी ओर कृपाचार्य धृष्टकेतु पर टूट पडे और उसको खदेड छोडा । सात्यकि और कृतवर्मा में भी भयानक युद्ध हुआ ।

विराटराज कर्ण से जा भिडे । सदा की भाति अभिमन्यु ने अद्भुत पराक्रम का परिचय दिया । उसने अकेले ही पौरव, कृतवर्मा, जयद्रथ, शल्य आदि चारो महारथियो का मुकाबला किया और चारो को परास्त कर दिया ।

इसके बाद भीम और शल्य में अचानक गदा-युद्ध छिडा । अत में भीम ने शल्य को बुरी तरह हराया और शल्य को युद्ध-क्षेत्र से हटना पड़ा । यह देख कौरव-सेना का साहस डगमगाने लगा । इस पर पाडव सेना ने कौरव-सेना पर जोरो का हमला कर दिया । इससे कौरव-सेना में खलबली मच गई ।

द्रोण ने जब यह देखा तो अपनी सेना का हौसला बढ़ाने के लिए अपने सारथी को आज्ञा दी कि रथ उस ओर ले चलो, जिधर युधिष्ठिर युद्ध कर रहे हो । द्रोण के सुनहरे रथ के आग सिधु-देश के चार सुदर और फुरतीले घोडे जुते हुए थे । द्रोण का आज्ञा देना था कि घोडे हवा से बातें करते हुए युधिष्ठिर के रथ की ओर रथ को ले दौडे । आचार्य के रथ को अपनी ओर आते देख युधिष्ठिर ने आचार्य पर बाज़ के पर लगे तीखे बाण चलाये, किंतु

आचार्य उनसे ज़रा भी विचलित न हुए। उलटे धर्मराज पर उन्होने कई बाण चलाये और उनका धनुष काटकर गिरा दिया। युधिष्ठिर सभलें, इसके पहले ही द्रोणाचार्य वेग से उनके निकट जा पहुचे। धृष्टद्युम्न ने हजार चेष्टा की, परतु वह द्रोण को नहीं रोक सके। उनका प्रचड वेग किसीके रोके नहीं रुकता था।

'युधिष्ठिर पकडे गए!' 'युधिष्ठिर पकडे गए' की चिल्लाहट से सारा कुरुक्षेत्र गूज उठा।

इतन में ही एकाएक न जान कहासे अर्जुन उधर आ पहुचा। रक्त की नदी को पार करता हुआ, हड्डियो के पहाडो को लाघता हुआ और धरती को कपाता हुआ अर्जुन का रथ आ खडा हुआ। देखते ही द्रोणाचार्य ज़रा देर के लिए सन्न रह गये।

और अर्जुन के गाडीव धनुष से बाणो की ऐसी अविरल बौछार हो रही थी कि कोई देख नहीं पाता था कि कब बाण धनुष पर चढते और कब चलते। कुरुक्षेत्र का आकाश बाणो से छा गया और इस कारण सारे मैदान में अधकार-सा छा गया था।

द्रोणाचार्य पीछे हट गए। युधिष्ठिर को जीवित पकडने का उनका प्रयत्न विफल होगया और सध्या होते-होते उस दिन का युद्ध भी बद हुआ। कौरव-सेना में भय छा गया। पाडव-सेना के वीर शान से अपने-अपने शिविर को लौट चले। सैन्य समूह के पीछे-पीछे चलते हुए कृष्ण और अर्जुन अपने शिविर में जा पहुचे।

इस प्रकार ग्यारहवें दिन का युद्ध समाप्त हुआ।

: ७९ :

बारहवां दिन

पहले ही दिन युधिष्ठिर को जीवित पकडने की चेष्टा के विफल हो जाने पर आचार्य द्रोण दुर्योधन से कहने लगे— "राजन् ! अर्जुन के पास रहने पर युधिष्ठिर को पकडना असभव है । अपनी तरफ से जो कुछ करना है वह मै करूगा । यदि कोई उपाय करके अर्जुन को युधिष्ठिर से अलग करके उसे कहीं दूर हटा दिया जाय तो मै व्यूह तोडकर युधिष्ठिर के पास पहुच जाऊगा और यदि वह मैदान में डटा रहा तो निश्चय ही कैद करके ले आऊगा । यदि युधिष्ठिर भाग खडा हुआ तो वह भी हमारी ही जीत होगी ।"

द्रोणाचार्य की ये बातें कौरवो के मित्र त्रिगर्त-नरेश सुशर्म ने सुन लीं । उन्होने अपने भाइयो के साथ मिलकर मत्रणा की कि अर्जुन को युधिष्ठिर से अलग हटाने का क्या उपाय किया जाय ? सबने अत में यही निश्चय किया कि सशप्तक व्रत धारण करके अर्जुन को युद्ध के लिए ललकारा जाय और लडते-लडते उसे युधिष्ठिर से दूर हटा कर लेजाया जाय ।

यह निश्चय करके उन्होने एक भारी सेना इकट्ठी की और नियमानुसार सशप्तक व्रत की दीक्षा ली । सबने घास के बने वस्त्र धारण किये । अग्नि की पूजा की और फिर शपथ खाई कि हम लोग युद्ध में धनजय का वध किये बिना नहीं लौटेंगे । यदि भय के कारण पीठ दिखाकर भाग आये तो हमें महापाप करने का दोष प्राप्त हो । हम प्राणो तक का उत्सर्ग करने को प्रस्तुत रहेगे ।

यह शपथ लेने के बाद सशप्तको ने वे सब दान-पुण्य किये, जो मरणासन्न व्यक्तियो से कराये जाते हैं और फिर वे युद्ध-क्षेत्र में दक्षिण की ओर

मुख करके कूद पडे और अर्जुन को युद्ध के लिए ललकारा।

सशप्तक व्रत ली हुई त्रिगर्त-देश के वीरो की इस टोली को कौरव-सेना का 'आत्मघात-दल' समझा जा सकता है। आजकल की लडाइयो में भी यह प्रणाली प्रचलित है, जिसके अनुसार कोई दल-विशेष या व्यक्ति-विशेष किसी खास उद्देश्य की पूर्ति के लिए कटिबद्ध होकर निकलते है और कृतकार्य हुए बिना जीवित नहीं लौटते। अग्रेजी में ऐसे वीरो की टोली को स्यूसाइड स्क्वैड (Suicide Squad) कहते है।

सशप्तक-व्रत-धारी त्रिगर्त वीरो ने अर्जुन को नाम लेलेकर पुकारा और उसे युद्ध के लिए चुनौती दी।

अर्जुन ने युधिष्ठिर से कहा, "राजन्! देखिये, ये लोग सशप्तक-व्रत लेकर मुझे ललकार रहे है। आप तो जानते ही है कि मैंने यह प्रण कर रक्खा है कि किसीके ललकारने पर युद्ध में जरूर जाऊगा। राजा सुशर्म और उनके साथी मुझे युद्ध के लिए ललकार रहे है। इसलिए मै तो जा रहा हू और उनका सर्वनाश करके ही लौटूगा। आप मुझे आज्ञा दीजिए।"

युधिष्ठिर ने जब यह देखा तो बोले— "भैया, आचार्य द्रोण का इरादा तो तुम्हे मालूम है। उन्होंने मुझे जीवित पकड लेजाने का दुर्योधन को वचन दिया है। तुम तो जानते ही हो कि द्रोणाचार्य बडे बली है, शूर है और कष्ट-सहिष्णु है, शास्त्र-विद्या के पारगत है और अपनी प्रतिज्ञा के लिए पूर्ण प्रयत्नशील है। उनके प्रण और उनके सामर्थ्य को ध्यान में रखकर जो तुम्हें उचित लगे, वह करो। यही मेरा कहना है।"

अर्जुन ने कहा—"आपकी रक्षा पाचालराज पुत्र सत्यजित करेंगे। जब-तक वे जीवित रहेगे तबतक आपपर किसी तरह की आच नहीं आ सकती।"

और सत्यजित को युधिष्ठिर का रक्षक तैनात करके अर्जुन सशप्तको की ओर ऐसे लपका जैसे भूखा शेर शिकार पर लपकता हो।

●

अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा— "कृष्ण! देखिए वे त्रिगर्त-लोग खडे है। प्राणो के भय के कारण तो उन्हें रोना ही चाहिये था, किंतु व्रत के नशे

के कारण ये बडे खुश हो रहे है । स्वर्ग की प्रतीक्षा करते हुए वे आनद के मारे अपने आपेमें नहीं मालूम होते ।" यह कहते-कहते अर्जुन शत्रु-सेना के पास जा पहुचा ।

●

महाभारत के युद्ध का बारहवा दिन था, बहुत ही भयानक युद्ध हो रहा था । अर्जुन ने त्रिगर्तों पर ऐसा आक्रमण किया कि त्रिगर्त-सेना के वीर विचलित होने लगे । इस पर घबराये हुए सैनिको का उत्साह बढाते हुए राजा सुशर्म सिंह की भाति गरज उठा ।

बोला— "शूरो ! याद रक्खो ! क्षत्रियो की भरी सभा में तुम लोगो ने शपथ खाकर व्रत धारण किया है । घोर प्रतिज्ञा करने के बाद भय-विह्वल होना तुम्हे शोभा नही देता । लोग तुम्हारी हसी उडायेंगे । डरो नहीं ! आगे बढो और प्राणो की बलि चढा दो ।"

यह सुन सभी वीरो ने एकदूसरे को प्रोत्साहित करके शख बजाते हुए फिर भयानक युद्ध शुरू कर दिया ।

उनका यह युद्ध देखकर श्रीकृष्ण से अर्जुन ने कहा— "हृषीकेष ! जबतक इनके तन में प्राण रहेगे, ये मैदान से हटेंगे नहीं । अत अब हमें भी झिझकना नहीं चाहिए । आप रथ चलाइए ।"

मधुसूदन ने रथ चलाया और अपने सारथ्य की कुशलता का अद्भुत परिचय दिया । श्रीकृष्ण का चलाया वह रथ उस समय ऐसे ही शोभित हुआ जैसे देवासुर सग्राम के समय इद्र का रथ शोभित हो रहा था । अर्जुन के गांडीव ने भी अपनी पूरी चतुराई का परिचय दिया । त्रिगर्तों को एक ही समय में सौ-सौ अर्जुन दिखाई देने लगे और अर्जुन के द्वारा घायल वीर ऐसे दिखाई दिये जैसे हजारो फूलो से लदे पलास के पेड ।

घोर सग्राम होने लगा । एक बार तो अर्जुन का रथ त्रिगर्तों के बाणो की बौछार से मानो अधकार में विलीन हो गया ।

"अर्जुन क्या हाल है ? कुशल से तो हो ?" श्रीकृष्ण ने रथ हाकते हुए पूछा ।

अर्जुन ने 'हा' कहते-कहते त्रिगर्तों के मारे बाणो के अधेरे में ही गाडीव तान कर ऐसे बाण मारे कि जिनसे शत्रुओ की बाण-वर्षा हवा में उड गई।

उस समय युद्ध-भूमि का दृश्य ऐसा भयानक प्रतीत हुआ मानो प्रलय के समय रुद्र की नृत्य-भूमि हो। सारे मैदान पर जहातक दृष्टि पहुचती थी, बिना सिर के धड, टूटे हाथ-पैर आदि के ढेर पडे दिखाई देते थे।

●

उधर अर्जुन को सशप्तको से लडने गया देख द्रोणाचार्य ने अपनी सेना को आज्ञा दी कि पाडवो की सेना के व्यूह के उस स्थान पर आक्रमण किया जाय जहा युधिष्ठिर हो। युधिष्ठिर ने देखा कि द्रोणाचार्य के सेनापतित्व में एक भारी सेना उनकी ओर बढी चली आ रही है। वे धृष्टद्युम्न को सचेत करते हुए बोले—"वह देखो! ब्राह्मण वीर आचार्य द्रोण मुझे पकडने के लिए आ रहे है। सतर्कता के साथ सेना की देखभाल करना।"

धृष्टद्युम्न द्रोण के आने की प्रतीक्षा किये बिना ही आगे बढ चला। द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न को, जिसका जन्म ही द्रोणाचार्य के वध के लिए हुआ था, अपनी ओर आते देखकर द्रोणाचार्य क्षण भर के लिए भयभीत से हुए, मानो काल का आगमन हो रहा हो। उन्हे स्मरण हो आया कि धृष्टद्युम्न के हाथो मेरी मृत्यु निश्चित है और आचार्य उसकी ओर न बढ़कर जिधर राजा द्रुपद युद्ध कर रहे थे, उस तरफ को घूम गये।

द्रुपद की सेना को खूब परेशान करने और खून की नदी बहाने के बाद द्रोणाचार्य ने फिर युधिष्ठिर की ओर अपना रथ बढाया। आचार्य को देखते ही युधिष्ठिर अविचलित भाव से बाणो की वर्षा करने लगे। इस पर सत्यजित द्रोणाचार्य पर टूट पडा। भयानक सग्राम छिडा। इस समय द्रोणाचार्य ऐसे प्रतीत हुए मानो साक्षात काल हो। पांडव-सेना के वीरो को एक-एक कर के वे मारने लगे। पांचाल राजकुमार वृक के प्राण उनके बाणो ने ले लिये। सत्यजित का भी वही हाल हुआ।

यह देख विराट का पुत्र शतानीक द्रोण पर झपटा और दूसरे ही क्षण शतानीक का सिर कुडलो के साथ युद्ध-भूमि पर लोटने लगा। इसी

बीच केदम नाम का राजा द्रोणाचार्य से आ टकराया और उसके भी प्राण-पखेरू उड गये। द्रोण आगे बढते ही चले। उनके प्रबल वेग को रोकने के लिए हिम्मत करके वसुधान आया और वह भी यमलोक पहुचा। युधामन्यु, सात्यकि, शिखडी, उत्तमौजस् आदि कितने ही महारथियो को तितर-बितर करते हुए द्रोणाचार्य युधिष्ठिर के नजदीक जा पहुचे। उस समय द्रुपदराज का एक और पुत्र पाचाल्य अपने प्राणो की जरा भी परवा न करके अदम्य जोश के साथ द्रोण पर टूट पडा। वह भी मृत होकर रथ से जमीन पर इस प्रकार पडा जसे आकाश से तारा टूटकर गिरता हो।

"राधेय ! आचार्य द्रोण का पराक्रम तो देखो ! पाडवो की सेना कैसी बेहाल होकर इधर-उधर भाग रही है। मै कहता हू कि ये पाडव अब युद्ध में हार जावेंगे।" दुर्योधन ने कहा।

कर्ण को यह ठीक नहीं लगा। बोला— "दुर्योधन ! पाडवो को हराना इतना सरल काम नहीं है। पाडव ऐसे व्यक्ति नहीं कि जो युद्ध से इतनी जल्दी पीछे हट जाय। वे कभी उन घोर यातनाओ को नहीं भूल सकेंगे जो उन्हे विष से, आग से और जुए के खेल से पहुची थीं। वनवास के समय जो कष्ट झेलने पडे उन्हे भी वे नहीं भूल सकते। देखो तो, वे पांडव वीर फिर से इकट्ठे होकर आचार्य पर हमला कर रहे है। कितने ही वीर युधिष्ठिर की रक्षा के लिए आगये है। भीम, सात्यकि, युधामन्यु, क्षत्रधर्म, नकुल, उत्तमौजस्, द्रुपद, विराट, शिखडी, धृष्टकेतु आदि बहुत से वीर आ गये है और अब द्रोणाचार्य पर अचानक हमला हो रहा है। आचार्य के कधो पर इतना भार लादकर हम यहा बेकार खडे रहे यह ठीक नहीं होगा। यद्यपि वे महान् वीर है फिर भी उनकी सहन-शक्ति की भी कोई सीमा होती है। भेडिये भी एक साथ हमला करके एक भारी हाथी को मार सकते है। इसलिए चलो, चलें। उन्हें अकेले छोडना ठीक नहीं।" यह कहता हुआ कर्ण आचार्य द्रोण की सहायता को चल दिया।

: ८० :

शूर भगदत्त

आचार्य द्रोण युधिष्ठिर को जीवित पकडने की कई बार चेष्टा करके हार गये। तब दुर्योधन ने एक भारी गज-सेना भीम की ओर बढा दी। भीमसेन ने रथ पर ही खडे उन लडाकू हाथियों के झुड का मुकाबला किया। बाणो की बौछार से हाथियो की बुरी दशा हो गई। अर्द्धचन्द्र बाणो के प्रहार से दुर्योधन के रथ की ध्वजा कटकर गिर गई और धनुष भी टूट गया। दुर्योधन को यो बेहाल होते देखकर अग नाम का म्लेच्छराज एक बडे हाथी पर सवार होकर भीमसेन के सम्मुख आ डटा। म्लेच्छराज पर भीम ने नाराच बाणो की जोरो की वर्षा की जिससे म्लेच्छराज को अपने हाथी समेत मैदान से लौटना पडा। यह देख वहाकी सारी कौरव सेना भयभीत होकर भाग खडी हुई।

हाथी और रथो में जुते हुए घोडे जब घबराकर भागने लगे तो हजारो पैदल सैनिक उनके पैरों तले कुचल गये और मृत्यु को प्राप्त हुए। कौरव सेना को इस प्रकार घबराहट के मारे भागते देखकर देश के राजा भगदत्त से न रहा गया। वह अपने विख्यात लडाकू हाथी सुप्रतीक पर सवार होकर भीमसेन की ओर बढ़ा। अपनी सूड को घुमाता हुआ वह हाथी भीमसेन पर झपटा और उसके रथ और घोड़ो को तहस-नहस कर दिया। रथ के नष्ट हो जाने पर भी भीमसेन बिलकुल नही घबराया। हाथियो के मर्म-स्थानो के बारे में उसकी जानकारी खूब थी। इस कारण वह जमीन पर कूद पड़ा और चालाकी से भगदत्त के हाथी के पावो के बीच में से घुसकर उसके शरीर से सटकर नीचे खडा हो गया और उसके मर्म-स्थानो पर घूसे मार-मार कर उसे बेहाल कर दिया। हाथी मारे दर्द के जोरो से चिंघाड़ने

लगा । कुम्हार के चाक की भाति वह अपने चारो ओर चक्कर खाने लगा और अपने-आपको छुडाने का प्रयत्न करने लगा। घूमते-घूमते अचानक हाथी ने अपनी सूड से भीमसेन को पकड लिया और उसे जमीन पर पटककर अपने परो से कुचलने ही वाला था कि इतने में भीमसेन बडी चपलता से उसकी पकड में से छटक गया और फिर से उसके पैरो के बीच जा घुसा और पहले की भाति उसे मारे घूसो के तग करने लगा ।

भीमसेन को यह आशा थी कि पाडव सेना का कोई हाथी इधर निकल आवे और सुप्रतीक पर आक्रमण करदे तो उसे इस सकट से बच निकलने का मौका मिले । पर सेना के और वीरो को इस बात का पता नहीं लगा । उधर काफी समय तक भीम का पता न चला तो सैनिको ने शोर मचाया कि भीमसेन मारा गया । भगदत्त के हाथी ने भीमसेन को मार दिया !

यह शोर सुनकर युधिष्ठिर ने भी विश्वास कर लिया कि भीमसेन सचमुच ही मारा गया होगा । यह सोचकर उन्होने अपने वीरो को आज्ञा दी कि भगदत्त पर हमला बोल दो ।

इतने में दशार्ण देश के राजा ने अपने लडाकू हाथी पर सवार होकर भगदत्त के हाथी पर हमला कर दिया ।

दशार्ण के हाथी ने बडे जोरो के साथ युद्ध किया और सुप्रतीक पर जोर का हमला किया । फिर भी सुप्रतीक के आगे वह अधिक देर टिक नही सका । सुप्रतीक ने अपने दातो से दशार्ण के हाथी की पसलिया चूर कर दीं । दशार्ण का हाथी चक्कर खाकर गिर पडा । इसी बीच समय पाकर भीमसेन सुप्रतीक के परो के बीच में से निकल भागा ।

इधर युधिष्ठिर की भेजी कुमुक आ पहुची थी और वृद्ध भगदत्त को चारो तरफ से पाडव वीरो ने घेर लिया । बाणो के वार से उसका हाथी और वह स्वय दोनो बुरी तरह घायल हो गये, परतु फिर भी भगदत्त इससे विचलित नहीं हुआ । दावानल की भाति बूढे वीर भगदत्त का कलेजा जल रहा था । घेरे हुए शत्रु-वृन्द की बिलकुल परवाह न करके उसने सात्यकि के रथ की ओर ही हाथी दौड़ा दिया । हाथी ने सात्यकि के रथ को उठाकर

हवा में फेंक दिया। सात्यकि फुरती से जमीन पर कूद पडा, वरना उसका बचना कठिन हो जाता। उसका सारथी बडा कुशल था। उसने आकाश में फेंके गये रथ और घोडो को बडी कुशलता से बचा लिया और फिर से रथ को उठाकर ठीक-ठाक कर लिया और सात्यकि के नजदीक ले आया।

भगदत्त के हाथी ने पांडव-सेना को बहुत तग किया। वह निधडक होकर सेना के अदर घुसकर सैनिको को उठा-उठाकर फेंकने लगा और उसने चारो और तबाही मचा दी। इस हमले से सैनिको को बडी घबराहट हुई। हाथी पर शान से खडा राजा भगदत्त ठीक उसी तरह पाडव सेना के वीरो को मौत के घाट उतार रहा था जैसे देवराज इद्र अपने ऐरावत पर खडे असुरो का वध कर रहे हो।

इसी बीच भीमसेन फिर से रथ पर सवार होकर सुप्रतीक पर हमला करने लगा; परतु मतवाले हाथी ने उसके रथ के घोडो की ओर सूड बढाकर जोर से ऐसी फुकारें मारीं कि घोडे घबराकर भाग खडे हुए।

●

उधर दूसरी ओर दूर पर अर्जुन सशप्तको से लड रहा था। उसने देखा कि जहा पाडव-सेना थी वहा आकाश तक धूल उड़ रही है और हाथी की चिंघाडें भी सुनाई दे रही है। यह देखकर उसने ताड लिया कि जरूर कुछ-न-कुछ अनर्थ हो रहा होगा। वह श्रीकृष्ण से बोला—

"मधुसूदन, सुनिये तो! भगदत्त के लडाकू हाथी सुप्रतीक की चिंघाड सुनाई दे रही है। लडाकू हाथी को चलाने वालो में भगदत्त का सानी ससार में कोई नहीं है। मुझे डर है कि कहीं वह हमारी सेना को तितर-बितर करके हरा न दे। हमें शीघ्र ही उधर चलना चाहिए। इन सशप्तको को जितना हरा चुके है अभी तो उतना ही काफी है। इनको यहीं छोडकर उधर चलना जरूरी मालूम देता है, जहा द्रोणाचार्य युधिष्ठिर से लड़ रहे है।"

श्रीकृष्ण ने अर्जुन की बात मान ली और उन्होने रथ उसी ओर घुमा दिया, जिधर भगदत्त के हाथी और भीम का युद्ध हो रहा था। सुशर्मराज

और उसके भाई संशप्तक अर्जुन के रथ का पीछा करने लगे और 'ठहरो-ठहरो' चिल्लाते हुए आक्रमण भी करने लगे। यह देख अर्जुन बडी दुविधा में पडा। क्षणभर के लिए किंकर्त्तव्य विमूढ-सा होकर सोचने लगा कि "क्या करें ? सुशर्म यहा पर ललकार रहा है। उधर उत्तरी मोर्चे पर सेना का व्यूह टूट रहा है और सकट का मौका आया है। उधर जायं तो सुशर्म समझेगा कि यह डरकर भाग रहा है, यहीं पर डटे रहे और उधर सेना को तुरत मदद न पहुची तो कियाकराया सब मिट्टी में मिल जायगा।"

अर्जुन इसी सोच-विचार में पडा हुआ था कि इतने में सुशर्म ने एक शक्ति-अस्त्र अर्जुन पर छोडा और एक तोमर श्रीकृष्ण पर। सचेत होकर तुरत ही अर्जुन ने तीन बाण मारकर सुशर्म को जवाब दे दिया और भगदत्त की ओर रथ को तेजी से बढाये चलने के लिए श्रीकृष्ण से कहा।

अर्जुन के पहुचते ही पाडवो की सेना में नया उत्साह आगया। सब जहा-के-तहा रुक गये। भागने की किसीने चेष्टा न की। सेना सम्हल गई और तुरत हमला करने को प्रस्तुत हो गई। अर्जुन आते ही कौरव सेना की ओर जोरो का हमला करके भगदत्त की तरफ बढा। भगदत्त ने तत्काल अपना हाथी अर्जुन पर चला दिया। भगदत्त का हाथी अर्जुन के रथ पर काल की तरह झपटा, पर श्रीकृष्ण ने बडी कुशलता से रथ को हाथी के रास्ते से हटाकर बचा लिया।

हाथी पर सवार भगदत्त ने अर्जुन और श्रीकृष्ण दोनो ही पर बाण बरसाने शुरू किये। अर्जुन ने हाथी के कवच पर तीर मारकर पहले उसीको तोड दिया। इस कारण सुप्रतीक के शरीर पर बाणो का असर होने लगा। इससे उसे बहुत पीडा हुई। यह देख भगदत्त ने श्रीकृष्ण पर एक शक्ति फेंकी। अर्जुन ने बाणो से उसके दो टुकडे कर दिये। इसके बाद भगदत्त ने एक तोमर अर्जुन पर चलाया। तोमर अर्जुन के मुकुट पर जा लगा। इससे अर्जुन को बडा क्रोध आया। उसने अपना मुकुट सभालकर रख लिया और बोला— "भगदत्त ! अब इस ससार को अतिम बार अच्छी तरह से देख लो।" और यह कहते-कहते अपना गांडीव धनुष तान लिया।

राजा भगदत्त उम्र का वृद्ध था। उसके पके बाल और भरे हुए चेहरे पर वृद्धावस्था के कारण झुरिया देखकर सिंह का स्मरण हो आता था। भौंहो पर का चमडा लटककर आंखो पर आ पडता था। भगदत्त उसे एक रेशमी कपडे से उठाकर बाधे रखता था। उसकी शूरता का कोई सानी नहीं था। अपने शील स्वभाव और प्रताप के कारण वह क्षत्रियो में बडा प्रसिद्ध था। यहातक कि लोग बडी श्रद्धा से कहा करते थे कि भगदत्त इद्र का मित्र है। अर्जुन के चलाये बाणो से भगदत्त का धनुष टूट गया। तरकश का भी वही हाल हुआ और अर्जुन ने भगदत्त के मर्म-स्थानो पर भी बाण चलाकर छेद डाला था।

उन दिनो योद्धा लोग कवच पहना करते थे। अस्त्र-शस्त्र विद्या सिखाते समय यह भी सिखाया जाता था कि कवच के होते हुए भी किसीके शरीर को बाणो से कैसे बींधा जा सकता है।

वृद्ध भगदत्त के सब हथियार नष्ट हो गये। इसलिए उन्होने हाथी चलाने का अकुश ही उठा लिया और उसे अभिमन्त्रित करके अर्जुन पर छोडा। वह अस्त्र अर्जुन के प्राण ले ही लेता यदि श्रीकृष्ण अपनी छाती आगे न कर लेते। वैष्णवास्त्र के मत्र से अभिमन्त्रित होने के कारण श्रीकृष्ण की छाती पर लगते ही वह शक्ति वनमाला-सी बनकर श्रीकृष्ण की शोभा बढाने लगी।

अर्जुन के अभिमान को इससे बडा धक्का लगा। वह श्रीकृष्ण से बोला, "जनार्दन! शत्रु का चलाया हथियार अपने ऊपर लेना क्या आपके लिए उचित था? जब आप यह घोषणा कर चुके है कि केवल रथ चलायगे, युद्ध न करेंगे तो फिर यह कहाका न्याय कि धनुष लिये तो मै सामने खडा रहू और वार आप अपने ऊपर झेल लें!"

यह सुन श्रीकृष्ण हसते हुए बोले—"भैया! तुम नहीं जानते! यदि मै इसे अपने ऊपर न ले लेता तो यह अस्त्र तुम्हारे प्राण लेकर ही छोडता। वह मेरी चीज थी और मेरे पास लौट आई।"

●

अर्जुन ने सुप्रतीक पर तानकर एक बाण चलाया। वह हाथी के सिर

को चीरता हुआ इस प्रकार अंदर चला गया जैसे साप बिल के अदर जाता है। बाण के लगने से हाथी चिघाडता हुआ बैठ गया। भगदत्त ने उसे बहुत उकसाया, डाटा-डपटा, लेकिन हाथी ने उसकी एक न सुनी और बैठा ही रहा। पीडा के मारे बुरा हाल था उसका। बेहाल होकर वह दातो से जमीन खोदने लगा और थोडी ही देर बाद खत्म हो गया।

हाथी के मर जाने पर अर्जुन को दु ख हुआ। वह चाहता था कि अकेले भगदत्त को ही गिरावे और हाथी को न मारे। पर ऐसा न हो सका। उसके बाद अर्जुन के पैने बाणो से भगदत्त की आखो के ऊपर बधी रेशमी पट्टी कट गई जो उसकी आखो के ऊपर लटक आनेवाली चमडी को ऊपर उठाए रखती थी। इससे भगदत्त की आखें बद हो गईं। उसे कुछ नहीं सूझने लगा। वह अधेरे में मानो विलीन हो गया। थोडी ही देर बाद एक और पैने बाण ने उसकी छाती छेद डाली।

सोने की माला पहने भगदत्त जब हाथी के मस्तक पर से गिरा तब ऐसा प्रतीत हुआ मानो किसी पर्वत की चोटी पर से फूलो से लदा हुआ वृक्ष आंधी से उखडकर गिर रहा हो। भगदत्त को गिरते देखकर कौरवो की सेना मारे भय के तितर-बितर होने लगी।

किंतु शकुनि के दो भाई वृषक और अचल तब भी विचलित न हुए और जमकर लडते रहे। उन दोनो वीरो ने अर्जुन पर आगे और पीछे से बाणो की वर्षा करके खूब परेशान किया। अर्जुन ने थोडी देर बाद उन दोनो के रथो को तहस-नहस कर दिया और उनकी सेनाओ पर भी भयानक बाण-वर्षा की। सिह-शिशुओ के समान वे दोनो भाई अर्जुन के बाणो से घायल होकर गिर पडे और मृत्यु को प्राप्त हुए।

अपने अनुपम वीर भाइयो के मारे जाने पर शकुनि के क्षोभ और क्रोध की सीमा न रही। उसने माया-युद्ध शुरू कर दिया और उन सब उपायो से काम लिया जिनमें उसे कुशलता प्राप्त थी। परतु अर्जुन ने उसके एक-एक अस्त्र को अपने जवाबी अस्त्र से काट डाला और उसकी माया का प्रभाव दूर कर दिया। अत में अर्जुन के बाणो से शकुनि ऐसा आहत हुआ कि

उसे युद्ध-क्षेत्र से हट जाना पडा ।

इसके बाद तो पाडवो की सेना द्रोणाचार्य की सेना पर टूट पडी । असख्य वीर खेत रहे । खून की नदिया बह चलीं । थोडी देर बाद सूर्य अस्त हुआ । द्रोण ने देखा कि उनकी सेना बुरी तरह मार खा रही है । कितने ही सैनिक घायल हो गये है, कितने ही वीरो के कवच टूट गये हैं । लोगो में लडने का साहस नहीं रहा है । यहातक हालत हो गई कि किसी-किसी की तो बुद्धि भी ठिकाने नहीं रही । अपनी सेना का यह हाल देखकर द्रोणाचार्य ने लडाई बद कर दी । दोनो पक्षो की सेनाए अपने-अपने डेरो को चल दीं और इस प्रकार बारहवें दिन का युद्ध समाप्त हुआ ।

: ८१ :

अभिमन्यु

बारहवें दिन का युद्ध समाप्त हो जाने पर पाडव सेना अर्जुन की प्रशसा करती हुई उत्साह के साथ अपने शिविर में लौट चली । उधर कौरव-पक्ष के वीर लज्जा अनुभव कर के चिंतित भाव से धीरे-धीरे अपने डेरो में जाने लगे ।

अगले दिन सवेरा हुआ तो दुर्योधन क्रोध में भरा हुआ आचार्य द्रोण के शिविर में गया और आचार्य को नमस्कार करके उपस्थित सैनिको की ओर ध्यान न देते हुए आचार्य पर बरस पडा

"आचार्य ! युधिष्ठिर को नजदीक में पाकर भी उन्हे पकडने में आप असमर्थ रहे । यदि सचमुच आपको हमारी रक्षा की चिंता होती तो कल जो-कुछ हुआ वह आप न होने देते । यदि आप युधिष्ठिर को जीवित ही पकडने का दृढ सकल्प कर लेते तो फिर किसमें इतनी शक्ति है जो आपकी इच्छा को पूरा होने से रोक सके ? आपने मुझे जो वचन दिया था, न जाने क्यो अभीतक उसे आपने पूरा नहीं किया । आप लोग महात्मा है और

महात्माओं के कार्य भी बड़े ही विलक्षण होते हैं।"

दुर्योधन के इस प्रकार सबके सामने कहने पर आचार्य द्रोण को बड़ी चोट लगी। वे बोले—

"दुर्योधन! अपनी सारी शक्ति लगाकर मैं तुम्हारे लिए ही लड़ रहा हूं। क्षत्रिय होकर इस भांति कुविचार करना तुम्हे शोभा नहीं देता। मैंने तो पहले भी तुम्हें बता दिया था कि हमारा उद्देश्य तबतक सफल नहीं हो सकता जबतक अर्जुन युधिष्ठिर के पास रहेगा और तुमको फिर से यह बताये देता हूं कि अर्जुन को युधिष्ठिर से अलग हटाकर कहीं दूर ले जाये बिना तुम्हारा उद्देश्य सिद्ध नहीं हो सकता। यद्यपि मैं जहांतक हो सकेगा, इस बात का प्रयत्न जारी ही रखूंगा।"

आचार्य द्रोण को दुर्योधन पर क्रोध तो बहुत आया, पर उन्होंने अपनेको शांत कर लिया।

●

तेरहवें दिन भी सशप्तकों (त्रिगर्तों) ने अर्जुन को युद्ध के लिए ललकारा। अर्जुन भी चुनौती स्वीकार करके उनके साथ लड़ता हुआ दक्षिण दिशा की ओर चला। नियत स्थान पर पहुंचने पर अर्जुन और सशप्तकों के बीच घोर सग्राम छिड़ गया।

अर्जुन के दक्षिण की ओर चले जाने के बाद द्रोणाचार्य ने कौरव-सेना की चक्र-व्यूह में रचना की और युधिष्ठिर पर धावा बोल दिया। युधिष्ठिर की ओर से भीम, सात्यकि, चेकितान, धृष्टद्युम्न, कुंति भोज, उत्तमौजस्, विराटराज, कैकेय वीर—आदि और भी कितने ही सुविख्यात महारथियों ने द्रोणाचार्य के आक्रमण की बाढ़ को रोकने की जीतोड़ कोशिश की। फिर भी द्रोण का वेग उनके रोके नहीं रुक सका। यह देख सभी महारथी चिंता में पड़ गये।

सुभद्रा का पुत्र अभिमन्यु अभी बालक ही था। फिर भी अपनी रण-कुशलता और शूरता के लिए वह इतना प्रसिद्ध हो चुका था कि लोग उसको कृष्ण एवं अर्जुन की समता करने वाला समझते थे।

युधिष्ठिर ने इस वीर बालक को बुलाकर कहा— "बेटा ! द्रोणाचार्य हमें बहुत तग कर रहे है। यदि हमें हारना पडा तो अर्जुन हमारी निंदा करेगा। द्रोण के रचे चक्र-व्यूह को तोडना हमारे और किसी वीर से हो नहीं सकता। अकेले तुम्ही ऐसे हो जिसके लिए द्रोण के बनाये इस व्यूह को तोडना सभव है। द्रोण की सेना पर आक्रमण करने को तैयार हो ?"

यह सुन अभिमन्यु बोला— "महाराज, इस चक्रव्यूह में प्रवेश करना तो मुझे आता है, पर प्रवेश करने के बाद कहीं कोई सकट आगया तो व्यूह से बाहर निकलना मुझे याद नहीं है।"

युधिष्ठिर ने कहा— "बेटा, व्यूह को तोडकर एक बार तुम भीतर प्रवेश कर लो, फिर तो जिधर से तुम आगे बढोगे, उधर से ही हम तुम्हारे पीछे-पीछे चले आवेंगे और तुम्हारी मदद को तैयार रहेगे।

युधिष्ठिर की बातो का समर्थन करते हुए भीमसेन ने कहा— "तुम्हारे ठीक पीछे-पीछे मै चलूगा। धृष्टद्युम्न, सात्यकि आदि वीर भी अपनी-अपनी सेनाओ के साथ तुम्हारा अनुकरण करेंगे। एक बार अगर तुमने व्यूह को तोड़ दिया तो फिर यह निश्चित समझना कि हम सब कौरव-सेना को तहस-नहस कर डालेंगे।"

यह सब सुन कर बालक अभिमन्यु को मामा कृष्ण और वीर पिता अर्जुन की वीरता का स्मरण हो गया। बडे उत्साह के साथ वह बोला— "मैं अपनी वीरता और पराक्रम से मामा श्रीकृष्ण और पिताजी को अवश्य प्रसन्न करूंगा।"

युधिष्ठिर ने आशीर्वाद देते हुए कहा— "तुम्हारा बल हमेशा बढता रहेगा। तुम यशस्वी होओगे।"

●

"सुमित्र ! वह देखो ! द्रोणाचार्य के रथ की ध्वजा ! उसी ओर रथ चलाओ, जल्दी करो।" अपने सारथी को उत्साहित करते हुए अभिमन्यु ने कहा और सारथी ने भी उसी ओर अपना रथ चलाया।

रथ की गति से सतोष न पाकर अभिमन्यु ने सारथी को और तेजी

से रथ चलाने को उकसाया। उत्साह में आकर वह बार-बार कहने लगा—
"चलाओ, और तेज चलाओ।"

इस पर सारथी नम्रभाव से बोला, "भैया! महाराज युधिष्ठिर ने आप पर यह बडी भारी जिम्मेदारी डाली है। मेरे विचार से आप थोडी देर और सोच-विचार करलें और उसके बाद व्यूह में प्रवेश करने का तय करें। यह आपके ध्यान में रहे कि द्रोणाचार्य अस्त्र-विद्या के महान् आचार्य है और महाबली है। आप तो अवस्था में भी अभी निरे बालक ही है।"

यह सुन अभिमन्यु हस पडा और बोला—"सुमित्र! तुमको यह याद रखना चाहिए कि मेरे मामा श्रीकृष्ण है और पिता है महारथी अर्जुन! भय और शका का भूत मेरे पास तक नहीं फटक सकता। शत्रु पक्ष के सभी वीरो की शक्ति मेरी शक्ति का सोलहवा हिस्सा भी नहीं हो सकती। इनको देखकर मै सोच-विचार में पडू? तुम फिक्र मत करो। चलाओ रथ तेजी से द्रोणाचार्य की सेना की ओर। खूब तेजी से चलाओ।"

अभिमन्यु की आज्ञा मानकर सारथी ने रथ उधर ही बढ़ा दिया।

●

तीन-तीन वर्ष के सुदर और वेगवान घोडे उस सुनहरे रथ को बड़े वेग से खींचते हुए कौरव सेना की ओर दौडे। कौरव सेना में हलचल मच गई। "अरे अभिमन्यु आया और उसके पीछे-पीछे पाडव वीर भी चले आ रहे है!"

कर्णिकार वृक्ष की ध्वजा फहराते हुए अभिमन्यु के रथ को अपनी ओर बडे वेग से आते हुए देखकर कौरव-सेना के दिल एकबारगी दहल उठे। सब मन में कहने लगे— "वीरता में अभिमन्यु अर्जुन से भी बढ़कर मालूम होता है। आज के युद्ध में भगवान् ही रक्षक है।" और अभिमन्यु का रथ धडधडाता हुआ ऐसा चला—मानो शेर का बच्चा हाथियो पर झपट रहा हो। कौरव-सेना-रूपी समुद्र में एक मुहूर्त के लिए ऐसा भवर-सा आगया जैसे किसी बडी नदी के मिलने पर समुद्र में आता है। द्रोणाचार्य के देखते-देखते उनका बनाया व्यूह टूट गया और अभिमन्यु

व्यूह के अदर दाखिल हो गया।

कौरव वीर एक-एक करके अभिमन्यु का सामना करने आते गये और यमधाम को कूच करते गये जैसे आग में पडकर पतगे भस्म हो जाते हैं। जो भी सामने आया उस बाल-वीर के बाणो की मार से मारा गया। यज्ञ-शाला की जमीन पर जैसे दर्भ फैला दी जाती है, उसी तरह अभिमन्यु ने कौरव-सेना की लाशें सारे युद्ध-क्षेत्र में बिछा दी। जिधर देखो उधर धनुष, बाण, ढाल, तलवार, परसे, गदा, अंकुश, भाले, रास, चाबुक, शख आदि बिखरे पडे थे। कटे हुए हाथ, फूटे सिर, कपाल, शरीर के टुकडे आदि के ढेर से सारा मैदान ऐसे ढक गया था कि खोजने पर भी कहीं मिट्टी नहीं दिखाई देती थी।

अभिमन्यु द्वारा किये गय इस सर्वनाश को देखकर दुर्योधन को बडा क्रोध आया। वह स्वय जोश में आकर उस बालक से जा भिडा। द्रोणाचार्य को जब पता लगा कि दुर्योधन अभिमन्यु से युद्ध करने गया है तो उन्होंने तुरत कई सैनिको को उसकी सहायता के लिए उधर भेज दिया कि जल्दी से जाकर दुर्योधन की रक्षा करें। थोडी देर तक घोर युद्ध होता रहा। इतने में द्रोण की भेजी कुमुक आ पहुची और दुर्योधन को बडे परिश्रम के बाद अभिमन्यु के हाथो से छुडाया गया। बालक अभिमन्यु को इस बात का बडा दु:ख हुआ कि हाथ में आया शिकार बच कर निकल गया। दुर्योधन की सहायता को जो वीर आये थे उन पर वह टूट पडा और उन सबको मार-मार कर बेहाल कर दिया। वे बडी मुश्किल से अपने प्राण लेकर भाग खडे हुए।

कौरव-सेना ने जब यह हाल देखा तो युद्ध-धर्म और लज्जा को उसने ताक में रख दिया। बहुत-से वीर एक साथ उस अकेले बालक पर टूट पडे, किंतु जैसे समुद्र की उमडती हुई लहरें बार-बार रेतीले किनारे पर टकरा कर छितरा जाती हैं, वैसे ही वीर अभिमन्यु से टकराकर वे सभी वीर हर बार बिखर जाते थे। उन सबके बीच अभिमन्यु चट्टान की तरह अटल खडा रहा। कुछ देर बाद द्रोण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कर्ण, शकुनि आदि सात महारथियो ने अपने रथो पर चढ़कर चारो तरफ से अभिमन्यु पर एक

साथ हमला बोल दिया। इसी बीच अश्मख नामक एक राजा अपना रथ बड़े वेग से चलाता हुआ अभिमन्यु पर झपटा। अभिमन्यु ने उसके वेग को रोक लिया और दो ही बाणो के वार से उसके प्राण पखेरू उड गये। इसके बाद अभिमन्यु ने कर्ण के अभेद्य कवच को छेद डाला और उसको काफी परेशान कर डाला। और भी कितने ही वीरो को आहत होकर मैदान में पीठ दिखानी पडी। बहुतो के प्राणो की बलि चढ गई। मद्रराज शल्य बुरी तरह घायल हुए और रथ पर ही अचेत होकर पड गये। यह देख कर शल्य का छोटा भाई क्रोध के मारे आपे से बाहर हो गया और बड़े वेग से अभिमन्यु पर झपटा, पर अभिमन्यु ने इसके रथ को नष्ट कर दिया और उसका भी काम तमाम कर दिया।

अपने मामा और पिता से पाई हुई अस्त्र-शिक्षा की कुशलता को काम में लाकर शत्रु दल को सर्वनाश का सामना कराने वाले वीर-बालक की शूरता तथा रण-कुशलता को देखकर आनद के कारण द्रोणाचार्य की आखें एकबारगी कमल की भाति विकसित हो गईं।

"अभिमन्यु की समता करने वाला वीर कोई नहीं है।" द्रोण ने मुग्ध हो कर कृपाचार्य से कहा। दुर्योधन ने जब इस प्रकार द्रोण को अभिमन्यु की प्रशसा करते हुए सुना तो उसे बडा क्रोध आया।

वह बोला— "आचार्य को अर्जुन से जो स्नेह है, उसी कारण वे उसके पुत्र की अनुचित प्रशसा में व्यर्थ समय गवा रहे हैं। वे चाहते तो इस बालक का दमन करना कोई भारी बात नहीं थी, पर आचार्य इसे मारना थोडे ही चाहते हैं।"

बात यह थी कि दुर्योधन ने अधर्म से प्रेरित होकर युद्ध की यह बला सिर मोल ले लीं थी। इस कारण उसे अक्सर द्रोण, भीष्म आदि पर अविश्वास होता रहता था और इससे बडा व्यथित भी हो जाता था।

●

"इस नासमझ लडके को तो मैं अभी ठिकाने लगाये देता हू।" यह कहकर सिंहनाद करके और शख बजाकर दु शासन ने अभिमन्यु पर

बाणों से हमला कर दिया ।

दु शासन और अभिमन्यु में बडी देरतक युद्ध होता रहा । दोनो अपने-अपने रथ पर चढकर पैतरे बदलते हुए और एक-दूसरे को चकमा देते हुए युद्ध करते रहे । अत में दु शासन घायल होकर रथ पर ही अचेत हो गया। उसका चतुर सारथी यह हाल देखकर युद्ध के मैदान से उसका रथ दूर लेगया । पराक्रमी दु शासन की इस पराजय के कारण पाडव-सेना में खुशी छा गई और अभिमन्यु के जयजयकार से सारी दिशाए गूजने लगीं ।

इसके बाद महाबली कर्ण ने फिर से अभिमन्यु पर हमला कर दिया । अभिमन्यु उससे परेशान तो हुआ पर वह घबराया तनिक भी नहीं । उसने एक बाण ठीक निशाना ताक कर ऐसे मारा कि कर्ण का धनुष कटकर गिर पडा ।

इससे क्रुद्ध होकर कर्ण के भाई सूतपुत्र ने अभिमन्यु पर आक्रमण किया और दूसरे ही क्षण अभिमन्यु के बाणो ने उसके सिर को धड से अलग करके पृथ्वी पर गिरा दिया। लगे हाथ अभिमन्यु ने कर्ण की भी कसकर खबर ले ली और उसे उसकी सेना के साथ युद्ध के मैदान से खदेड दिया ।

जब कर्ण का यह हाल हुआ तो फिर कौरव सेना की पक्तिया टूट गईं । सैनिक तितर-बितर होकर भाग खडे हुए । द्रोण ने उन्हे डटे रहने को हजार उकसाया, पर फिर भी कोई डटे रहने का साहस न कर सका। जिसने जरा साहस किया कि अभिमन्यु ने उसकी ऐसी गत बनाई जैसे सूखे जगल को आग तबाह कर देती है ।

: ८२ :

अभिमन्यु का वध

जैसा कि पहले तय हुआ था, पाडवो की सेना अभिमन्यु के पीछे-पीछे चली और जहासे व्यूह तोडकर अभिमन्यु अदर घुसा वहींसे

व्यूह के अदर प्रवेश करने लगी। सिंधु देश का पराक्रमी राजा जयद्रथ, जो धृतराष्ट्र का भानजा था, यह देख अपनी सेना को लेकर पांडव-सेना पर टूट पडा। जयद्रथ के इस साहसपूर्ण काम और सूझ को देखकर कौरव-सेना में उत्साह की लहर दौड गई। कौरव-सेना के सभी वीर उसी जगह इकट्ठे होने लगे जहा जयद्रथ पाडव-सेना का रास्ता रोके हुए खडा था। शीघ्र ही टूटे मोरचो की दरारें भर गईं। जयद्रथ के रथ पर चादी का शूकर-ध्वज फहरा रहा था। उसे देख कौरव-सेना की स्फूर्ति बहुत बढ़ गई और उसमें नया उत्साह भर गया। व्यूह को भेदकर अभिमन्यु ने जहासे रास्ता किया था, वहा इतने सैनिक आकर इकट्ठे होगये कि व्यूह फिर पहले जैसा ही मजबूत हो गया।

●

व्यूह के द्वार पर ही एक तरफ युधिष्ठिर, भीमसेन और दूसरी ओर जयद्रथ में युद्ध छिड गया। युधिष्ठिर ने जो भाला फेंककर मारा तो जयद्रथ का धनुष कट कर गिर गया। पलक मारते-मारते जयद्रथ ने दूसरा धनुष उठा लिया और दस बाण युधिष्ठिर पर मारे। भीमसेन ने बाणो की बौछार से जयद्रथ का धनुष काट दिया, रथ की ध्वजा और छतरी को तोड-फोड दिया और रणभूमि में गिरा दिया। उस पर भी सिंधुराज नहीं घबराया। उसने फिर एक दूसरा धनुष ले लिया और बाणो से भीमसेन का धनुष काट डाला। पल भर में ही भीमसेन के रथ के घोडे ढेर हो गये। भीमसेन को लाचार हो रथ से उतरकर सात्यकि के रथ पर चढना पडा।

जयद्रथ ने जिस कुशलता और बहादुरी से ठीक समय व्यूह की टूटी किलेबदी को फिर से पूरा करके मजबूत बना दिया उससे पाडव बाहर ही रह गये। अभिमन्यु व्यूह के अदर अकेला रह गया। पर अकेले अभिमन्यु ने व्यूह के अदर ही कौरवो की उस विशाल सेना को तहस-नहस करना शुरू कर दिया। जो भी उसके सामने आता खत्म हो जाता था।

दुर्योधन का पुत्र लक्ष्मण अभी बालक था; पर उसमें वीरता की आभा-सी फूट रही थी। उसके भय छू तक न गया था। अभिमन्यु की बाण-

वर्षा से व्याकुल होकर जब सभी योद्धा पीछे हटने लगे तो वीर लक्ष्मण अकेला जमकर अभिमन्यु से भिड पडा। बालक की इस निर्भयता से स्फूर्ति पाकर भागती हुई कौरव-सेना फिर से इकट्ठी हो गई और वीर लक्ष्मण का साथ देकर लडने लगी। सबने एक साथ ही अभिमन्यु पर बाण-वर्षा कर दी। पर वह अभिमन्यु पर इस प्रकार लगी जैसे पर्वत पर मेंह बरसता हो।

दुर्योधन-पुत्र अपने अद्‌भुत पराक्रम का परिचय देता हुआ वीरता से युद्ध करता रहा। अत में अभिमन्यु ने उस पर एक भाला चलाया। केंचुली से निकले साप की तरह चमकता हुआ वह भाला वीर लक्ष्मण के बड़े जोर से जा लगा। सुदर नासिका और सुदर भौंहो वाला, चमकीले-घुघराले केश और जगमगाते कुडलो से विभूषित वह वीर बालक भाले की चोट से तत्काल मृत होकर गिर पडा।

यह देख कौरव-सेना आर्त्तस्वर में हाहाकार कर उठी।

"पापी अभिमन्यु का इसी क्षण वध करो।" दुर्योधन ने चिल्लाकर कहा और द्रोण, कृप, कर्ण, अश्वत्थामा, बृहद्‌बल, कृतवर्म आदि छह महारथियो ने अभिमन्यु को चारो ओर से घेर लिया।

द्रोण ने कर्ण के पास आकर कहा, "इसका कवच भेदा नहीं जा सकता। ठीक से निशाना बाधकर इसके ,रथ के घोडो के रास काट डालो और पीछे की ओर से इसपर अस्त्र चलाओ।"

सूर्यकुमार कर्ण ने यही किया। पीछे की ओर से बाण चलाये गये। अभिमन्यु का धनुष कट गया। घोड़े और सारथी मारे गये। वह रथ-विहीन हो गया। धनुष भी न रहा। फिर भी वह वीर बालक ढाल-तलवार लिये शान से खडा रहा। उस समय ऐसा लगता था मानो क्षत्रियोचित शूरता का वह मूर्त्तस्वरूप हो। लडाई के मैदान में ढाल-तलवार लिये खडे अभिमन्यु ने रण-कौशल का ऐसा प्रदर्शन किया कि सभी वीर विस्मय में पड गये। अभिमन्यु बिजली की तरह तलवार घुमाता रहा और जो भी उसके पास आता उस पर आक्रमण करके उसकी खासी अच्छी खबर लेता। वह तलवार इस फुरती से चलाता था कि ऐसा मालूम होता

था मानो वह जमीन पर खडा ही न हो और आकाश में ही युद्ध कर रहा हो। इतने में आचार्य द्रोण ने अभिमन्यु की तलवार काट डाली। साथ-ही कर्ण ने कई तेज़ बाण एक साथ चलाकर उसकी ढाल के टुकडे कर दिये।

तुरत ही अभिमन्यु ने टूटे रथ का पहिया हाथ में उठा लिया और उसे घुमाने लगा। ऐसा करते हुए वह लगता था मानो सुदर्शन चक्र लिये हुए साक्षात भगवान नारायण हो। रथ के पहिये की धूल लग जाने के कारण उसके गौर-वर्ण शरीर की स्वाभाविक शोभा और बढ गई।

●

इस समय अभिमन्यु भयानक युद्ध कर रहा था। यह देख सारी सेना एक साथ उस पर टूट पडी। उसके हाथ का पहिया चूर-चूर हो गया। इसी बीच दु शासन का पुत्र गदा लेकर अभिमन्यु पर झपटा। इसपर अभिमन्यु ने भी पहिया फेंक कर गदा उठा ली और दोनो आपस में भिड पडे। दोनो में घोर युद्ध छिड गया। एक-दूसरे पर गदा का भीषण वार करते हुए दोनो ही राजकुमार आहत होकर गिर पडे। पर दोनो ही हडबडा कर उठने लगे। दु शासन का पुत्र ज़रा पहले उठ खडा हुआ। अभिमन्यु अभी उठ ही रहा था कि दु शासन के पुत्र ने उसके सिर पर जोर से गदा-प्रहार किया। यो भी अभिमन्यु अब तक कइयो से अकेला लडते-लडते घायल हो चुका था और थककर चूर-चूर हो रहा था। गदा की मार पडते ही उसके प्राण पखेरू उड गये।

●

सजय ने धृतराष्ट्र को इस घटना का हाल सुनाते हुए कहा— "सुभद्रा के पुत्र के कौरव-सेना में घुसने पर सेना की ऐसी दुर्दशा हो गई जैसे हाथी के घुस आने पर कदली-बन की होती है। ऐसे इस वीर को कई लोगो ने एक साथ आक्रमण करके मार डाला और मरे हुए अभिमन्यु के शरीर को घेरकर आपके बधु-बाधव एव साथी जगली व्याधो की भाति नाचने-कूदने व आनद मानने लगे। जो सच्चे वीर थे यह देख कर उनकी आखो में आसू आ गये। आकाश में जो पक्षी मडरा रहे थे, वे चीखने लगे, मानो

पुकार-पुकार कर कह रहे हो कि "यह धर्म नहीं ! धर्म नहीं !"

अभिमन्यु के वध पर कौरव-वीरो के आनद का कोई ठिकाना न रहा। सभी वीर सिंह-नाद करने लगे; किंतु धृतराष्ट्र के पुत्र युयुत्सु को इससे बडा क्रोध आया।

वह बोला— "तुम लोगो ने यह उचित नहीं किया। युद्ध-धर्म से अनभिज्ञ क्षत्रियो! चाहिए तो यह था कि तुम लोग लज्जा से सिर झुकाते! उल्टा, सिंहनाद कर रहे हो! तुमने यह एक भारी पाप किया है और आगे के लिए एक भारी सकट मोल ले लिया है। इस पर ध्यान न देकर मूर्ख व नासमझ लोगो की भाति आनद मना रहे हो! धिक्कार है तुम्हें!" यह कहते-कहते युयुत्सु ने अपने हथियार फेंक दिये और मैदान से चल दिया।

युयुत्सु धर्म-प्रिय था। उसकी बातें भला कौरवों को क्यों पसद आने लगीं!

: ८३ :

पुत्र-शोक

"हा दैव! जिस वीर ने द्रोण और अश्वत्थामा को, कृप और दुर्योधन को परास्त कर दिया था, जिसने शत्रु-सेना को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था, वह चिरनिद्रा में सो गया! हाय मेरे लाडले, दु शासन को खदेडने वाले शूर! क्या सचमुच तुम्हारी मृत्यु हो गई? तो फिर अब मुझे विजय की क्या जरूरत! अब राज्य को ही लेकर मै क्या करूगा? हा दैव! अर्जुन को मै कैसे सात्वना दूगा? बेचारी सुभद्रा को जो बच्चे से बिछडी हुई गऊ की भांति तडप रही होगी, मै कैसे शात कर सकूगा? जिन बातो से स्वय मुझे सात्वना नहीं मिल सकती, ऐसी निरर्थक बातें दूसरो से कैसे करू? लोभ में पड़कर लोगो की बुद्धि मद हो जाती है। जैसे कोई मतिहीन

शहद के लालच में पडकर सामने के गड्ढे को देखे बिना उसमें गिरकर नाश को प्राप्त हो जाता है, वैसे ही मैंने भी विजय की लालसा में पडकर अपने प्यारे बेटे को सर्वनाश के गड्ढे में धकेल दिया। मुझ जैसा मतिहीन और निरा मूर्ख ससार भर में और कौन हो सकता है ? मैं भी कैसा हत्यारा और पापी हू कि जो अर्जुन की अनुपस्थिति में उसके लाडले बेटे की रक्षा करने के बजाय उसकी हत्या करवा दी !"

अपने शिविर में दु ख की प्रतिमूर्त्ति-से बैठे युधिष्ठिर इस प्रकार विलाप कर रहे थे। आसपास बैठे लोग अभिमन्यु की शूरता का स्मरण करते हुए अवाक् से बैठे थे।

युधिष्ठिर पर जब कभी विपदा आती और वे शोक-विह्वल होते थे तब भगवान् व्यास उनके पास न जाने कैसे आ पहुचते थे और उनको समझा-बुझाकर शात किया करते थे।

इस समय भी भगवान् व्यास आ पहुचे।

युधिष्ठिर ने उनका उचित आदर-सत्कार करके ऊचे आसन पर बिठाया और रुद्ध कठ से बोले— "भगवन्, हजार प्रयत्न करने पर भी मन शात नहीं होता।"

व्यासजी युधिष्ठिर को सात्वना देते हुए बोले— "युधिष्ठिर, तुम बडे बुद्धिमान् हो। शास्त्रो के ज्ञाता हो। किसीके बिछोह पर इस तरह शोक-विह्वल होना और मोह में पडना तुम्हें शोभा नहीं देता। मृत्यु के तत्त्व से तुम क्या परिचित नहीं हो ? नासमझ लोगो की तरह शोक करना तुम्हें उचित नही।" और इस प्रकार जीवन-मरण की दार्शनिक व्याख्या करते हुए भगवान् व्यास ने युधिष्ठिर को शांत किया।

"जगत-सृष्टा ब्रह्मा ने अखिल विश्व का सृजन किया, भाति-भाति के असख्य जीव-जतुओ का निर्माण किया और इस प्रकार जीव-जतुओ की सख्या बढती ही गई। वह रुकती तो थी ही नहीं। विधाता ने जब यह देखा तो भारी सोच में पड गये कि जगत में स्थान तो सीमित है और उस पर रहने वाले जीव-जतुओ की सख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही

चली जा रही है । इसके लिए क्या उपाय करें ? ब्रह्मा ने बहुत सोचा-विचारा । परतु फिर भी उन्हें कोई उपाय न सूझा । विधाता के मन में इस लगातार चिंता के कारण जो सताप हुआ, उससे एक भीषण ज्वाला-सी उठी और सारे ससार का नाश करने लगी । यह देख रुद्र को भय हुआ कि इससे कहीं ससार का समूलोच्छेदन न हो जाय । वह ब्रह्मा के पास गये और उनसे प्रार्थना की कि इस ज्वाला को वे समेट लें । ब्रह्मा ने रुद्र की प्रार्थना मान ली और क्रोध की ज्वाला को शात कर लिया । दबे हुए क्रोध की अग्नि ने मृत्यु का रूप ले लिया । प्राणियो की उत्पत्ति और नाश में व्याधियो और युद्ध जैसी दुर्घटनाओ के द्वारा समता लाने की वह चेष्टा कर रही है और इस प्रकार जीवन का यह एक अनिवार्य अग ही बन गई है ।

"मृत्यु एक ऐसी ईश्वरीय व्यवस्था है कि जिसका एकमात्र उद्देश्य ससार का हित करना है । अत मृत्यु (मरण) से डरना या उसके लिए शोक करना उचित नहीं । जो मर गये है उनके प्रति शोक करने का कोई कारण नहीं है । वास्तव में शोक तो उनके लिए करना चाहिए जो जीवित है और मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे है ।"

भगवान व्यास ने इस तत्त्व-विचार के समर्थन में कई पौराणिक एवं ऐतिहासिक आख्यानो के प्रमाण देकर युधिष्ठिर के व्यथित हृदय को शात किया ।

फिर वे बोले— "तुम तो जानते ही हो कि ससार में जितने भी कीर्त्ति-मान, प्रतापी और धन-सपत्ति से सपन्न भाग्यवान लोग रहे है, उन सभी को अत में शरीर छोडकर जाना ही पडा है । यह भी तुम्हे मालूम है कि मरुत्, सुक्षेत्र, अग, शिबि, राम, भगीरथ, दिलीप, माधाता, ययाति, अबरीष, शशबिदु, रतिदेव, भरत, पृथु आदि चौदहो यशस्वी सम्राट् भी आखिर मृत्यु को ही प्राप्त हुए थे । अत तुम्हे अपने पुत्र की चिंता न करनी चाहिए । जो अधिक देरी न किये स्वर्ग को पहुच जाय उसके प्रति शोक करना ही नहीं चाहिए । जो दु ख का अनुभव करने लगता है उसका दु ख बढता ही जाता है । विवेकशील व्यक्ति को चाहिए कि शोक को मन से हटा दे और अपने

कर्त्तव्य का पालन करते हुए सद्गति को प्राप्त करने की चेष्टा में दत्त-चित्त रहे ।"

धर्मराज युधिष्ठिर को यो उपदेश देकर भगवान व्यास अतर्धान होगए ।

●

सशप्तको (त्रिगर्तों) का सहार करने के बाद युद्ध समाप्त करके अर्जुन और श्रीकृष्ण अपने शिविर को लौट रहे थे । रास्ते में अर्जुन का दिल कुछ घबराने-सा लगा । वह श्रीकृष्ण से बोला—"गोविंद ! न जाने क्यों मेरा मन घबरा रहा हैं । जी में उदासी-सी छा रही है । जीभ सूख रही है । मन में भारी व्यथा है । यद्यपि इसका कोई कारण मालूम नहीं पडता; पर कहीं महाराज युधिष्ठिर के साथ कोई दुर्घटना तो नहीं हुई ? धर्मराज कुशल से तो होगे ?

वासुदेव ने कहा— "युधिष्ठिर अपने भाइयो सहित सकुशल होगे । तुम इस बात की जरा भी चिंता न करो ।"

रास्ते में सध्या-वदना करने के बाद दोनो फिर रथ पर सवार होकर अपने शिविर की ओर चलने लगे । ज्यो-ज्यो शिविर निकट आता गया त्यो-त्यो अर्जुन की घबराहट बढती गई । वह बोला— "जनार्दन ! क्या कारण है कि सदा की भाति आज कोई मगल-ध्वनि सुनाई नहीं दे रही है ? बाजे नहीं बज रहे है ? जो सैनिक सामने दीख पडता है मुझपर उसकी निगाह पडते ही न जाने क्यो, वह अपना सिर झुका लेता है । कभी ऐसा हुआ नहीं । आज यह क्या बात ह ? और क्यों ? माधव, मेरा मन घबराया हुआ है । मै भ्रात-सा हो रहा ह । सब भाई कुशल से तो होगे ? आज अभिमन्यु अपने भाइयो के साथ हसता हुआ मेरा स्वागत करने क्यो नहीं दौडा आ रहा ह ?"

एसी ही बातें करते हुए दोनो शिविर के अदर पहुचे ।

युधिष्ठिर आदि जो भाई-बधु शिविर में थे, वे कुछ बोले नहीं । यह देख अर्जुन बोला— "आप लोगो के चेहरे उतरे हुए क्यो है ? मलिनता आप सबके मुख पर क्यो छाई हुई है ? अभिमन्यु भी दीख नहीं पडता ।

क्या कारण है कि आप कोई भी आज की मेरी विजय पर मेरा स्वागत नहीं करते ? न हसकर आप लोग बातें ही करते है। मैंने सुना था कि आचार्य द्रोण ने चक्र-व्यूह रचना की थी। अभिमन्यु को छोडकर आपमें से कोई भी इस व्यूह को तोडकर भीतर घुसना नही जानता है। अभिमन्यु तो उसे तोडकर भीतर नहीं चला गया ? मैं उसे बाहर निकलने की तरकीब नहीं बता सका था। वहा जाकर कहीं वह मारा तो नहीं गया है ?"

किसीके कुछ न कहने पर भी अर्जुन ने परिस्थिति देखकर अपने-आप ही सब बातें ताड लीं और तब उससे नहीं रहा गया। सब कुछ जान जाने पर वह बुरी तरह बिलखने लगा।

"अरे ! क्या सचमुच मेरा प्यारा बेटा यमलोक पहुच गया ? सचमुच क्या वह यमराज का मेहमान बन गया ? युधिष्ठिर, भीमसेन, धृष्टद्युम्न, महापराक्रमी सात्यकि आदि आप सब लोगो ने क्या सुभद्रा के पुत्र को शत्रु के हाथो सौंप दिया ? आप सबके होते हुए उसे बलि चढना पडा ? अब मैं सुभद्रा को किस तरह जाकर समझाऊगा ? द्रौपदी को कैसे मुह दिखाऊगा ? उनके पूछने पर क्या कहूगा ? अरे, उत्तरा को अब कौन समझायगा ? कैसे कोई उसे सात्वना देगा ?"

पुत्र के बिछोह से दुखित अर्जुन को वासुदेव ने सम्हाला और उसे तरह-तरह से समझाने लगे— "भैया, तुम्हें इस तरह व्यथित नहीं होना चाहिए। हम क्षत्रिय है। क्षत्रिय हथियारो के बल जीते है और हथियारो से ही हमारी मृत्यु होती है। जो कायर नहीं है, जो युद्ध के मैदान में पीठ दिखाना नहीं जानते, उन शूरो की तो मृत्यु सहेली बनकर सदा साथ रहती है। जो वीर निडर होते है उनकी तो असमय में ही अचानक मृत्यु हो जाना ही स्वाभाविक मृत्यु है। पुण्यवानो के योग्य स्वर्ग को तुम्हारा पुत्र प्राप्त हुआ है। क्षत्रियो की यही तो कामना—बलवती इच्छा—होती है कि युद्ध करते हुए वीरोचित रीति से प्राण-त्याग करें। क्षत्रियो के जीवन का जो चरम ध्येय है—जिसे पाना ही क्षत्रियो के जीवन का परम उद्देश्य माना गया है—उसीको आज अभिमन्यु प्राप्त हुआ। अत. तुम्हें पुत्र की

मृत्यु का दुख न करना चाहिए। तुम अधिक शोक-विह्वल होओगे तो तुम्हारे बधु-बाधवो एव साथियो का भी मन अधीर हो उठेगा। उनकी भी स्थिरता जाती रहेगी। अत शोक को दूर करो। अपनेको सभालो और दूसरों को भी ढाढ़स बधाओ।"

श्रीकृष्ण की बातें सुनकर अर्जुन कुछ शात हुआ। उसने अपने इस वीर पुत्र की मृत्यु का सारा हाल जानना चाहा। उसके पूछने पर युधिष्ठिर बोले—

"मैने अभिमन्यु से कहा था कि चक्र-व्यूह को तोडकर भीतर प्रवेश करने का हमारे लिए रास्ता बना दो तो हम सब तुम्हारा अनुकरण करते हुए व्यूह में प्रवेश कर लेंगे। तुम्हारे सिवा दूसरा और कोई इस व्यूह को तोडना नहीं जानता। तुम्हारे पिता और मामा को भी यही प्रिय होगा। तुम इस काम को अवश्य करना। मेरी बात मानकर वीर अभिमन्यु उस अभेद्य व्यूह को तोडकर अदर घुस गया। हम भी उसीके पीछे-पीछे चले और हम अदर घुसने ही वाले थे कि पापी जयद्रथ ने हमें रोक लिया। उसने बडी चतुरता से टूटे व्यूह को फिर से ठीक कर दिया। हमारे लाख प्रयत्न करने पर भी जयद्रथ ने हमें प्रवेश करने न दिया। इसके बाद हम तो बाहर रहे और अदर कई महारथियो ने एक साथ मिलकर उस अकेले बालक को घेर लिया और मार डाला।"

युधिष्ठिर की बात पूरी भी न हो पाई थी कि अर्जुन आर्त्त स्वर में "हा बेटा!" कहकर मूच्छित होकर गिर पडा। चेत आने पर वह उठा और दृढतापूर्वक बोला— "जिसके कारण मेरे प्रिय पुत्र की मृत्यु हुई, उस जयद्रथ का मै कल सूर्यास्त होने से पहले वध करके रहूगा। युद्ध-क्षेत्र में जयद्रथ की रक्षा करने को यदि आचार्य द्रोण और कृप भी आजाय तो उनको मै भी अपने बाणो की भेंट चढ़ा दूगा। यह मेरी प्रतिज्ञा है।"

यह कहकर अर्जुन ने गाडीव-धनुष का जोर से टकार किया। श्रीकृष्ण ने भी पाचजन्य शख बजाया और भीमसेन बोल उठा— "गाडीव की यह टकार और मधुसूदन के शख की यह ध्वनि धृतराष्ट्र के पुत्रो के सर्वनाश

की सूचना है ।"

: ८४ :

सिन्धुराज

सिंधु-देश के सुप्रसिद्ध राजा वृद्धक्षत्र के एक पुत्र हुआ, जिसका नाम जयद्रथ रक्खा गया। बडी तपस्या के बाद वृद्धक्षत्र के यह पुत्र हुआ था। पुत्र के पैदा होते समय यह आकाशवाणी हुई थी--

'यह राजकुमार बडा यशस्वी होगा, पर एक श्रेष्ठ-क्षत्रिय के हाथो सिर काटे जाने से उसकी मृत्यु होगी।'

इस बात का ज्ञान होते हुए भी कि जो पैदा होता है वह मरता जरूर है, बडे-बडे ज्ञानियो और तपस्वियो को भी किसीके मरने पर दु ख अवश्य होता है। अत यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि वृद्धक्षत्र आकाशवाणी सुनकर बडे व्यथित हुए। उन्होने तत्काल शाप दिया कि जो मेरे पुत्र का सिर काटकर जमीन पर गिरायगा उसका सिर उसी क्षण सौ टुकडे हो जायगा और वह भी मृत्यु को प्राप्त होगा।

जयद्रथ के अवस्था प्राप्त हो जाने पर वृद्धक्षत्र ने उसे सिंहासन पर बिठाया और आप तपस्या करने बन को चले गये और 'स्यमत पचक' नामक स्थान पर आश्रम बनाकर तपश्चर्या में दिन बिताने लगे। यही स्यमन्त पचक आगे चलकर कुरुक्षेत्र के नाम से विख्यात हुआ।

●

जयद्रथ को मारने की अर्जुन की प्रतिज्ञा के समाचार जासूसो द्वारा कौरवो की छावनी में पहुचे। जयद्रथ को जब अर्जुन की प्रतिज्ञा का हाल मालूम हुआ तो उसके मन में एकाएक यह विचार आया कि अब उसका अत समय निकट आगया मालूम होता है। वह दुर्योधन के पास गया और बोला, "मुझे युद्ध की चाह नहीं। मैं अपने देश चला जाना चाहता हू।"

यह सुन दुर्योधन ने उसको धीरज बधाया और बोला—"सैधव ! आप भय न करें। आपकी रक्षा के लिए जब कर्ण, चित्रसेन, विविंशति, भूरिश्रवा, शल्य, वृषसेन, पुरुमित्र, जय, भोज, काभोज, सुदक्षिण, सत्यव्रत, विकर्ण, दुर्मुख, दु शासन, सुबाहु, कालिगव, अवन्तिदेश के दोनो राजा, आचार्य द्रोण, अश्वत्थामा, शकुनि आदि महारथी तैयार है तो फिर आपका यहासे भयभीत होकर चला जाना ठीक नही। मेरी सारी सेना आपकी रक्षा करने के लिए नियुक्त की जायगी, आप नि शक रहे।" दुर्योधन के इस प्रकार आग्रह करने पर जयद्रथ ने उसकी बात मान ली।

इसके बाद जयद्रथ आचार्य द्रोण के पास गया और पूछा—"आचार्य ! आपने मुझे और अर्जुन को एक साथ ही अस्त्र-विद्या सिखाई थी। हम दोनो की शिक्षा में आपको कुछ अतर भी प्रतीत हुआ था?"

द्रोण ने कहा— "जयद्रथ, तुम्हे और अर्जुन को मैंने एक ही जैसी शिक्षा दी थी। दोनो की शिक्षा एक समान होने पर भी अपने लगातार अभ्यास और कठिन तपस्या के कारण अर्जुन तुम से बढा-चढा है, इसमें सदेह नहीं। पर तुम इससे भय न करना। कल हम ऐसे व्यूह की रचना करेंगे जिसे तोडना अर्जुन के लिए भी दु साध्य होगा। उस व्यूह के सबसे पिछले मोरचे पर तुम्हे सुरक्षित रक्खा जायगा। फिर तुम तो क्षत्रिय हो ! अपने पूर्वजो की परपरा को कायम रखते हुए निर्भय होकर युद्ध करो। यमराज हम सबका पीछा तो कर ही रहे है—फर्क इतना ही है कि कोई आगे जाता है तो कोई पीछे। तपस्वी लोग जिस लोक को प्राप्त करते है उसे क्षत्रिय लोग युद्ध में बडी सुगमता के साथ प्राप्त कर लेते है। इसलिए तुम डरो मत।"

●

सवेरा हुआ। शस्त्रधारियो में श्रेष्ठ आचार्य द्रोण ने सेना की व्यवस्था करने में ध्यान दिया। युद्ध के मैदान से बारह मील दूरी पर जयद्रथ को अपनी सेना एव रक्षको के साथ रखा गया। उसकी रक्षा के लिए भूरिश्रवा, कर्ण, अश्वत्थामा, शल्य, वृषसेन आदि महारथी अपनी सेनाओ के साथ

सुसज्जित तैयार थे। इन वीरो की सेना और पाडवो की सेना के बीच में आचार्य द्रोण ने एक भारी सेना को शकट-चक्र-व्यूह में रचा। शकट व्यूह के अदर कुछ दूर आगे पद्मव्यूह बनाया। उससे आगे एक सूची-मुख-व्यूह रचा। इसी सूची-मुख-व्यूह के बीच में जयद्रथ को सुरक्षित रूप से रक्खा गया। शकट-व्यूह के द्वार पर द्रोणाचार्य रथ पर खडे थे। उन्होने सफेद वस्त्र पहने हुए थे। उनका कवच भी सफेद रग का था और माथे पर उन्होने सफेद शिरस्त्राण पहन रक्खा था। इस शुभ्र वेश में द्रोणाचार्य अपूर्व तेज के साथ प्रकाशमान हुए। उनके रथ में भूरे रग के घोडे जुते थे। रथ पर जो ध्वजा फहरा रही थी उसमें वेदी का चित्र अकित था और मृग-छाला लगी हुई थी। हवा में उस ध्वजा को फहरते देखकर कौरवो का जोश बढने लगा। व्यूह की मजबूती देखकर दुर्योधन को धीरज बधा।

•

धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्मर्षण ने कौरव-सेना के आगे अपनी सेना लाकर खडी करदी। उस सेना में, एक हजार रथ, एक सौ हाथी, तीन हजार घोडे, दस हजार पैदल और डेढ हजार धनुर्धारी वीर सुव्यवस्थित रूप से खडे थे। अपनी इस सेना के आगे रथ पर खडे दुर्मर्षण ने शख बजाया और पाडवों को युद्ध के लिए ललकारा—

"कहा है वह अर्जुन जिसके बारे में लोगो ने उडा दिया कि वह युद्ध में हराया नहीं जा सकता? कहा है वह? आये तो सामने। अभी ससार देखता है कि वह वीर हमारी सेना से टकराकर उसी तरह फूट जाता है, जैसे पत्थरो से टकराकर मिट्टी का घडा।"

अर्जुन ने यह सुना और दुर्मर्षण की और अपनी सेना के बीच अपना रथ खडा कर दिया और शख बजाया, जिसका अर्थ था कि उसने चुनौती स्वीकार करली है। उसके जवाब में कौरव-सेना में भी कई शंख बजने लगे।

"केशव! जरा उधर को रथ चलाइए जहा दुर्मर्षण की सेना है। उधर जो गज-सेना है उसको तोडते हुए अदर घुसेंगे।" अर्जुन ने कहा।

दुर्मर्षण की सेना को अर्जुन ने तितर-बितर कर दिया। सेना उसी प्रकार इधर-उधर बिखर गई जैसे तेज हवा के चलने से बादल बिखर जाते हैं। यह देख दुःशासन बडा क्रुद्ध हुआ और एक भारी गजसेना लेकर उसने अर्जुन को घेर लिया।

दुःशासन बडा ही पराक्रमी था। अर्जुन और दुःशासन में भयानक लडाई छिड गई। अर्जुन के बाणो से गिरे वीरो की लाशो से सारा युद्ध-क्षेत्र पट गया। बडा वीभत्स दृश्य था। दुःशासन की सेना का जोश ठडा हो गया और वह पीठ दिखाकर भाग खडी हुई। दुःशासन भी पीछे हटा और द्रोणाचार्य के पास भागा।

अर्जुन का रथ भी तेजी से चलता हुआ आचार्य के निकट जा पहुचा।

"आचार्य! अपने प्रिय पुत्र को गवाकर और दुःख से व्यथित होकर, सिंधुराज जयद्रथ की तलाश में आया हू। अपनी प्रतिज्ञा मुझे पूर्ण करनी है, आप मुझे अनुगृहीत करें।" धनजय ने विनती की।

आचार्य मुस्करा कर बोले—"अर्जुन, आज तो मुझे हराये बिना तुम जयद्रथ के पास नहीं जा सकोगे।" और दोनो में युद्ध छिड गया। आचार्य द्रोण ने धनुष तानकर अर्जुन पर बाणो की बौछार कर दी।

अर्जुन ने भी आचार्य को यथोचित्त उत्तर दिया। द्रोण ने अर्जुन के बाणो को सहज ही में काटकर गिरा दिया और आग के समान जलाने वाले कई तेज बाण मारकर अर्जुन और श्रीकृष्ण को बहुत घायल किया। तब अर्जुन आचार्य के धनुष को काट डालने के इरादे से तरकश से बाण निकाल ही रहा था कि इतने में द्रोण के एक बाण से अर्जुन के गाडीव की डोरी कट गई। यह देख द्रोण ने मुसकराते हुए अर्जुन पर, उसके घोडे पर, रथ पर और उसके चारो ओर बाणो की वर्षा कर दी। उससे अर्जुन बडा क्रोधित हो गया और आचार्य पर हावी होने की इच्छा से कई बाणो को एक साथ तान कर छोडा।

लेकिन पल भर में ही आचार्य अर्जुन पर फिर से हावी होगये। बाणों की बेरोक-टोक वर्षा करके रथ-सहित अर्जुन को घने अधकार में डाल दिया।

आचार्य द्रोण की रण-कुशलता और पराक्रम को देखकर वासुदेव ने अर्जुन से कहा— "पार्थ ! अब देर लगाना ठीक नहीं । आचार्य को छोड चलो । ये थकने वाले नही है ।"

यह कहकर श्रीकृष्ण ने अर्जुन का रथ आचार्य की बाईं तरफ से होकर हाक दिया और दोनो शत्रु-सैन्य की ओर जाने लगे । यह देख आचार्य बोले— "जा कहां रहे हो, अर्जुन ? तुम तो शत्रु को परास्त किये बिना कभी युद्ध से हटते नहीं थे ! अब भागे क्यो जा रहे हो ? ठहरो तो !"

अर्जुन बोला— "आप मेरे आचार्य है—शत्रु नहीं । मै आपका शिष्य हू, पुत्र के समान हू । आपको परास्त करने की सामर्थ्य तो ससार के किसी योद्धा में नहीं ।" यह कहता हुआ अर्जुन घोडो को तेजी से दौडाता हुआ द्रोण के सामने से हट गया और कौरव-सेना की ओर चला ।

अर्जुन पहले भोजो की सेना पर टूट पडा । कृतवर्मा और सुदक्षिण पर एक ही साथ हमला करके व उनको परास्त करके श्रुतायुध पर टूट पडा । जोरो की लडाई छिड गई । श्रुतायुध के घोडे मारे गये । इसपर उसने गदा उठाकर श्रीकृष्ण पर चला दी । पर नि शस्त्र और युद्ध में शरीक न होने वाले श्रीकृष्ण पर चलाई गई गदा श्रुतायुध को ही जा लगी और श्रुतायुध मृत होकर गिर पडा । यह उस वरदान का परिणाम था जो श्रुतायुध की मा ने उसके लिए प्राप्त किया था ।

●

श्रुतायुध की माता पर्णाशा ने वरुण देवता से प्रार्थना की कि मेरा बेटा ससार में किसी शत्रु के हाथो न मारा जाय ।

वरुण देवता पर्णाशा से बडा स्नेह करते थे । उन्होने कहा— "तुम्हारे पुत्र को मै एक दैवी हथियार प्रदान करूगा । उसे लेकर यदि वह युद्ध करेगा तो कोई भी वीर उसे परास्त नहीं कर सकेगा । लेकिन शर्त यह है कि जो नि शस्त्र हो, युद्ध में शरीक न हुआ हो, उसपर यह शस्त्र नहीं चलाया जाना चाहिये । यदि चलाया गया तो उलटकर यह चलाने वाले का ही वध कर देगा ।"

यह कहकर वरुण ने एक दैवी गदा पर्णाशा के पुत्र को प्रदान की। युद्ध के जोश में श्रुतायुध को यह शर्त याद न रही। इसीलिए उसने श्रीकृष्ण पर गदा चला दी। श्रीकृष्ण ने उस गदा को अपने वक्षस्थल पर ले लिया। परतु मत्र में त्रुटि होने पर जैसे मत्र पढने वाले के बस का भूत उलटकर उसीका वध कर देता है, उसी प्रकार श्रुतायुध की फेंकी हुई गदा उलटकर उसीको जा लगी। श्रुतायुध जमीन पर गिर पडा, जैसे आधी के चलने से उखडकर कोई भारी पेड गिर पडता है।

इस पर काभोजराज सुदक्षिण ने अर्जुन पर जोरो का हमला कर दिया। किंतु अर्जुन ने उस पर बाणो की ऐसी वर्षा की कि उसका रथ चूर हो गया, कवच के टुकडे-टुकडे हो गए और छाती पर बाण लगने से काभोजराज हाथ फैलाता हुआ धडाम से गिर पडा जैसे उत्सव समाप्त होने पर इद्र-ध्वजाए।

श्रुतायुध और काभोजराज जैसे पराक्रमी वीरो का यह हाल हुआ देखकर कौरव-सेना में बडी घबराहट मच गई। इस पर श्रुतायु और अच्छुतायु नाम के दो वीर राजाओ ने अर्जुन पर दोनो तरफ से बाण वर्षा शुरू करदी। इससे दोनो में फिर से घोर-सग्राम शुरू होगया। अर्जुन बहुत घायल हो गया और थककर ध्वज-स्तभ के सहारे खडा होगया। श्रीकृष्ण ने उसे आश्वासन दिया। थोडी देर में अर्जुन ने अपनी थकान मिटा कर ताजा हो शत्रु-सेना पर फिर से बाण बरसाने शुरू कर दिये। देखते-देखते दोनों भाइयो को चिरनिद्रा में सुला दिया। यह देख उन दोनो के दो पुत्रो ने युद्ध शुरू कर दिया। उनको भी अर्जुन ने मृत्यु-लोक पहुचा दिया और इस प्रकार अपना गाडीव हाथ में लिये हुए, असख्य वीरो का काम तमाम करता हुए अर्जुन आगे बढता गया और कौरव-सेना-समुद्र को चीरता हुआ अत में उस जगह जा पहुचा जहा जयद्रथ अपनी सेना से घिरा खडा था।

: ८५ :

अभिमंत्रित कवच

उधर हस्तिनापुर में महाराज धृतराष्ट्र ने सजय से जब अर्जुन की विजयो का हाल सुना तो व्याकुल होकर कहने लगे—"सजय, जिस समय सधि की बातचीत करने श्रीकृष्ण हस्तिनापुर आए हुए थे, उसी समय मैंने दुर्योधन को सचेत किया था और कहा था कि सधि करने का यह अच्छा समय है। इसे हाथ से न जाने दो। अपने भाइयो से मेल करलो। श्रीकृष्ण हमारी ही भलाई के लिए आए है। उनकी बातो को ठुकराना नहीं। कितना समझाया था उसे। पर दुर्योधन ने मेरी एक न सुनी। दु शासन और कर्ण की ही बात उसे ठीक जची। काल का उकसाया हुआ वह विनाश के गर्त्त में गिरा हुआ है। फिर अकेले मैंने ही क्या, द्रोण ने, भीष्म ने, कृप ने, सभी ने उसे समझाया था कि युद्ध करने में कोई लाभ नहीं है। किंतु उस मूर्ख ने किसी की एक न सुनी। लोभ से उसकी बुद्धि फिर चुकी थी, मन कुविचारो से भर गया था। क्रोध का ही उसके मन पर राज था। ऐसा न होता तो युद्ध की बला मोल लेता ही क्यो।" यह कह धृतराष्ट्र ने ठडी सास ली।

यह सुन सजय बोला—"राजन्! अब पछताने से क्या होता है? आपका शोक करना वैसा ही है जैसे पानी सूख जाने पर बाध लगाना। चाहिये तो यह था कि कुती पुत्रो को जुए का निमत्रण ही न देते। आपने तब क्यो नहीं रोका? यदि युधिष्ठिर को पासा खेलने से रोकते तो आज [illegible] पिता के नाते आपका कर्त्तव्य था कि पुत्र को दबाकर रखते। यदि आपने ऐसा किया होता तो इस दारुण दु ख से बच गये होते। बुद्धिमानो में श्रेष्ठ होते हुए भी आपने अपने विवेक से काम नहीं लिया।

बल्कि कर्ण और शकुनि की मूर्खता भरी सलाह मान ली। इस कारण आप श्रीकृष्ण, युधिष्ठिर, द्रोणादि की आंखो में गिर चुके है। अब आपके प्रति उनकी वह श्रद्धा नहीं रही जो पहले थी। श्रीकृष्ण ने आपके बारे में यह बात जान ली कि धार्मिकता आपकी बातो तक ही सीमित है। आपके मन में तो लोभ का निवास है। अत राजन्, अब अपने पुत्रो की निंदा न कीजिये। इसमें दोषी तो आप ही है। अब तो आपके पुत्र क्षत्रियोचित धर्म के अनुसार अपनी भरसक चेष्टा कर ही रहे है। जान की परवाह न करके वे लड रहे है। जिस युद्ध का सचालन, अर्जुन, श्रीकृष्ण, सात्यकि, भीम आदि महारथी कर रहे हो, उसमें आपके बेटो की एक नहीं चल सकती है। उन वीरो के आगे वे टिक नहीं सकते। पर फिर भी जितना उनसे बन पडता है उतना प्रयत्न तो आपके पुत्र कर ही रहे है। अब उनकी निंदा करना उचित नहीं है।"

शोक से व्याकुल धृतराष्ट्र भारी आवाज में बोले—"भैया सजय, मै भी मानता हू कि तुमने जो कहा है वह बिलकुल ठीक है। होनी को भला कौन टाल सका है? तो बताओ फिर क्या हुआ? चाहे वह मगल-समाचार हो, चाहे अमगल! जो कुछ हुआ उसका सही-सही हाल बताते ही जाओ।"

और सजय सुनाने लगा—

●

अर्जुन का रथ जयद्रथ की ओर जाते देख दुर्योधन बहुत चिंतित और दुःखी हुआ। तुरत ही वह द्रोणाचार्य के पास पहुचा और बोला—

"आचार्य! हमारे इस सेना-व्यूह को तोडता हुआ अर्जुन तो अदर दाखिल होगया है। हमारी इस हार से जयद्रथ की रक्षा पर तैनात सैनिक लोग विचलित हो उठेंगे। सबको आशा थी कि आचार्य द्रोण से निबटे बिना अर्जुन कभी आगे नहीं जायगा। पर वह तो झूठी निकली। आपके देखते-देखते आपके सामने से अर्जुन अपना रथ आगे बढा ले गया। मालूम होता है कि आप पाडवो का भला करने का मौका देखते रहते है। यह देख

कर मेरा मन बहुत अधीर हो उठा है। आप ही बताइये, मैंने आपका बिगाडा क्या है ? कौन-सा ऐसा अपराध मुझ से हुआ, जो इस तरह आप मेरा साथ छोड रहे है ? यदि पहले ही आपका इरादा मुझे मालूम हो जाता तो जयद्रथ को कभी यहा ठहरने के लिए आग्रह नहीं करता। उसने तो मुझ से कहा था कि मै अपने देश को वापिस जाना चाहता हू। परतु मैंने ही उसको नहीं जाने दिया। मुझसे यह बडी भूल हो गई। यदि अर्जुन जयद्रथ पर आक्रमण करता है तो फिर जयद्रथ के प्राण नहीं बचने के! मेरी तो समझ में नहीं आता कि क्या करू?"

दुर्योधन को इस प्रकार विलाप करते देख द्रोणाचार्य बोले—"दुर्योधन, यद्यपि इस समय तुमने बहुत-सी अनुचित बातें कही है फिर भी मुझे तुम पर कोई क्रोध नही है। तुम्हे मै अपने पुत्र के समान ही मानता हू। मेरे लिए जैसे अश्वत्थामा, वैसे तुम। अत तुमको तो मै जो कुछ कहू, वही करना चाहिये। यह कवच लो! इसे तुम पहनलो और जाकर अर्जुन का डट कर मुकाबला करो। मुझे यहा से हटना नही है, क्योकि देखो, बाणो की बौछार हो रही है और पाडवो की सेना तेजी से हमारी ओर बढ़ती चली आ रही है। अर्जुन दूसरी ओर गया है, इधर युधिष्ठिर अकेला है, उसीको जीवित पकडने के लिए हमने यह प्रबध किया है। मै सोचता हू कि उसे पकडकर तुम्हारे हाथो सौप दू तो मेरा एक काम पूरा हो। इस काम को छोडकर मै अर्जुन का पीछा करने नहीं जा सकता। यदि मैं व्यूह का द्वार छोडकर अर्जुन की खोज में चला जाऊगा तो भारी अनर्थ हो जायगा। मैंने जो कवच तुमको दिया है उसे पहनकर चले जाओ। भय न करो। तुम बडे शूर हो और साथ ही रणकुशल भी। इस कवच पर किसी भी हथियार का वार होने पर तुम्हे तकलीफ नहीं होगी। किसी हथियार का इस पर प्रभाव नहीं होगा। यह मेरा अभिमत्रित कवच है। इससे तुम्हारे शरीर की रक्षा होगी। जैसे देवराज इद्र ब्रह्मा से कवच प्राप्त कर युद्ध-क्षेत्र में गये थे वैसे ही मेरे हाथो कवच पहनकर तुम भी युद्ध के लिए प्रस्थान करो। तुम्हारा कल्याण हो।"

आचार्य के ये वचन सुनकर और उनके हाथो दैवी कवच प्राप्त कर दुर्योधन की हिम्मत बधी। आचार्य के कहे अनुसार एक बड़ी सेना को लेकर वह अर्जुन के मुकाबले को चला।

●

इधर अर्जुन कौरव-सेना को पीछे छोडकर तेजी से आगे बढता गया। बहुत दूर चले जाने के बाद श्रीकृष्ण ने देखा कि घोडे थके हुए है। उन्होने रथ खडा किया कि घोडे जरा सुस्ता लें। इतने में विंद और अनुविंद नाम के दो वीर भाइयो ने अर्जुन पर आक्रमण किया। अर्जुन ने उनका मुकाबला किया और उनकी सेना तितर-बितर करके उन दोनो भाइयो को भी मौत के घाट उतार दिया। इसके बाद श्रीकृष्ण ने घोडे रथ से खोल दिये। थोडी देर थकान मिटा लेने के बाद रथ जोत कर फिर जयद्रथ की ओर तेजी से चल दिये।

●

इतने में दूर पर दुर्योधन को आता देख श्रीकृष्ण ने अर्जुन को सचेत करते हुए कहा—

"धनजय! वह देखो, पीछे दुर्योधन आ रहा है। चिरकाल से मन में क्रोध की जो आग दबा रक्खी है, आज उसे प्रकट करो। इस अनर्थ की जड को जलाकर भस्म करदो। इससे अच्छा अवसर फिर कभी नही मिलेगा। आज यह तुम्हारा शत्रु तुम्हारे बाणो का लक्ष्य बनने को आ रहा है। स्मरण रहे—यह महारथी है। दूर से ही आक्रमण करने की सामर्थ्य रखता है। अस्त्र-विद्या का कुशल जानकार है। जोश के साथ युद्ध करने वाला है। शरीर का गठीला और बली है।"

यह कह श्रीकृष्ण ने रथ घुमा दिया और अर्जुन ने एकाएक दुर्योधन पर हमला कर दिया।

●

इस अचानक आक्रमण से दुर्योधन जरा भी न घबराया। वह बोला—"अर्जुन! सुना तो बहुत है कि तुमने बडे वीरोचित कार्य किये है; किंतु

तुम्हारी वीरता का सही परिचय हमें तो अभी तक मिला नहीं है। जरा देखें तो कि तुम में कौन-सा ऐसा पराक्रम है कि जिसकी इतनी प्रशसा सुनने में आ रही है।" और दोनो में घोर सग्राम छिड गया।

●

"पार्थ! यह कैसे अचरज की बात है? क्या वजह है कि तुम्हारे चलाये बाण आज दुर्योधन को जरा भी चोट नही पहुचाय रहे हैं? गाडीव धनुष से बाण निकले और शत्रु पर उसका प्रभाव न हो! यह तो कभी नहीं देखा था। आज ऐसा क्यो हो रहा है? मुझे इस बात की कभी भी आशा न थी। अर्जुन! तुम्हारी पकड में ढील तो नहीं रहती? भुजाओ का बल तो कम नहीं हो गया? गाडीव की तनावट स्वाभाविक है? फिर क्या बात है जो तुम्हारे बाण दुर्योधन पर असर नहीं करते?" श्रीकृष्ण आतुर होकर बोले।

अर्जुन ने कहा— "सखा कृष्ण! मेरा खयाल है कि इसने आचार्य द्रोण से अभिमत्रित कवच पा लिया है और उसीको यह पहने हुए है। आचार्य ने इस कवच का भेद मुझे भी बताया था। उन्होने जरूर ही वह कवच इसके शरीर पर पहनाया होगा। स्वय दुर्योधन इसे नहीं पहन सकता। दूसरे द्वारा पहनाये हुए कवच को दुर्योधन ठीक उसी तरह ओढे खडा है जैसे बोझा लदा हुआ बैल। आप अभी मेरी कुशलता की बानगी देखिए।" और कहते-कहते अर्जुन ने ऐसी तेजी से बाण चलाये कि पलक मारते-मारते दुर्योधन के घोडे और सारथी मारे गये और रथ चूर-चूर हो गया। थोडी ही देर में अर्जुन ने दुर्योधन का धनुष काट डाला और चमडे के दस्ताने फाड दिये। दुर्योधन के शरीर का वह भाग जो कवच से ढका नहीं था, अर्जुन के बाणों से बुरी तरह भिद गया। इस प्रकार अर्जुन ने दुर्योधन को बेहद परेशान किया। अर्जुन के बाणो से दुर्योधन के हाथ, पाव, नाखून, उंगलिया तक बिध गये। अत में दुर्योधन को हार माननी ही पड़ी।

●

दुर्योधन समर-भूमि में पीठ दिखाकर भाग खड़ा हुआ। यह देख

श्रीकृष्ण ने अपना पांचजन्य शख बजाया और बड़े जोर से विजयनाद किया ।

जयद्रथ की रक्षा पर नियुक्त वीरो ने जब यह सुना तो उनके दिल एकबारगी दहल उठे और भूरिश्रवा, कर्ण, कृप, वृषसेन, शल्य, अश्वत्थामा, जयद्रथ आदि आठो रथ पर सवार हो कर अर्जुन के मुकाबले पर आगये ।

: ८६ :

युधिष्ठिरकी चिन्ता

दुर्योधन को अर्जुन का पीछा करते देखकर पाडव-सेना ने शत्रुओ पर और भी जोर का हमला कर दिया । धृष्टद्युम्न ने सोचा कि जयद्रथ की रक्षा करने को यदि द्रोण भी चले गये तो अनर्थ ही हो जायगा । इस कारण द्रोणाचार्य को रोके रखने के इरादे से उन्होने द्रोण पर लगातार आक्रमण जारी रक्खा । धृष्टद्युम्न की इस चाल के कारण कौरव-सेना तीन हिस्सो में बट कर कमजोर पड गई ।

मौका देखकर धृष्टद्युम्न ने अपना रथ आचार्य के रथ से टकरा दिया । दोनो के रथ एक-दूसरे से भिड गये । राजकुमार के रथ के कबूतरी रग के घोडे और आचार्य के रथ के भूरे रग के घोडे एक साथ खडे हो जाने से ऐसे शोभायमान हुए जैसे सूर्यास्त के समय की मेघ-माला ! वह दृश्य बडा ही सुहावना था । इतने में धृष्टद्युम्न ने अपना धनुष फेंक दिया और ढाल-तलवार लेकर द्रोणाचार्य के रथ पर उछलकर जा चढ़ा और द्रोण पर पागलो की भांति वार करने लगा । अपने जन्म के वैरी पर धृष्टद्युम्न ऐसे ही झपटा जैसे मरे जानवर पर चील-कौवे झपटते है । उसकी आंखो में निठुरता और खून की प्यास झलक रही थी ! काफी देर तक धृष्टद्युम्न का हमला जारी रहा । अत में द्रोण ने क्रोध में आकर एक पैना बाण चलाया । वह पाचालकुमार के प्राण ही ले लेता, यदि सात्यकि का बाण उसे बीच में ही न काट देता । अचानक सात्यकि के बाण रोक लेने पर द्रोण का ध्यान

उसकी ओर फिर गया। इसी बीच पाचाल-सेना के रथ-सवार धृष्टद्युम्न को वहा से हटा ले गये।

●

काले नाग के समान फुफकार मारते हुए व लाल-लाल आखो से चिनगारिया बरसाते हुए द्रोणाचार्य सात्यकि पर टूट पडे। पर सात्यकि भी कोई मामूली वीर न था। पाडव सेना के सब से चतुर योद्धाओ में सात्यकि का स्थान था। जब उसने द्रोणाचार्य को अपनी ओर झपटते देखा तो वह खुद भी उनकी ओर झपट चला।

चलते-चलते सात्यकि ने अपने सारथी से कहा— "सारथी! ये है आचार्य द्रोण, जो अपनी ब्राह्मणोचित वृत्ति छोडकर धर्मराज को पीडा पहुचाने वाले क्षत्रियोचित काम करने पर उतारू हुए है। इन्ही के कारण दुर्योधन को घमड हो गया है। अपनी शूरता का इन्हे इतना गर्व है कि सदा उसी में ये भूले रहते है। चलाओ वेग से अपना रथ। जरा इनका दर्प भी चूर करें।

सात्यकि का यह इशारा पाते ही सारथी ने घोडे छोड दिये। चांदी-से सफेद चमकने वाले घोडे हवा से बातें करते हुए द्रोणाचार्य की ओर सात्यकि का रथ ले दौडे। पास पहुचते-पहुचते सात्यकि और द्रोण, दोनो ने एक-दूसरे पर बाण बरसान शुरू कर दिये। उन दोनो के धनुष से निकले बाणो ने सूरज को ढक दिया, जिससे युद्ध के मैदान पर चारो ओर अंधेरा-ही-अधेरा छा गया। दोनो ओर से चमकते हुए नाराच-बाण ऐसे सनसनाते चले, जैसे केंचुली उतरे हुए काले नाग। दोनो के रथो की छतें और ध्वजाए टूट कर गिर पडीं। दोनो के शरीर में से खून बह निकला। उस भीषण युद्ध को देखकर दूसरे वीर तो अपना लडना भी भूल गये। सबने अपनी-अपनी लडाई बद करदी और अवाक्-से खडे होकर द्रोण और सात्यकि का युद्ध देखने लगे। इससे एकबारगी वीरो का गरजना, सिंहनाद करना, शख, तुरही आदि बाजो का बजना, सब एकदम बद हो गया। सात्यकि और द्रोण एक-दूसरे पर विविध शस्त्रास्त्रो का वार करके जिस प्रकार का

भयानक द्वद्व-युद्ध कर रहे थे, उसे देखने के लिए देवता, विद्याधर, गधर्व, यक्ष आदि की भारी भीड आकाश-वीथि में लग गई ।

●

द्रोण का धनुष सात्यकि की बाण वर्षा से कट गया । लेकिन पलक मारते ही द्रोण ने दूसरा धनुष लेकर उसकी डोरी चढ़ा ली । पर सात्यकि ने उसे भी तुरत काट दिया । द्रोण ने फिर एक और धनुष उठा लिया । वह भी कट गया । इस तरह द्रोण के एक-एक करके एक सौ एक धनुष सात्यकि ने काट गिराये । 'सात्यकि तो धनुर्धर रामचद्र, कार्त्तिकेय, भीष्म और धनजय आदि कुशल योद्धाओ की टक्कर का वीर है ।' द्रोण मन-ही-मन सात्यकि की सराहना करने लगे ।

सात्यकि ने और भी कुशलता का परिचय दिया । जिस अस्त्र का द्रोण प्रयोग करते, उसी अस्त्र का उसी तरह सात्यकि भी द्रोण पर प्रयोग करता । इस तरह बहुत देर दोनो वीर लडते रहे । फिर धनुर्वेद के आचार्य द्रोण ने सात्यकि के वध के उद्देश्य से आग्नेयास्त्र चलाया, पर उसी क्षण सात्यकि ने वरुणास्त्र छोड कर द्रोण के अस्त्र का प्रभाव होने ही न दिया । इस प्रकार बहुत देर तक युद्ध चलता रहा । अत में धीरे-धीरे सात्यकि कुछ कमजोर पडने लगा। यह देख कौरव-सेना में खुशी की लहर दौड गई ।

पर इसी बीच युधिष्ठिर को पता चला कि सात्यकि पर सकट आया हुआ है तो वे अपने आस-पास के वीरो से बोले— "कुशल योद्धा नरोत्तम और सच्चे वीर सात्यकि द्रोण के बाणो से बहुत ही पीडित हो रहे है । चलो, हम सब लोग उधर चलकर उस वीर महारथी की सहायता करें ।"

उसके बाद वह धृष्टद्युम्न से बोले— "द्रुपद-कुमार ! आपको अभी जाकर द्रोणाचार्य पर आक्रमण करना चाहिए, नही तो डर है कि कही आचार्य के हाथो सात्यकि का वध न हो जाय। अब आप किसीका इतजार न करें । इसी समय रवाना हो जाय । सात्यकि को समय पर ही सहायता पहुंच जानी चाहिए । मुझे आज आचार्य की ओर से बडा खतरा मालूम होता है । कोई बालक जैसे पक्षी को रस्सी से बाध कर उसे उड़ाता हुआ

उससे खेल करे, उसी प्रकार सात्यकि के साथ युद्ध करते हुए द्रोण बडा आनद मना रहे है और सात्यकि कमजोर पड रहा है। वह अधिक देर आचार्य के सामने टिक नहीं सकेगा। अत आप जल्दी-से-जल्दी जाकर उसकी सहायता करें। अपने साथ और वीरो को भी लेते जाय।" यह कह युधिष्ठिर ने धृष्टद्युम्न के साथ द्रोण पर हमला करने के लिए एक बडी सेना भेज दी। समय पर कुमुक पहुच जाने पर भी बडे परिश्रम के बाद सात्यकि को द्रोण के फदे से छुडाया जा सका।

इसी समय श्रीकृष्ण के पाचजन्य की ध्वनि सुनाई दी। यह आवाज़ सुनकर युधिष्ठिर चिंतित हो गये।

"सात्यकि! सुना तुमने! अकेले पाचजन्य की आवाज़ ही सुनाई दे रही है और गाडीव-धनुष की टकार नहीं सुनाई देती है। अर्जुन को कहीं कुछ हो तो नहीं गया? मेरा मन सशकित हो रहा है। जान पडता है, जयद्रथ के रक्षको से घिर कर अर्जुन सकट में पड गया है। आगे सिंधुराज की सेना है और पीछे द्रोणाचार्य की, अर्जुन बीच में फस गया मालूम होता है। अर्जुन शत्रु सैन्य में सुबह का घुसा है और अब तो दिन ढलने को आया है और बार-बार पाचजन्य की ही आवाज़ सुनाई दे रही है। कहीं अर्जुन को कुछ हो गया हो और वासुदेव ही अकेले लडने लगे हो! सात्यकि तुम्हारे लिए कोई ऐसा काम नहीं जो असाध्य हो। अर्जुन तुम्हारा मित्र है—आचार्य भी है। उसे जरूर विषम परिस्थिति का सामना करना पड़ रहा होगा। इसमें मुझे कोई सदेह नहीं है। फिर अर्जुन की तुम्हारे प्रति ऊची धारणा है। कितनी ही बार उसे मैंने तुम्हारी प्रशसा करते सुना है। जब हम बनवास में थे तब अर्जुन ने मुझसे कहा था कि सात्यकि जैसा सच्चा वीर कहीं ढूढने पर भी नही मिलेगा। उस ओर तो देखो! भयानक युद्ध के कारण आकाश में कैसी धूल उड रही है! अर्जुन जरूर शत्रुओ से घिरा हुआ है और सकट में है। जयद्रथ कोई साधारण वीर नहीं है। वह बडा पराक्रमी है। फिर उसकी खातिर अपने प्राणो की बाज़ी लगा देने को आज कई महारथी तैयार है।

तुम अभी इसी घडी अर्जुन की सहायता को चले जाओ।" इतना कहते-कहते युधिष्ठिर बहुत ही अधीर हो उठे।

युधिष्ठिर के इस प्रकार आग्रह करने पर सात्यकि ने बडी नम्रता से कहा— "धर्म पर अटल रहने वाले युधिष्ठिर! आपकी आज्ञा मेरे सिर आखो पर है। और फिर अर्जुन के लिए म क्या न करूगा? उसकी खातिर मैं अपने प्राणो को भी न्यौछावर करने के लिए सदा तैयार हू। आपकी आज्ञा होने पर मै मनुष्य तो क्या, देवताओ तक पर टूट पड़ने में न हिचकूगा। पर सारी बातो को भली प्रकार समझने वाले वासुदेव और अर्जुन मुझे जो आदेश दे गये हैं, आपसे उसका निवेदन करना अनुचित न होगा। वासुदेव और अर्जुन ने मुझसे कहा था कि 'जब तक हम दोनो जयद्रथ का वध करके न लौटें तब तक तुम युधिष्ठिर की रक्षा करते रहना। खूब सावधान रहना। असावधानी से काम न लेना। तुम्हारे ही भरोसे हम युधिष्ठिर को छोडे जाते हैं। एक द्रोण ही हैं जिनसे हमें सतर्क रहना है। उन्हींसे खतरा होने की आशका है, क्योकि द्रोण की प्रतिज्ञा तो तुम जानते ही हो। अत युधिष्ठिर की रक्षा का भार तुम्हारे ही ऊपर है।' महाराज, वासुदेव और अर्जुन मुझे ये आदेश दे गये है और मुझपर इतना भरोसा करके यह भारी जिम्मेदारी डाल गये है। म उनकी बात को कैसे टालू? आप अर्जुन की जरा भी चिंता न करें। अर्जुन को कोई नहीं जीत सकता। वह द्रोण के समान ही वीर और धनुर्धारी है। विश्वास रखिये कि सिंधुराज और दूसरे महारथी अर्जुन के आगे टिक नहीं सकेंगे। मै कहता हू कि वे सभी अर्जुन के सोलहवें हिस्से की भी बराबरी नहीं कर सकते। मै जाऊ भी तो यहा आपको किसकी रक्षा में छोड जाऊ? मुझे तो यहा पर कोई ऐसा वीर नहीं दीखता जो द्रोण के हमले का मुकाबला कर सके। इसलिये आप आगा-पीछा सोच-समझकर ही मुझे आज्ञा दीजिए।"

यह सुन युधिष्ठिर ने कहा— "बहुत कुछ सोच-विचार कर लेने के बाद निष्पक्ष होकर ही मै तुम्हे जाने को कह रहा हू। तुम्हारे लिए मेरी

यही आज्ञा है। यहा मेरी रक्षा के लिए महाबली भीमसेन है, धृष्टद्युम्न है, और भी कितने ही वीर है। अत तुम मेरी चिंता न करो।"

यह कह युधिष्ठिर ने सात्यकि के रथ पर हर तरह के अस्त्र-शस्त्र और युद्ध सामग्री रखवा दी और खूब विश्राम करके ताजे हो रहे घोडे भी जुतवा दिये और आशीर्वाद देकर सात्यकि को विदा किया।

"भीमसेन! धर्मराज युधिष्ठिर की अच्छी तरह से देखभाल और रक्षा करना।" यह कह सात्यकि रथ पर सवार होकर अर्जुन की ओर रवाना हो गया।

●

रास्ते में कौरव-सेना ने सात्यकि का डटकर मुकाबला किया। पर सात्यकि उनकी भारी सेना को तितर-बितर करता हुआ आगे बढता गया। इस तरह वह कई शत्रुओ से लडता-लडता बडी देर बाद अर्जुन के पास पहुच सका।

उधर जैसे ही सात्यकि युधिष्ठिर को छोड कर अर्जुन की ओर चला, वैसे ही द्रोणाचार्य ने पाडव-सेना पर हमले करने शुरू कर दिये। पाडव-सेना की पक्तिया कई जगहो से टूट गईं और उन्हे पीछे हटना पड गया। यह देख युधिष्ठिर बडे चिंतित हो उठे।

: ८७ :

युधिष्ठिर की कामना

"अर्जुन अभी तक लौटा नहीं और न सात्यकि की ही कोई खबर आई। भैया भीम, मेरा मन शकित हो रहा है। बार-बार पाचजन्य बज रहा है, किंतु गाडीव की टकार सुनाई नहीं दे रही है! इससे मन में भय-सा छा रहा है। वीर सात्यकि मेरे लिए प्राणो से भी प्यारा था। उसे मैंने अर्जुन की सहायता के लिए भेजा। न जाने अभी तक वह भी क्यो नहीं लौटा?

भैया, मेरी तो चिंता बढ रही है। कुछ समझ में नहीं आता कि क्या करूं ?" भीमसेन से इस प्रकार कहकर धर्मराज चिंताकुल हो उठे। उन्हे कुछ न सूझा कि क्या करें ! किंकर्त्तव्यविमूढ से होकर इधर-उधर टहलने लगे। यह देख भीमसेन बोला— "भैया, मैंने आपको इतना अधीर कभी नहीं देखा। आप क्यो इस तरह धीरज खो रहे हैं ? आप जो भी कहे, मै करने को तैयार हू। मुझे आज्ञा दीजिये कि मै क्या करू ? आप मन में उदासी न आने दें।"

युधिष्ठिर ने कहा— "भैया ! मुझे तो ऐसा भय हो रहा है कि हमारे प्यारे अर्जुन को जरूर कुछ हुआ है। अर्जुन सकुशल होता तो गाडीव की टकार अवश्य सुनाई देती। अर्जुन की अनुपस्थिति में अब स्वय माधव हथियार लेकर लड रहे दीखते हैं। यही कारण है कि गाडीव की टकार सुनाई नहीं पड रही है। इस सारी परेशानी में मुझे सूझ नही पडता कि क्या करू। मन उद्भ्रात-सा हो रहा है। भीम ! यदि मेरा कहा मानो तो तुम भी अर्जुन के पास चले जाओ और सात्यकि और अर्जुन का हालचाल मालूम करो और इसके लिए जो कुछ करना जरूरी हो वह करके वापस आकर मुझे सूचना दो। मेरा कहा मानकर ही सात्यकि अर्जुन की सहायता को कौरव-सेना से युद्ध करता हुआ गया है। तुम भी उसके पीछे-पीछे जिधर वह गया है उधर ही जाओ। यदि उनको तुम कुशलपूर्वक पाओ तो सिंहनाद करना। मै समझ लूगा कि सब कुशल है।"

भीमसेन ने युधिष्ठिर की बात का प्रतिवाद नहीं किया। सिर्फ इतना ही कहा— "राजन्, आप जरा भी चिंता न करें। मै इसी समय जाकर उनका कुशल-समाचार लाता हू और आपको उनकी खबर देता हू।" और वह धृष्टद्युम्न से बोला— "पाचाल कुमार ! आचार्य द्रोण के इरादे से तो आप परिचित ही हैं। किसी-न-किसी तरह धर्मपुत्र युधिष्ठिर को जीवित ही पकडने का उनका प्रण है। राजा की रक्षा करना ही हमारा प्रथम कर्त्तव्य है। जब वे स्वय मुझे जाने की आज्ञा दे रहे हैं तो उसका भी पालन करना मेरा धर्म हो जाता है। इस कारण युधिष्ठिर को तुम्हारे

ही भरोसे पर छोड कर जा रहा हू । इनकी भलीभाति रक्षा करना ।"

धृष्टद्युम्न ने कहा— "तुम किसी प्रकार की चिता न करो और निश्चित होकर जाओ। विश्वास रखो कि मेरा वध किये बिना द्रोण युधिष्ठिर को नहीं पकड सकेंगे।" आचार्य द्रोण के जन्म के बैरी धृष्टद्युम्न के इस प्रकार विश्वास दिलाने पर भीम निश्चित होकर तेजी से अर्जुन की तरफ चल दिया ।

●

अर्जुन की सहायता के लिए जाते हुए भीमसेन को कौरव-सेना के वीरो ने आ घेरा और उसका रास्ता रोकने की चेष्टा की। लेकिन जैसे शेर छोटे-मोटे जानवरो को खदेड देता है, उसी प्रकार भीमसेन ने शत्रु-सेना को तितर-बितर कर दिया। रास्ते में भीम के हाथो धृतराष्ट्र के ग्यारह बेटे मारे गये । भीम इस तरह जाते-जाते द्रोण के पास पहुच गया। आचार्य द्रोण उसका रास्ता रोककर बोले— "भीमसेन! मै तुम्हारा शत्रु हू । मुझे परास्त किये बिना तुम आगे नही बढ सकोगे। मेरी अनुमति पाकर ही तुम्हारा भाई अर्जुन व्यूह में दाखिल हुआ है। पर तुम्हे मै जाने की इजाजत नही दूगा।"

आचार्य का खयाल था कि अर्जुन की भाति भीमसेन भी उनके प्रति आदर प्रकट करेगा ।

किंतु भीमसेन तो उल्टा गुस्सा हो गया। बोला— "ब्राह्मणश्रेष्ठ! अर्जुन सेना में घुस पाया है तो आपसे इजाजत लेकर नही, बल्कि अपने पराक्रम के बूते पर व्यूह तोडकर वह अदर दाखिल हुआ है। अर्जुन ने आप पर दया की होगी। परतु आप मुझसे ऐसी आशा न रखिये। मै आपका शत्रु हू । एक समय था, जब आप हमारे आचार्य थे, पिता-समान थे। तब हम आपको पूजते थे। लेकिन अब जबकि आपने स्वयं कहा है कि आप हमारे शत्रु हैं तो फिर वही होगा, जो शत्रु के साथ होना चाहिए।" और यह कहते-कहते भीम गदा घुमाता हुआ द्रोण पर टूट पडा और द्रोण का रथ चूर-चूर हो गया। द्रोण को दूसरे रथ पर सवार होना पड़ा।

भीम ने उसे भी चकनाचूर कर दिया। इस तरह गदा घुमाते हुए चारो ओर के सैनिको को भी तितर-बितर करके भीमसेन व्यूह के अदर घुस गया।

उस दिन द्रोणाचार्य के एक-एक करके कई रथ चूर किये गये। भीमसेन कौरव सेना को चीरता-फाडता जा रहा था कि इतने में भोजो ने उसका सामना किया। उनको भीम ने तहस-नहस कर दिया और वह बराबर आगे बढता ही गया। जितने भी सैन्य दल मुकाबले पर आये उन्हे मारता-गिराता अत में भीम उस स्थान पर पहुच गया जहा अर्जुन जयद्रथ की सेना से लड रहा था।

अर्जुन को सुरक्षित देखते ही भीमसेन ने सिंहनाद किया। भीम का सिंहनाद सुनकर श्रीकृष्ण और अर्जुन आनद के मारे उछल पडे और उन्होने भी जोरो से सिंहनाद किया।

इन सिंहनादो को सुनकर युधिष्ठिर बहुत ही प्रसन्न हुए। उनके मन से शोक के बादल हट गये। उन्होने अर्जुन को मन-ही-मन आशीर्वाद दिया। वे सोचने लगे—

"अभी सूरज डूबने से पहले अर्जुन अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर लेगा और जयद्रथ का वध करके लौट आवेगा। हो सकता है, जयद्रथ के वध के बाद दुर्योधन शायद सधि करले। किंतु क्या ऐसा सभव होगा? अपने भाइयो का इस प्रकार मारा जाना देखकर उसको सही रास्ते पर तो आना ही होगा। कितने ही प्रतापी राजा-महाराजाओ ओर प्रसिद्ध योद्धाओ को मैदान में काम आया देखकर भी क्या दुर्योधन की बुद्धि ठिकाने नही आयेगी? जब पितामह भीष्म का भी पतन होगया तो फिर कम-से-कम रहे-सहे लोगो का नाश न होने देने का क्या कोई उपाय नहीं हो सकेगा? क्या ही अच्छा होता यदि कोई रास्ता निकल पाता।" इस प्रकार युधिष्ठिर के मन में विचार उठने लगे।

इधर तो युधिष्ठिर मन-ही-मन शाति स्थापना की कामना कर रहे थे और उधर उस मोरचे पर, जहा भीम, सात्यकि और अर्जुन थे घोर संग्राम हो रहा था। ससार किस रास्ते चले और उसके लिए घटना-चक्र का रुख

कैसा हो आदि बातें एक ईश्वर को छोडकर और कौन जान सकता है? ईश्वर का ही किया सब कुछ हो रहा है ।

: ८८ :

कर्ण और भीम

युद्ध के मैदान में एक स्थान पर सात्यकि और भूरिश्रवा, दूसरे स्थान पर कर्ण और भीम और तीसरे स्थान पर अर्जुन और जयद्रथ के बीच ऐसा घोर सग्राम छिडा हुआ था कि जैसा किसीने उस समय तक न देखा था, न सुना था। द्रोणाचार्य पाडवो के हमलो की बाढ रोकते और उनपर जवाबी हमले करते हुए व्यूह के द्वार पर ही डटे रहे । थोडे ही समय में जिस स्थान पर अर्जुन और जयद्रथ का युद्ध हो रहा था, दुर्योधन भी वहा आ पहुचा । मगर थोडी ही देर में बुरी तरह हार कर मैदान छोड भाग खडा हुआ ।

इस भाति उस रोज कई मोरचो पर जोरो से युद्ध हो रहा था । दोनो पक्ष के लोगो को जहा आगे के शत्रु-सैन्य से लडना पडता था, वहा पिछली तरफ से भी शत्रु के आक्रमण को सभालना पड रहा था ।

युद्ध का कुछ निर्णय न होता देख दुर्योधन आचार्य द्रोण के पास आया और अपनी आदत के अनुसार उन्हे जली-कटी सुनाने लगा—

"गुरुदेव! अर्जुन, भीम और सात्यकि हमारी सेना की परवाह न करके आगे बढ आए है और अब सिंधुराज तक जा पहुचे है । वहीं अर्जुन से भीषण युद्ध हो रहा है । आश्चर्य की बात है कि जिस व्यूह की रक्षा आप कर रहे है, वह इतनी सुगमता से कैसे तोडा जा सका ? हमारे सारे मनसूबे मिट्टी में मिल गये । लोग मुझसे पूछते है कि वीर, पराक्रमी और धनुर्विद्या के आचार्य द्रोणाचार्य ने इन नौसिखियो के हाथो ऐसी मुह की कैसे खाई ? मैं उन्हें कैसे समझाऊ ? आपने मुझे कहींका नहीं रखा । आपके होते हुए

भी मै अनाथ-सा हो रहा हू ।"

द्रोण ने सदा की भाति उसे सात्वना देते हुए कहा—

"दुर्योधन, तुम जो सदा मेरी निदा ही किया करते हो, वह न तो धर्म के अनुकूल है, न सच्चाई के ही । जो हुआ सो हुआ । अब उसपर सिर खपाने से फायदा ? पिछले को भूल कर आगे के कामो पर विचार करो ।"

दुर्योधन का चित्त ठिकाने नहीं था । वह बोला—

"जो कुछ करना-धरना है उसपर आप ही भलीभाति सोच-विचार लें और किसी निश्चय पर पहुचें । इतना मै और कहे देता हू कि योजना जो भी बने, उसे तुरत ही कार्यरूप में परिणत करना चाहिए ।"

द्रोण ने कहा— "बेटा दुर्योधन, सोचने की तो कई बातें है । यह बात सही है कि तीन महारथी हमें लाघ कर आगे बढ गये है । परतु उनके आगे बढ जाने से हमपर जितना खतरा आ सकता है, पीछे हमारे होने के कारण उनपर भी उतना ही खतरा हो सकता है । उनके आगे और पीछे, दोनो तरफ हमारी सेनाए खडी है । इस दशा में कहना चाहिए कि उनपर ही खतरा अधिक है । इसलिए तुम्हे हिम्मत न हारनी चाहिए । तुम तो जयद्रथ की सहायता को जाओ और वहा जो कुछ करना आवश्यक हो वह करो । बेकार की चिता करने से तो बेमौत मरना होता है । इससे कोई लाभ तो होता नही । मेरा तो यही पर रहना ठीक होगा । जब कभी तुम्हे कुमुक और युद्ध-सामग्री की जरूरत होगी यहासे भेज दिया करूगा । मुझे यहा पाचालो और पाडवो के हमले को रोकने के लिए मोर्चे को सभाले रखना चाहिए ।"

आचार्य के कहने-सुनने पर दुर्योधन कुछ सेना लेकर फिर से लडाई के उस मोर्चे पर चला गया जहा अर्जुन और जयद्रथ में जोरो की लडाई हो रही थी ।

आजकल की युद्ध-प्रणाली में कभी-कभी दुश्मन की मोर्चेबदियो को एक तरफ छोडकर आगे बढना भी खास तरीका माना गया है । इस भाति दुश्मन की सेना को एक ओर छोड़कर, उसकी परवाह न कर, आगे बढ़

निकलने से फायदे भी होते है और नुकसान भी। पिछले विश्व-युद्ध के समय, दोनो पक्ष के युद्ध-विद्या के जानकारो ने प्रयोग करके, इस तरीके से काम लिया था। शत्रु की सेना से हर मोर्चे पर लडते हुए समय गवाने के बजाय, जहा आवश्यक न हो, वहा शत्रु-सेना को एक ओर छोडकर आगे बढ जाने के इस तरीके को अग्रेजी में 'बाई पासिग' (Bye-passing) कहते है। उसी तरह का तरीका महाभारत के युद्ध में भी बरता गया था। चौदहवें दिन के युद्ध में अर्जुन ने जो आश्चर्यजनक और मार्के का काम कर दिखाया वह इसी तरीके से काम लेना था। ऐसा करके अर्जुन ने दुर्योधन को बहुत परेशान किया था। इसी बात पर तो दुर्योधन और आचार्य द्रोण की कहा-सुनी भी हो गई थी, जिसका जिक्र ऊपर आ चुका है।

उस दिन भीम और कर्ण में जो युद्ध हुआ वह एक रोमाचकारी घटना के रूप में वर्णित है। महाभारत के द्रोण-पर्व और कर्ण-पर्व में युद्ध के बहुत-से ऐसे प्रसग पाये जाते है, जिनका वर्णन पढकर यह भ्रम-सा होने लगता है कि कही आजकल के युद्ध का वर्णन तो हम नही पढ रहे है! उनमें वर्णित युद्ध की कार्रवाइया आजकल की लडाई की कार्रवाइयो से मिलती-जुलती-सी है।

●

पहले भीमसेन ने कर्ण के मुकाबले की परवा न करके अर्जुन के ही पास जाने की कोशिश की। किंतु कर्ण ने उसे आगे नहीं जाने दिया। भीमसेन पर उसने बाणो की सतत बौछार करके उसका रास्ता रोक दिया। कर्ण ने भीमसेन का मजाक उडाया और हसते-हसते कहा— "भीम, अब सभल जाओ, पर देखो कहीं भाग मत जाना। रण में पीठ दिखाना ठीक नहीं।" कर्ण की यह चुटकी भीम के लिए असह्य हो उठी और कर्ण पर वह बुरी तरह झपट पड़ा। दोनो में घोर युद्ध छिड गया। कर्ण हस-हसकर बाण चला रहा था और भीम के बाणो को रोकता भी जाता था। किंतु भीम बडी उग्रता के साथ लड रहा था। कर्ण दूर से ही खडा-खडा निशाना ताककर भीम पर बाण बरसा रहा था, पर भीम कर्ण की बाण-वर्षा की जरा

भी परवा न करके कर्ण के पास पहुचने की कोशिश कर रहा था। कर्ण न तो विचलित हो रहा था, न उत्तेजित ही, जबकि भीमसेन उत्तेजना और उग्रता की प्रति-मूर्ति-सा दिखाई दे रहा था। कर्ण जो कुछ करता धीरज और व्यवस्था के साथ शात-भाव से करता। किंतु भीम को तो थोडा-सा भी अपमान असह्य हो जाता। वह उबल पडता और विस्मयजनक शारीरिक बल का परिचय देता। तात्पर्य यह कि जहा कर्ण ठडे दिमाग और चतुराई से काम लेता था, वहा भीमसेन अमानुषिक शारीरिक बल और पागलो के-से जोश से काम ले रहा था।

●

भीमसेन का शरीर घावो से भर गया और उससे खून की धारा बह निकली। ऐसा मालूम हो रहा था मानो वसन्त में अशोक का वृक्ष। फिर भी घावो की ज़रा भी परवा किये बगैर उसने कर्ण के रथ को तहस-नहस कर दिया और घोडो को मार गिराया। उसका धनुष भी काट डाला। तब कर्ण को दूसरे रथ की ओर भागना पडा। इस हार से कर्ण के मुख की वह काति लुप्त हो गई जो पहले थी। अपमान के कारण उसके मुख पर हसी की जगह क्रोध आ गया। वह क्षुब्ध हो उठा, जैसे तूफान आने पर समुद्र। वह भीमसेन पर बडी उग्रता के साथ टूट पडा। दोनो ही बडे वीर थे। शेरों का-सा शारीरिक बल, चीलो की-सी फुर्ती, और साप की-सी फुकार के साथ एक-दूसरे पर झपटकर वे आघात करने लगे। भीमसेन को उस समय उन सब पिछले घोर अपमानो, यातनाओ और मुसीबतों की याद हो आई, जो उसे, उसके भाइयो और द्रौपदी को पहुचाई गई थीं। प्राणो का मोह छोडकर वह लडने लगा। दोनो के रथ एक-दूसरे से आ टकराये। कर्ण के सफेद और भीम के काले घोडे एक-दूसरे से सट जाने से ऐसे शोभा देने लगे जैसे काले मेघो में बिजली।

कर्ण का धनुष फिर कट गया। सारथी आहत होकर रथ से गिर पडा। यह देख कर्ण ने भीम पर शक्ति नामक अस्त्र का प्रयोग किया। भीम ने उसे रोक दिया और कर्ण पर कई बाण छोडे। इतने में कर्ण ने दूसरा धनुष

ले लिया और भीम पर बाणो की वर्षा शुरू कर दी, किंतु भीम ने फिर उसका धनुष काट दिया ।

कर्ण की यह हालत देख दुर्योधन ने अपने भाई दुर्जय को बुलाकर कहा—"मालूम होता है आज भीमसेन कर्ण की जान लेकर ही छोडेगा । तुम अभी जाकर भीम का मुकाबला करो और कर्ण की रक्षा करो ।"

भाई की आज्ञा मानकर दुर्जय भीमसेन का सामना करने लगा । यह देख भीम बडा क्रोधित हुआ और बाणो से दुर्जय, उसके सारथी और घोडो को एकसाथ मौत के घाट उतार दिया । दुर्जय आहत होकर भूमि पर गिर पडा और चोट खाये साप की तरह तडपने-लोटने लगा । यह देख कर्ण से न रहा गया ! उसकी आखो से आसू उमड पडे और सिसकिया बध गई । वह दुर्जय के तडपते हुए शरीर की प्रदक्षिणा करने लगा । लेकिन भीम ने तो अपना युद्ध जारी रक्खा और कर्ण पर लगातार बाणो की वर्षा करके उसे बहुत ही परेशान कर दिया ।

रथ के टूट जाने पर कर्ण एक दूसरे रथ पर सवार हुआ और भीम से फिर भिड पडा । कर्ण के चलाये बाणो ने भीमसेन को भी बडी पीडा पहुचाई । भीमसेन मारे क्रोध के आपे से बाहर हो गया और कर्ण पर जोरो से गदा चलाई । उसके प्रहार से कर्ण के रथ के घोडे और सारथी वही ढेर हो गये । ध्वजा टूट गई । वह रथ से उतर पडा और धनुष लेकर पैदल ही लडने लगा ।

दुर्योधन को जब इस बात का पता लगा, तो उसने अपने दूसरे भाई दुर्मुख को आज्ञा दी कि राधेय का रथ भीम ने बेकार कर दिया है सो तुम अभी जाकर उसे अपने रथ पर बिठा लाओ । दुर्मुख दुर्योधन की आज्ञा मानकर कर्ण के पास अपना रथ ले गया । धृतराष्ट्र के एक और बेटे को सामने आता देखकर भीमसेन का पुराना बैर जाग गया । उसने सोच लिया कि आज धृतराष्ट्र का एक और बेटा जमपुर सिधारेगा और उसने दुर्मुख के सात बाण मारे । कर्ण दुर्मुख के रथ पर चढ ही रहा था, कि इतने में भीमसेन के बाणो ने दुर्मुख का कवच फाड़ डाला और दुर्मुख

मृत होकर रथ से गिर पडा। खून से लथपथ हुई दुर्मुख की लाश देखकर कर्ण की आंखें फिर डबडबा आईं। एक मुहूर्त्त तक उसीको एकटक देखता हुआ वह खडा रहा। किंतु भीम तब भी न रुका। उसने कर्ण पर कई पैने बाण छोडे। कर्ण का कवच टूट गया। उससे उसे बडी पीडा होने लगी। ऐसी हालत में उसने भीमसेन पर बाणो का चलाना फिर शुरू कर दिया। उससे भीम के शरीर पर कई जगह घाव होगये। उससे उसे पीडा तो बहुत हुई पर उसने वह पीडा सह ली और कर्ण पर बराबर भयानक बाण-वर्षा जारी रखी। उधर कर्ण को एक तो घावो के कारण सख्त पीडा हो रही थी, दूसरे दुर्योधन के भाइयो को अपनी खातिर प्राणो की बलि चढाते देखकर उसका हृदय व्यथा के मारे तडप रहा था। यह विषम वेदना उससे सही न जा सकी। तब हारकर वह मैदान से हट गया।

उस समय भीमसेन का घावो से भरा शरीर धधकती हुई आग-सा प्रतीत हो रहा था। कर्ण को मैदान से हटते देखकर वह सिंहनाद करके जीत की खुशी मनाने लगा। यह सुनकर अभिमानी कर्ण का स्वाभिमान जाग उठा। वह जाते-जाते रुक गया। उसने लडाई से हटने का विचार छोड दिया और फिर मैदान में आ डटा।

: ८९ :

कुन्ती को दिया वचन

संजय से जब धृतराष्ट्र ने सुना कि दुर्मुख और दुर्जय मारे गये तो उनसे न रहा गया। वे बोले—

"दुर्योधन ने यह कैसा अनर्थ किया कि दुर्मुख और दुर्जय को युद्ध की आग में झोक कर मरवा डाला। यही मूर्ख दुर्योधन कहा करता था कि सारे संसार में मैंने एक भी वीर नही देखा जो वीरता में कर्ण की बराबरी कर सके। वह कर्ण जब मेरा साथी है तो देवता भी मुझे परास्त नहीं कर

सकते। फिर इन पाडवो की बात ही क्या है ? इस तरह इस मूर्ख दुर्योधन ने आशा में अपना महल खडा किया था। पर भीमसेन के आगे कर्ण टिक न सका और युद्ध से भाग खडा हुआ। उससे कुछ करते न बना। वह करता भी क्या ? वायुपुत्र तो वीरता और बल में यमराज के समान ही है। ऐसे महाबली से दुष्ट दुर्योधन ने बैर मोल लिया है। अब बचने की कोई आशा ही नहीं रही।

धृतराष्ट्र का यह विलाप सुनकर सजय झल्ला उठा। बोला—"राजन्, दुर्योधन तो नासमझ था ही! लेकिन पाडवो से बैर मोल लेने में तो आप भी शामिल थे। नासमझ बेटे की बातें मानकर आप ही ने तो इस सारे अनर्थ का बीज बोया! आप ही तो इसकी जड हैं। भीष्म जैसे महात्माओ की बात आपने ठुकरा दी। अब उसीका परिणाम भोग रहे हैं। किया सब आपने और निन्दा अपने बेटे की कर रहे हैं। वह तो अपने प्राण हथेली पर लेकर लड ही रहा है। अब पछताने से क्या होता है?"

यह कह सजय आगे का हाल सुनाने लगा।

●

भीमसेन के हाथो कर्ण को हारते देखकर दुर्मद, दु सह, दुर्मद, दुर्द्धर्ष, आदि धृतराष्ट्र के पाच बेटे भीमसेन पर टूट पडे। उनके आने से कर्ण का भी साहस बध गया। उसने भीमसेन पर कई तीखे बाण चलाये। पहले तो भीमसेन ने धृतराष्ट्र के बेटो की ओर ध्यान न दिया और कर्ण के ही पीछे लगा रहा। पर उन पाचो ने कर्ण को चारो तरफ से घेरकर अपने बचाव में ले लिया और भीमसेन पर बाणो की मार करते रहे। इसपर भीमसेन को गुस्सा चढ आया। उसने धृतराष्ट्र के उन पाचो पुत्रो को यमपुर पहुचा दिया। पाचो जवान राजकुमार, अपने सारथियो और घोडो के साथ युद्ध के मैदान में मृत होकर ऐसे गिर पडे जैसे आधी आने पर जगल में रग-बिरगे फूलो वाले सुदर-सुदर पेड उखड कर गिर पड़ते है।

दुर्योधन के और पाच भाइयो को इस तरह मारा गया देखकर कर्ण बडे जोश में आ गया और बडी उग्रता के साथ लडने लगा। भीमसेन भी कर्ण से हुए अपने पुराने कष्टो को याद करके बहुत उत्तेजित हो उठा और कर्ण पर पैने बाणो की बोछार करना शुरू कर दिया। कर्ण का धनुष कट गया। घोडे और सारथी मारे गये। कर्ण रथविहीन हो गया। तब वह रथ से कूद पडा और भीमसेन पर गदा-प्रहार किया। भीम ने बाण चलाकर गदा को रोक दिया और कर्ण पर बाणो की बौछार जारी रखी। कर्ण को फिर हार खानी पडी और वह पीठ दिखाकर मैदान से हट गया।

इसपर दुर्योधन को असह्य शोक हुआ। उसने अपने सात भाइयो, चित्र, उपचित्र, चित्राक्ष, चारुचित्र, शरासन, चित्रायुध और चित्रवर्म को कर्ण की सहायता करने को भेजा। सातो भीम से जा भिडे और विलक्षण रण-कुशलता का परिचय दिया। फिर भी भीमसेन के आगे भला वे बालक कबतक टिक सकते थे? एक-एक करके सातो भाई सदा की नींद में सो गये।

यह देख कर्ण की आखो में आसू उमड आये और उसके क्रोध का ठिकाना न रहा। एक दूसरे रथ पर सवार होकर काल की भाति भीमसेन पर भयानक आक्रमण करने लगा। भीम और कर्ण दोनो वीर ऐसे दीख पडे जैसे दो कडकते व चमकते हुए बादल हो। भीमसेन का पराक्रम देखकर अर्जुन, श्रीकृष्ण और सात्यकि—तीनो पाडव-वीर बहुत प्रसन्न हुए। यहा तक कि भूरिश्रवा, कृप, अश्वत्थामा, शल्य, जयद्रथ आदि वीर भी भीमसेन की अद्‌भुत रण-कुशलता की प्रशसा करने लगे।

दुर्योधन को यह बिलकुल पसद न आया। वह अपने पक्ष के लोगो का भीमसेन की तारीफ करना सह न सका। कर्ण की हालत पर उसे बडा दु ख हुआ। उसने अपने सात और भाइयो को यह आज्ञा देकर भेजा कि जाकर भीमसेन को घेर लो और उसपर जोरो से वार करो। ऐसा न हो कि भीमसेन के बाण कर्ण के प्राण ले लें। दुर्योधन की आज्ञा मान कर शत्रुजय, शत्रुसह, चित्र, चित्रायुध, दृढ, चित्रसेन और विकर्ण—इन

सातो भाइयो ने जाकर भीमसेन को घेर लिया और एकसाथ बाण बरसा कर उसे खूब परेशान किया ।

पर भीमसेन ने उन सातो भाइयो को थोडी ही देर में मार गिराया ।

विकर्ण अपनी न्याय-प्रियता के कारण सबका प्यारा था । इस कारण जब विकर्ण भी मरकर गिर पडा, तो भीमसेन बहुत उदास हो गया । व्यथित होकर बोला—

"धर्म एव न्याय के ज्ञाता विकर्ण ! क्षत्रियोचित कर्त्तव्य का पालन करते हुए तुम भी इस लडाई में काम आ गये ! तुम मारे गये और वह भी मेरे हाथो । यह युद्ध भी कैसा कठोर है जिसमें तुम्हे और पितामह भीष्म को भी मारना हमारे लिए आवश्यक हो गया ।"

इस प्रकार एक-एक करके दुर्योधन के भाइयो को अपनी खातिर प्राणो की आहुति देते देखकर कर्ण के सताप की सीमा न रही । शोकातुर होकर वह रथ पर गिर पडा और दोनो आखें बद कर लीं । उसे बेहोशी-सी आ गई । पर थोडी देर बाद वह फिर सभला और जी कडा करके फिर से लडाई में जुट गया ।

भीम ने फिर बाण चलाकर कर्ण का धनुष काट डाला । जैसे ही कर्ण ने दूसरा धनुष लिया, वैसे ही भीम ने उसे भी काटकर गिरा दिया । इस प्रकार कर्ण के अठारह धनुष कट गये । इसपर कर्ण की सतर्कता और शाति जाती रही । भीम की ही भाति वह भी उत्तेजित हो उठा । दोनो एक-दूसरे पर भयानक वार करने लगे । लडते-लडते भीमसेन ने बडे जोरो से सिहनाद किया । दूरी पर दूसरी ओर द्रोणाचार्य से लडते हुए युधिष्ठिर ने जब भीम की यह गर्जना सुनी तो वह भी उत्साहित हो उठे और द्रोण पर जोरो का हमला कर दिया ।

उधर कर्ण और भीम के युद्ध में इस बार भीमसेन के रथ के घोडे मारे गये । सारथी भी कट कर गिर पडा । रथ टूट-फूट गया और धनुष भी कट गया । इसपर भीम ने कर्ण के रथ पर शक्ति-अस्त्र चलाया । उसे कर्ण ने बाणो से काट गिराया । भीम ने ढाल-तलवार ले ली और जान

झोक कर लडने लगा। पलक मारते-मारते कर्ण ने उसकी ढाल के भी टुकडे कर दिये। जब ढाल भी न रही, तो भीम ने तलवार घुमाकर जोर से कर्ण पर फेंक मारी। तलवार के वार से कर्ण का धनुष कट गया तो कर्ण ने दूसरा धनुष ले लिया और बडी चतुराई के साथ बाणो का प्रयोग किया, और भीम को खूब परेशान किया। इससे भीम बहुत ही पीडित हो गया। उसे असीम क्रोध हो आया। वह उछलकर कर्ण के रथ पर जा कूदा। कर्ण ने रथ के ध्वज-स्तभ की आड लेकर भीमसेन की झपट से अपने को बचा लिया। तो भीम नीचे जमीन पर कूद पडा और मरे हाथियो के ढेर में घुसकर अपना बचाव कर लिया। हाथियो की ढेर की ओट में-से भीमसेन विलक्षण युद्ध करने लगा। मैदान में जो रथ के पहिये, घोडे, हाथी आदि पडे थे, उन्हींको उठा-उठा कर कर्ण पर फेंकता गया जिससे उसे क्षण भर भी आराम न मिल पाया।

उस समय कर्ण चाहता, तो भीम को आसानी से मार सकता था। पर निहत्थे भीमसेन को उसने मारना नही चाहा। फिर माता कुती को दिया वचन उसे याद था कि वह अर्जुन के सिवा और किसीको युद्ध में न मारेगा।

शात रहते हुए भीम को चिढाते हुए वह बोला-"अरे मूर्ख पेटू! लडाई के बारे में तुम क्या जानो! वन के कद-मूल और धूल खाना तुम्हे खूब आता है। पर क्षत्रियोचित ढग से युद्ध करना तुम्हारा काम नही। इस लिए चलो, भागो यहा से।"

यह सुनकर भीम आग-बबूला हो उठा।

'देखो! कर्ण के हाथो भीमसेन की बुरी गत हो रही है।" श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा।

सुनते ही अर्जुन ने अपनी अग्निमय दृष्टि कर्ण की तरफ फेरी। क्रोध के कारण उसकी आखें ऐसी प्रज्वलित हो रही थी मानो कर्ण को जलाकर ही छोडेंगी। अर्जुन ने गाण्डीव तानकर बाण चढाये। अर्जुन के बाण सनसनाते हुए कर्ण पर बरस पडे और अत में लाचार होकर कर्ण को युद्ध-क्षेत्र से हट जाना पडा।

: ९० :

भूरिश्रवा का वध

"अर्जुन ! देखो, वह तुम्हारा शिष्य और मित्र सात्यकि, शत्रुओ की सेना तितर-बितर करता हुआ आ रहा है।" रथ चलाते-चलाते श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा।

"माधव ! युधिष्ठिर को छोडकर सात्यकि का यहा चला आना, मुझे ठीक नहीं जचता। द्रोण तो उधर मौके की ताक में ही है। युधिष्ठिर की रक्षा का भार हमने सात्यकि को सौंपा था। उनकी रक्षा करने के बजाय उसे इस तरह यहा नहीं चले आना चाहिए था। अभी तक जयद्रथ का भी वध नहीं हो पाया है। और उधर देखिये, भूरिश्रवा सात्यकि से भिड गया है। ऐसे समय धर्मराज ने सात्यकि को यहा भेजकर भारी भूल की।" अर्जुन ने चिन्तित भाव से कहा।

●

श्रीकृष्ण को जन्म देने के लिए श्रीदेवकी का अवतार हुआ था। देवकी के स्वयवर के अवसर पर सोमदत्त और शिनि इन दो राजाओ में भारी युद्ध हुआ। वसुदेव की तरफ से शिनि ने सोमदत्त से लडकर उसको परास्त कर दिया और देवकी को अपने रथ पर बिठा कर ले गये। उस दिन से लेकर शिनि और सोमदत्त में खानदानी बैर हो गया था। यहा तक कि दोनो खानदान वाले सदा एक-दूसरे के प्राणो के प्यासे रहते थे।

सात्यकि शिनि का पोता था और भूरिश्रवा सोमदत्त का पुत्र था। इस कारण, सात्यकि को देखते ही भूरिश्रवा ने उसे युद्ध के लिए ललकारा और बोला—

"शूरता के दर्प में भूले हुए सात्यकि, देखो, अभी तुम्हारी खबर लेता हू। चिरकाल से तुमसे युद्ध करने की चाह मेरे मन में समाई हुई थी। आज

तुम मेरे सामने पडे हो। अब मेरी चाह पूरी होगी। राजा दशरथ के पुत्र लक्ष्मण के हाथो इन्द्रजीत का जैसे वध हुआ, वैसे ही आज मेरे हाथो तुम्हारा वध होने वाला है। मृत्यु तुम्हारी बाट जोह रही है। जिन वीरो को तुमने मारा था, उनकी विधवाए आज प्रसन्न होगी। चलो तो फिर लड ही लें।"

यह सुन सात्यकि हंसा और बोला— "निरर्थक बातें बनाने से क्या फायदा ? जिसे लडने से डर हो उसे इस तरह क्या हौआ दिखाया जा सकता है। तुम व्यर्थ की बातें बनाना छोडो। युद्ध करके ही अपनी शूरता का परिचय दो। शरत्काल के मेघो की भाति केवल गर्जना शूरो को विचलित नहीं करती।"

इस कहा-सुनी के बाद युद्ध शुरू होगया और दोनो वीर एक-दूसरे पर शेरो की भाति टूट पडे।

●

लडते-लडते सात्यकि और भूरिश्रवा के घोडे मारे गये, धनुष कट गये और रथ भी बेकार हो गये। इसके बाद दोनो वीर जमीन पर खडे ढाल-तलवार लेकर एक-दूसरे पर भयानक वार करने लगे। दोनो ने अद्भुत पराक्रम का परिचय दिया। वे दोनो एक-दूसरे से बढकर थे। ईसलिए एक मुहूर्त तक दोनों में खड्ग युद्ध होता रहा। बाद में दोनो की ढालें कट गईं। इसपर दोनो ने ढाल-तलवार फेंक दी और कुश्ती लडने लगे।

दोनो वीर एक-दूसरे से छाती भिडाते और गिर पडते। एक-दूसरे को कसकर पकड लेते और जमीन पर लोटने लगते। फिर अचानक उछल कर उठ खडे होते और दोबारा एक-दूसरे को धक्का देकर मार गिराते। इसी तरह दोनो जन्म के बैरी बहुत देर तक समान युद्ध करते रहे।

उधर अर्जुन सिन्धुराज जयद्रथ के साथ युद्ध कर रहा था और उसका वध करने के मौके की तलाश में था।

"अर्जुन, सात्यकि बहुत थका-सा मालूम होता है। जान पड़ता है भूरिश्रवा सात्यकि को खतम करके छोडेगा।" श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा। पर अर्जुन तो जयद्रथ से ही लड़ने में दत्त-चित्त था।

श्रीकृष्ण ने अर्जुन से दुबारा आग्रह करके कहा, "देखो भूरिश्रवा ने जब सात्यकि को युद्ध के लिए ललकारा तभी वह कौरव-सेना से लडते रहने के कारण थका हुआ था। इसलिए यह बराबरी का युद्ध नहीं है। पहले तुम्हे सात्यकि की सहायता के लिए जाना चाहिए। नही तो सात्यकि भूरिश्रवा के हाथो मारा जाता दीखता है।"

श्रीकृष्ण इस प्रकार कह ही रहे थे कि इतने में भूरिश्रवा ने सात्यकि को ऊपर उठाया और जमीन पर जोर से दे पटका। कौरव-सेना जोरो से कोलाहल कर उठी—"सात्यकि मारा गया।"

"अर्जुन, देखो! वृष्णि-कुल का सबसे प्रतापी वीर सात्यकि जमीन पर असहाय-सा पडा हुआ है। जो तुम्हारे प्राण बचाने व तुम्हारी सहायता करने आया था, उसीकी तुम्हारी आखो के सामने हत्या हो रही है। तुम्हारे देखते ही देखते, तुम्हारा मित्र अपने प्राण गवाने वाला है।" श्रीकृष्ण ने अर्जुन को एक बार फिर आग्रह कर के कहा।

अर्जुन ने देखा कि मैदान पर मृत-से पडे सात्यकि को भूरिश्रवा उसी तरह घसीट रहा है जैसे सिह हाथी को घसीट रहा हो। यह देख अर्जुन भारी असमजस में पड गया। उसे कुछ सूझ न पडा कि क्या किया जाय।

वह श्रीकृष्ण से बोला— "कृष्ण, भूरिश्रवा मुझसे लड नहीं रहा है। दूसरे के साथ लडनेवाले पर मैं कैसे बाण चलाऊ? मेरा मन नहीं मानता। परन्तु साथ ही जब मेरी खातिर सात्यकि प्राण गवा रहा हो तब अपनी ही धुन में लडते रहना भी मुझसे नहीं होता।"

अर्जुन इस प्रकार श्रीकृष्ण से बातें कर ही रहा था कि इतने में जयद्रथ के चलाये बाणो के समूह आकाश में छा गये। इसपर अर्जुन ने बातें करते ही करते जयद्रथ पर बाणो की बौछार जारी रक्खी। साथ-ही-साथ सकट में पडे हुए सात्यकि की तरफ भी बार-बार देखता और खिन्न हो उठता था।

"पार्थ! कई वीरो से युद्ध करने के कारण थका हुआ सात्यकि अब निहत्था और निःसहाय होकर भूरिश्रवा के हाथो में बुरी तरह फसा हुआ है। तुमको इस प्रकार तटस्थ नहीं रहना चाहिए।" श्रीकृष्ण ने कहा।

ज्योही अर्जुन ने सात्यकि की ओर मुडकर देखा तो पाया कि सात्यकि जमीन पर पडा था और भूरिश्रवा उसके शरीर को एक पाव से दबाकर और दाहिने हाथ में तलवार लेकर उसपर वार करने को उद्यत ही था। यह देख अर्जुन से न रहा गया। उसने उसी क्षण भूरिश्रवा पर तानकर बाण चलाया। बाण लगते ही भूरिश्रवा का दाहिना हाथ कटकर तलवार समेत दूर जमीन में जा गिरा।

हाथ कटे हुए भूरिश्रवा ने पीछे मुडकर देखा तो क्रुद्ध होकर बोला—

"अरे कुन्ती पुत्र! मुझे तुमसे इस बात की आशा नहीं थी कि ऐसा अवीरोचित काम करोगे। जब मै दूसरे से लड रहा था और तुम्हारी तरफ देख भी नही रहा था तब तुमने पीछे से मुझपर बाण चलाकर हमला क्यो किया? तुम्हारे इस काम से इस बात का सबूत मिलता है कि आदमी पर सगति का असर पडे बिना नही रहता। अर्जुन! जब भाई युधिष्ठिर तुम से पूछेंगे कि तुमने उसका हाथ काटा तो भूरिश्रवा क्या कर रहा था तब क्या उत्तर दोगे? अरे, ऐसा अधार्मिक और अन्यायपूर्ण युद्ध करना तुम्हे किसने सिखाया? पिता इन्द्र ने या आचार्य द्रोण ने या कृप ने? वह कौन-सा धर्म था जिसके अनुसार तुमने एक ऐसे व्यक्ति पर बाण चलाया जो न तो तुमसे लड रहा था, न तुम्हारी तरफ देख ही रहा था? नीच लोगो के योग्य इस निकृष्ट कार्य को करके तुमने अपने सुयश पर धब्बा लगा लिया है। मै जानता हू कि तुम स्वय अपनी इच्छा से ऐसा काम करने पर उतारू नहीं हो सकते। जरूर कृष्ण ने ही इसके लिए तुम्हे उकसाया होगा। पर तुम तो क्षत्रिय हो! वीर हो! यह कृत्य तो तुम्हारे स्वभाव के विरुद्ध था! दूसरे से लडने वाले पर हथियार चलाना क्षत्रियोचित काम नहीं है। इसलिए नीच कृष्ण की सलाह से तुमने ऐसा अधर्म क्यो किया?"

अपना हाथ कट जाने पर जब भूरिश्रवा ने इस प्रकार श्रीकृष्ण की निंदा की तो अर्जुन बोला—

"वृद्ध भूरिश्रवा! कहीं जवानी के साथ-साथ बद्धि भी तो नहीं

खो बैठे हो ? युद्ध-धर्म का जब तुम्हे पूरा ज्ञान है तो फिर मुझे और श्रीकृष्ण को क्यो धिक्कार रहे हो ? सात्यकि मेरा मित्र था। मेरे लिए अपने प्राणो को हथेली पर रखकर यहा लड रहा था। तुमने मेरे दाहिने हाथ के समान प्रिय मित्र सात्यकि का वध करने की कोशिश की और वह भी उस समय जबकि वह घायल और अचेत-सा होकर जमीन पर पडा हुआ था और कोई प्रतिरोध नहीं कर सकता था। यह मै खडे-खडे कैसे देख सकता था ? यदि मै उसकी सहायता न करता, तो मुझे नरक ही प्राप्त होता। तुम कहते हो कि श्रीकृष्ण की सगति के कारण मै भले से बुरा बन गया। तो ससार में ऐसा कोई है जो इस तरह बुरा बनना नहीं चाहता हो ? मतिभ्रम के कारण ही तुम ऐसी बकवास कर रहे हो। अनेक महारथियो के साथ अकेले लडकर जब सात्यकि बिलकुल थका हुआ था, तब तुमने लडकर उसे परास्त कर दिया यह तो ठीक था। पर जब वह परास्त हो कर जमीन पर नि शस्त्र पडा हुआ था तब उस अवस्था में तुमने उसे तलवार से मारना चाहा, तो क्या यह धर्म था ? जिसके हथियार टूट चुके थे, कवच नष्ट हो चुका था और जो इतना थका हुआ था कि जिसके लिए खडा रहना भी दूभर था, ऐसे मेरे कोमल बालक अभिमन्यु का वध होने पर तुम सभी लोगो ने विजयोत्सव मनाया था। तुम्हीं बताओ कि ऐसा करना किस धर्म के अनुसार था ?"

अर्जुन के इस प्रकार मुहतोड जवाब देने पर भूरिश्रवा चुपके से सात्यकि को छोडकर हट गया और अपने बाए हाथ से युद्ध के मैदान पर शरो को फैला कर और आसन जमाकर बैठ गया। उसने परमात्मा का ध्यान करके वहीं प्रायोपवेशन—आमरण अनशन, शुरू कर दिया। यह देखकर सारी कौरव-सेना भूरिश्रवा की प्रशसा करने लगी और अर्जुन और कृष्ण की बडी निंदा करने लगी।

यह सब देखकर अर्जुन बोला— "वीरो ! तुम सब मेरी प्रतिज्ञा जानते हो। मेरे बाणो की पहुच तक अपने किसी भी मित्र या साथी का शत्रु के हाथो वध न होने देने का मैंने प्रण कर रखा है। इसलिए सात्यकि की

रक्षा करना मेरा धर्म था ! किसीका धर्म जाने बिना उसकी निंदा करना उचित नहीं ।"

उसके बाद अर्जुन भूरिश्रवा से बोला— "पुरुषश्रेष्ठ ! आश्रितो का भय दूर करके उन्हे शरण देनेवाले वीर ! तुमने अपने ही कुकर्म का यह फल पाया है । इसके लिए मेरी निन्दा करना व्यर्थ है । निन्दा तो हम सबको क्षत्रिय-धर्म की करनी चाहिए, जो इन सभी अनर्थों की जड है ।"

अर्जुन की ये बातें सुनकर भूरिश्रवा ने भी शाति से सिर नवाया और जमीन पर टेक दिया ।

इन बातो में कोई दो घडी का समय बीत गया था । सात्यकि की भी थकान मिट चुकी थी और वह तरोताजा हो गया था । भूरिश्रवा के हाथो हुए अपमान के कारण क्रोध से वह अन्धा होगया था । उसने आव देखा न ताव, तलवार लेकर भूरिश्रवा की ओर, जो आखें बद किये और आसन जमाए ध्यान में लीन बैठा था, झपटा । सात्यकि को झपटता देखकर सारी कौरव सेना में हाहाकार मच गया । अर्जुन और श्रीकृष्ण चिल्ला-चिल्लाकर कह रहे थे कि 'ऐसा न करो, ऐसा न करो !' सब लोगो के मना करते हुए भी सात्यकि ने भूरिश्रवा का सिर धड से अलग कर दिया । वृद्ध भूरिश्रवा स्वर्ग सिधार गया ।

सिद्धो और देवताओ ने भूरिश्रवा का यश गाया । सात्यकि के कार्य को सबने निकृष्ट कहकर धिक्कारा । सबके मनमें भूरिश्रवा की मृत्यु के के कारण उदासी छा गई । सात्यकि के निन्द्य कर्म पर सबको असीम घृणा हुई ।

सात्यकि ने कहा— "भूरिश्रवा मेरा खानदानी शत्रु था और जब मैं युद्ध के मैदान में अधमरा-सा पडा था, तब उसने मेरी हत्या करने की कोशिश की थी । इसलिए मैंने उसका जो वध किया वह उचित ही था ।" पर सात्यकि का यह समाधान किसीको ठीक नहीं जचा । लडाई के मैदान में जिस ढग से भूरिश्रवा का वध हुआ, उसे किसीने भी उचित नहीं माना ।

भूरिश्रवा के वध की कहानी, महाभारत की उन कहानियो में से है जिनमें दुविधात्मक समस्याए हल होती है। जहा ईर्ष्या-द्वेष का बोल-बाला हो वहा धर्म और अनुशासन नाममात्र के लिए भी नहीं रहते।

: ६१ :

जयद्रथ का वध

"कर्ण! आज हमारा भाग्य-निर्णय होने वाला है।" दुर्योधन ने कहा और बोला— "आज वह अवसर हाथ आया है, जिससे मेरे भाग्य के चमकने की सभावना है। आज यदि अर्जुन की प्रतिज्ञा पूरी न हो पाई तो निश्चय ही वह लज्जा के मारे आत्मघात कर लेगा। अर्जुन के मर जाने पर पाडवो का नाश भी निश्चित है। और फिर तो यह सारा राज्य हमारे ही अधीन हो जायगा। फिर कोई हमारे सामने सिर नहीं उठा सकेगा। मूर्खता और भ्रम के वश होकर अर्जुन ने यह प्रतिज्ञा करके अपने ही सर्वनाश का आयोजन कर लिया है। यह मेरे भाग्योदय की ही सूचना है! ऐसे अवसर को हाथ से न जाने देना चाहिए। हमें कोई-न-कोई प्रयत्न करके अर्जुन की प्रतिज्ञा झूठी कर देनी चाहिए। आज तुम्हे अपनी रण-कुशलता का पूरा-पूरा परिचय देना होगा। आज तुम्हारी परीक्षा का दिन है। अब सूरज अस्त हुआ ही चाहता है। थोडी ही देर रह गई है। सूर्यास्त तक अर्जुन जयद्रथ के पास पहुच नहीं सकेगा। कृपाचार्य, अश्वत्थामा, शल्य, तुम और मै हम सभी साथ-साथ और हर तरह से सतर्क रहकर जयद्रथ की रक्षा करते रहे तो अर्जुन की प्रतिज्ञा पूरी होने ही नहीं पावेगी।"

यह सुन कर्ण बोला— "राजन्! भीमसेन के साथ युद्ध करते-करते मै बहुत थक गया हू। मेरा सारा शरीर घावो से भर गया है। शरीर की स्फूर्ति कम हो गई है। फिर भी तुम्हारे उद्देश्य की पूर्ति में यथासभव पूरा हाथ बटाऊगा। मै तुम्हारी ही खातिर जी रहा हू।"

युद्ध-स्थली में जिस समय कर्ण और दुर्योधन में ये बातें हो रही थीं, उसी समय दूसरी तरफ अर्जुन कौरव-सेना में प्रलय-सा मचा रहा था। अर्जुन की इच्छा यह थी कि किसी तरह कौरव-सेना को तोड-फोडकर अन्दर प्रवेश करके सूर्यास्त होने से पहले जयद्रथ के निकट पहुचकर उसका काम-तमाम किया जाय।

●

इतने में एकाएक श्रीकृष्ण ने अपना पाचजन्य शख जोरो से बजाया। सुनते ही उनका सारथी दारुक एक रथ लेकर आ पहुचा। सात्यकि लपककर उसपर सवार हुआ। वह कर्ण पर टूट पडा और दोनो में बडी कुशलता और तत्परता से युद्ध होने लगा।

दारुक ने रथ चलाने में बडा कौशल दिखाया और सात्यकि ने धनुष चलाने में। दोनो का रण-कौशल देखने को देवता आकाश में इकट्ठे हो गये। कर्ण के चारो घोडे और सारथी मारे गये। उसके रथ की ध्वजा कटकर गिर पडी। पल भर में रथ भी चूर हो गया। इसपर कर्ण दुर्योधन के रथ पर चढकर युद्ध करने लगा।

इस युद्ध का वर्णन धृतराष्ट्र को सुनाते हुए सजय ने कहा—"इस ससार में श्रीकृष्ण, अर्जुन और सात्यकि के समान धनुर्धारी और कोई नहीं है।"

●

उधर कौरव-सेना को तितर-बितर करता हुआ अर्जुन जयद्रथ के पास पहुच ही गया। उस समय के अर्जुन के रौद्ररूप का वर्णन नहीं हो सकता था। वह अपने पुत्र अभिमन्यु की हत्या और पिछली सारी मुसीबतो को याद करके क्रोध से आग की भाति प्रज्वलित हो उठा। उस समय वह दोनो हाथो से गाण्डीव धनुष का प्रयोग कर रहा था। कौरव-सेना इससे भयाकुल हो उठी। उस समय वह कौरव-सेना को महाकाल के समान भयानक प्रतीत होने लगा।

जयद्रथ की रक्षा करने वाले सभी महारथियो को हराकर अर्जुन एकदम जयद्रथ के पास पहुच गया और उसपर टूट पड़ा। पर जयद्रथ

भी कोई ऐसा-वैसा नही था। वह विख्यात वीर था। डटकर लडने लगा। उसे हराना अर्जुन के लिए भी सुगम न था। बडी देर तक युद्ध होता रहा। दोनो पक्षो के वीर सूर्य की ओर बार-बार देखने लगे। धीरे-धीरे पश्चिम में लालिमा छाने लगी और सूर्यास्त का समय भी नजदीक आने लगा, परन्तु जयद्रथ और अर्जुन का युद्ध समाप्त होने के कोई लक्षण नज़र नहीं आते थे।

यह देख दुर्योधन के मन में आनन्द की लहरें उठने लगीं। उसने सोचा कि अब जरा-सी ही देर और है। जयद्रथ तो बच ही गया और अर्जुन की प्रतिज्ञा विफल हुई ही सी है।

दुर्योधन यह सोचकर खुश हो ही रहा था कि इतने में अन्धेरा-सा छा गया। सूर्यास्त हो गया! पाडवो की सेना में उदासी छा गई। सब आपस में काना-फूसी करने लगे, "जयद्रथ मारा नहीं गया! सूर्यास्त हो गया। अर्जुन की प्रतिज्ञा झूठी हो गई! अब क्या होगा?"

उधर कौरव-सेना में खुशी की लहर फैल गई और जहा-तहा सैनिक शोर मचाने लगे।

जयद्रथ ने भी पश्चिम की ओर देखते हुए मन में कहा—"चलो, प्राण बचे!"

इसी बीच श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—"अर्जुन! जयद्रथ सूर्य की तरफ देखने में लगा है और मन में समझ रहा है कि सूर्य डूब गया। परन्तु अभी तो सूर्य डूबा नहीं है। यह अन्धकार मेरा ही फैलाया हुआ है तुम्हे अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने का यही अवसर है।"

श्रीकृष्ण के यह वचन अर्जुन के कान में पडे ही थे कि अर्जुन के गाडीव से एक तेज बाण छूटा और जयद्रथ के सिर को ऐसे उडा ले गया जैसे चील मुर्गी के बच्चे को उडा ले जाती है। पर श्रीकृष्ण ने समय पर एक और बात अर्जुन को याद दिला दी थी—

"अर्जुन! जयद्रथ के सिर को जमीन पर न गिरने देना। बाण इस तरह मारना कि उसके सहारे ही वह आकाश-मार्ग से जाकर उसके पिता वृद्धक्षत्र की गोद में जा गिरे। जयद्रथ को मिले वरदान की बात

तुमको याद ही होगी कि जिसके हाथो इसका सिर पृथ्वी पर गिरेगा उसके सिर के सौ टुकडे हो जायेंगे ।"

अर्जुन ने ऐसा ही किया । जयद्रथ के पिता राजा वृद्धक्षत्र अपने आश्रम में सध्या कर रहे थे । इतने में काले-काले केश और सोने के कुडलो से युक्त जयद्रथ का सिर ध्यान-मग्न राजा की गोद में जा गिरा । ध्यान समाप्त होने पर जब वृद्धक्षत्र की आखें खुलीं और वह उठे तो जयद्रथ का वह सिर उनकी गोद से जमीन पर गिर पडा और उसी क्षण बूढे वृद्धक्षत्र के सिर के भी सौ टुकडे हो गये । जयद्रथ और उसके वृद्ध पिता दोनो ही एकसाथ वीरोचित स्वर्ग को सिधारे ।

●

श्रीकृष्ण, अर्जुन, भीम और सात्यकि ने अपने-अपने शख बजाकर विजय-घोष किया । पाडव-सेना के दूसरे वीरो ने भी शख बजाये । यह सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर ने जान लिया कि अर्जुन के हाथो जयद्रथ का वध हो गया और उन सबके आनद की सीमा न रही ।

इसके बाद तो युधिष्ठिर दूने उत्साह के साथ, सारी पाडव-सेना को लेकर आचार्य द्रोण पर टूट पडे । चौदहवें दिन का युद्ध केवल सूर्यास्त तक ही न हुआ, बल्कि रात को भी होता रहा । ज्यो-ज्यो युद्ध का जोश बढता गया, त्यो-त्यो विधि-निषेध की सीमाए एक-एक करके टूटती गईं । यहा तक कि अन्त में अधर्म का बोलबाला हो गया ।

: ६२ :

आचार्य द्रोण का अन्त

महाभारत-कथा जाननेवाले सभी इस बात से परिचित होगे कि घटोत्कच भीमसेन का हिडिबा राक्षसी से उत्पन्न पुत्र था ।

महाभारत के कथा-पात्रो में दो ही बालक ऐसे है जो वीरता, धीरज,

साहस, शक्ति, बल, शील, यश आदि सभी गुणो से युक्त और उज्ज्वल चरित्र के थे। और वे थे अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु और भीमसेन का पुत्र घटोत्कच। दोनो ने ही पाण्डवो के पक्ष में अद्भुत वीरता के साथ युद्ध करके प्राणो का उत्सर्ग किया था।

महाभारत का आख्यान एक अद्भुत रचना है जिसमें मानव-जीवन के दु:ख-दर्द का सार आगया है। करुण-रस से पूर्ण यह धार्मिक ग्रन्थ जीवन के दु:खो पर प्रकाश डालकर पाठको को अजर-अमर सत्यरूप परमात्मा की ओर बढने को प्ररित करता है।

साधारण कहानियो व उपन्यासो का ढग कुछ और ही होता है। वे या तो दु:खात होते है या सुखात। सुखात कथाओ का नायक रोमाचकारी घटनाओ, आफतो और मुसीबतो को पार करता हुआ, अन्त में अपने उद्देश्य में सफल हो जाता है और अपनी मनचाही प्रेमिका से ब्याह कर लेता है। पाठक का आकुलित मन इससे प्रसन्न हो उठता है। दु:खात कथाओ का ढग ठीक इससे उलटा होता है जिसमें प्रारम्भ में तो घटनाए शुभ से शुभतर होती जाती है, परन्तु अन्त में भारी दुर्घटना के साथ यवनिका-पतन हो जाता है।

परन्तु रामायण और महाभारत जैसी धार्मिक व प्राचीन रचनाओ की प्रणाली कुछ ऐसी होती है कि जिससे पाठक का मन द्रवित हो जाता है। कभी वह आनद की तरगो में बहता है तो कभी दु:ख की आधी उसे झझोड देती है। मन की भावनाए पल-पल बदलती जाती है और परिणाम में पाठक परमात्मा की शरण लेकर सुख-दु:ख से ब्राह्मी-स्थिति को पहुचने पर उकसाया जाता है।

●

दोनो तरफ ईर्ष्या-द्वेष एव प्रतिहिंसा की जो आग भडक रही थी, वह इतनी प्रबल हो उठी कि केवल दिन के समय लडने से ही उसको सतुष्ट नहीं किया जा सका। चौदहवें दिन, सूर्य के डूबने के बाद भी युद्ध जारी रखने के लिए मशाल जलाए गये। रात का समय था। घटोत्कच और उसके

साथियों ने भयानक माया-युद्ध शुरू कर दिया। रात के समय की उस लडाई का दृश्य अद्भुत था। वह एक ऐसी घटना थी जैसी भारत देश में पहले कभी न हुई थी। हजारो मशालें जल रही थीं और दोनो ओर के वीर अपनी-अपनी सेना को युद्ध के लिए उत्साहित कर रहे थे।

कर्ण और घटोत्कच में उस रात को बडा भयानक युद्ध हुआ। घटोत्कच और उसकी पैशाची सेना ने बाणो की वह बौछार की कि जिससे दुर्योधन की सेना के झुण्ड-के-झुण्ड वीर मारे जाने लगे। प्रलय-सा मच गया। यह देखकर दुर्योधन का दिल कापने लगा।

कौरव-वीरो ने कर्ण से अनुरोध किया कि किसी-न-किसी तरह आज घटोत्कच का काम तमाम करना चाहिए। उन्होने कहा, "कर्ण! आप इसी घडी इस राक्षस का वध कर दो! वरना हमारी सारी सेना तबाह हो जायगी। इसको शीघ्र ही मृत्युलोक पहुचाओ।"

घटोत्कच ने कर्ण को भी इतनी पीडा पहुचाई थी कि वह भी क्रोध में भरा हुआ था। कौरवो का अनुरोध सुनकर उसकी उत्तेजना और भी प्रबल हो उठी। वह आपे में न रहा और इन्द्रदेव की दी हुई शक्ति का, जिसे उसने अर्जुन का वध करने के ही उद्देश्य से यत्न-पूर्वक सुरक्षित रक्खा था—घटोत्कच पर प्रयोग कर दिया।

इससे अर्जुन का सकट तो टल गया पर भीमसेन का प्रिय एव वीर पुत्र घटोत्कच मारा गया और उसकी लाश आकाश से जमीन पर धडाम से आ गिरी। पाडवो के दुख की सीमा न रही।

इतने पर भी युद्ध बद नहीं हुआ। द्रोणाचार्य के धनुष से बाणो की ऐसी तीव्र बौछार हो रही थी जिससे पाडव-सेना के असख्य वीर गाजर-मूली की तरह कट-कटकर गिरते जाते थे। रहे-सहे पाडव-सैनिक भी भयभीत हो उठे।

यह देख श्रीकृष्ण अर्जुन से बोले— "अर्जुन! आज युद्ध में द्रोण को परास्त करना किसीकी शक्ति में नहीं है। जबतक इनके हाथ में शस्त्र है तबतक धार्मिक युद्ध लड़कर उनपर विजय नहीं पाई जा सकती। धर्म

के विरुद्ध चलकर ही—कुछ कुचक्र रचकर ही—इनको परास्त करना होगा और आज अगर यह परास्त न हुए तो हमारा सर्वनाश कर देंगे। इसलिए किसी प्रकार अगर द्रोण यह सुन लें कि अश्वत्थामा मारा गया तो शोक में आकर हथियार फेंक देंगे— युद्ध न करेंगे। इसलिए किसीको आचार्य के पास जाकर यह खबर पहुचानी चाहिए कि अश्वत्थामा मारा गया।

यह सुनकर अर्जुन सन्न रह गया। इस प्रकार असत्य मार्ग का अनुकरण करना उसे ठीक न जचा। उसने ऐसा करने से साफ इन्कार कर दिया। पाण्डव-पक्ष के दूसरे वीरो ने भी इसे नापसन्द किया। किसीका भी मन नही मानता था कि ऐसा अधर्म कार्य करे। लेकिन युधिष्ठिर ने काफी सोच-विचार के बाद कहा कि यह पाप मै अपने ही ऊपर लेता हू।

अमृत की प्राप्ति के लिए जब समुद्र-मन्थन हुआ तब देवताओ का सकट दूर करने के लिए भगवान् महादेव ने स्वय विष-पान किया था। आश्रित मित्र की रक्षा के लिए भगवान् रामचन्द्र ने भी वानर-राज बालि का अन्यायपूर्वक वध करके पाप का भार अपने ऊपर लिया था। ठीक इसी तरह युधिष्ठिर ने भी अपने सुयश पर पाप-कालिमा लगवाने का इरादा कर लिया कि जिससे औरो का सकट दूर हो सके।

इस व्यवस्था के अनुसार भीम ने गदा-प्रहार से अश्वत्थामा नाम के एक भारी लडाके हाथी को मार डाला। फिर द्रोणाचार्य की सेना के पास जाकर जोर से चिल्लाने लगा—"मैंने अश्वत्थामा को मार डाला है।" पर सपने में भी नीच काम करने का विचार न करने वाले भीमसेन को भी यह झूठी बात कहते हुए बडी लज्जा आई।

उधर युद्ध करते हुए द्रोणाचार्य ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करना ही चाहते थे कि इतने में भीमसेन की आवाज उनके कानो में पडी। जब उन्होने सुना कि उनका पुत्र अश्वत्थामा मारा गया तो वह विचलित हो गए। साथ ही उन्हे इस बात की सच्चाई पर शक भी हुआ। उन्होने युधिष्ठिर से पूछा— "बेटा युधिष्ठिर! क्या, यह बात सच है कि मेरा प्रिय पुत्र अश्वत्थामा मारा गया?"

आचार्य द्रोण को विश्वास था कि युधिष्ठिर तीनो लोको के आधिपत्य के लिए भी झूठ नही बोलेंगे। इसी कारण उन्होने युधिष्ठिर से ही यह प्रश्न किया था।

यह देखकर श्रीकृष्ण चिन्तित हो उठे। उन्हे भय हुआ कि कहीं युधिष्ठिर अपनी धर्म-परायणता के कारण पाडवो के नाश का कारण न बन जाय।"

युधिष्ठिर असत्य बोलते हुए डरे तो पर विजय प्राप्त करने की लालसा भी उनको विकल कर रही थी। वे बडी दुविधा में पड गये। फिर भी किसी तरह जी कडा करके जोर से बोले— "हा, अश्वत्थामा मारा गया।" परन्तु यह कहते-कहते फिर उनको धर्म का भय हो आया। इस कारण अन्त में धीमे स्वर में यह भी कह दिया— "मनुष्य नहीं, हाथी।"

●

उस दिन की इन घटनाओ का हाल सुनाते हुए सजय ने कहा—"राजन्! इस प्रकार युधिष्ठिर के असत्य भाषण के कारण बडा अधर्म हो गया।"

पौराणिक कहते है कि जैसे ही युधिष्ठिर के मुह से यह असत्य बात निकली त्यो ही उनका रथ, जो पृथ्वी से चार अगुल ऊपर-ही-ऊपर चलता रहता था, एकदम जमीन से लगकर चलने लगा।

तात्पर्य यह कि ससार झूठ का आदी हो चुका था, इस कारण युधिष्ठिर के सत्य-भाषण का उससे कोई सबध न था। पर अब, जबकि जीत पाने की इच्छा से उन्होने भी असत्य-भाषण किया तो उनका रथ भी पापी धरातल से जा टिका।

●

युधिष्ठिर के मुह से यह सुनते ही कि अश्वत्थामा मारा गया, द्रोण के मन में विराग छा गया। जीवित रहने की इच्छा ही उनके मन में न रही। जब वे इस मन स्थिति में थे तभी भीमसेन कठोर वाक्बाणो से उनको और सताने लगा। वह बोला—

"ब्राह्मण लोगों के कर्तव्यभ्रष्ट हो जाने के कारण और क्षत्रियोचित

वृत्ति धारण कर लेने के कारण ही क्षत्रियो पर यह विपदा आ गई । यदि ब्राह्मण लोगो ने अधर्म का मार्ग न अपनाया होता, तो कितने ही क्षत्रिय-राजाओ के प्राण बच गये होते । आप तो इस तथ्य से परिचित है ही कि अहिंसा ही सबसे उत्कृष्ट धर्म है और यह भी जानते है कि ब्राह्मण ही उस महान् धर्म के आधार-स्तभ माने जाते है । फिर स्वय आपका जन्म भी ब्राह्मण-कुल में ही हुआ है । तब आपने यह हिंसा-वृत्ति क्यो अपनाई और स्वार्थ-वश होकर पाप करने पर क्यो तुले हुए है ।"

एक तो यो ही पुत्र के विछोह की खबर सुनकर द्रोण के मन से प्राणो का मोह टूट चुका था और वैराग्य छा रहा था । ऊपर से भीमसेन के मुह से ये कडुवी बातें सुनकर उन्हे और भी सख्त पीडा पहुची । उन्होने तुरन्त सारे अस्त्र-शस्त्र फेंक दिये और रथ पर ही आसन जमाकर, ध्यानमग्न होकर बैठ गये ।

इतने में द्रुपद का पुत्र धृष्टद्युम्न हाथ में तलवार लेकर द्रोण पर झपटा । यह देखकर चारो ओर हाहाकार मच गया और इसी हाहाकार के बीच धृष्टद्युम्न ने ध्यान-मग्न आचार्य की गर्दन पर खडग से जोर का वार किया। आचार्य द्रोण का सिर तत्काल ही धड से अलग होकर गिर पडा । भारद्वाज-पुत्र द्रोण की आत्मा दिव्य ज्योति से जगमगाती हुई स्वर्ग सिधार गई ।

: ९२ :

कर्ण भी मारा गया

द्रोण के मारे जाने पर कौरव-पक्ष के राजाओ ने कर्ण को सेनापति मनोनीत किया । मद्रराज कर्ण के सारथी बने । शल्य के चलाये दैवी रथ पर बैठा हुआ कर्ण बहुत ही शोभित हो रहा था । उसके शरीर की काति बहुत ही उज्ज्वल हो रही थी । दूसरे दिन कर्ण के सेनापतित्व में फिर से घमासान युद्ध जारी हो गया ।

ज्योतिषियो से पूछकर पाण्डवो ने भयानक युद्ध के लिए सबसे उपयुक्त समय का पता कर लिया। नियत समय पर अर्जुन ने कर्ण पर भीषण आक्रमण कर दिया। अर्जुन की रक्षा करता हुआ भीम, अपने रथ पर उसके पीछे-पीछे चला और दोनों एकसाथ कर्ण पर टूट पडे।

जब दु शासन ने यह देखा, तो उसने भीम पर बाणो की वर्षा कर दी। उससे भीम क्रुद्ध हो उठा और बोला—"अरे दु शासन ! बस अब तू अपने को गया ही समझ। जो अत्याचार तूने हमपर किये थे उनका बदला अभी सूद-ब्याज समेत चुकाता हूँ। द्रौपदी को जिस दिन तेरे पापी हाथो ने छुआ था, तभी मैंने जो शपथ ली थी, वह अब पूरी हो जायगी।" यह कहते-कहते भीम दु शासन पर झपटा।

जिस दुरात्मा ने द्रौपदी का अपमान किया था, उसको भीम ने एक ही धक्के में जमीन पर गिरा दिया और उसका एक-एक अग तोड-मरोड डाला। "धूर्त, नीच कही का ! तेरे इसी हाथ ने तो द्रौपदी के केश पकड-कर खींचने का दु साहस किया था। पहले उसे ही तेरे शरीर से तोड फेंकता हूँ। देखू तो ! अब कौन तेरी सहायता के लिए आगे बढता है ! कौन है तेरा साथ देने वाला ! किसकी इतनी सामर्थ्य है जो तुझे मेरे हाथो से आज बचा सके ! आवे तो वह सामने ! जरा देखू तो उसे।" और दुर्योधन पर इस भाति तीव्र कटाक्ष करते हुए भीमसेन ने पागलो के-से जोश में दु शासन का हाथ एक झटके में शरीर से अलग करके फेंक दिया और फिर दु शासन के लहू को ऐसे चूस-चूसकर पीने लगा, जैसे जगली जानवर पीते है। उस समय भीमसेन का विकृत रूप भयानक हिंस्र जन्तु का सा प्रतीत हो रहा था।

गरम-गरम खून पीने के बाद भीमसेन, महाकाल के-से भयानक रूप में युद्ध के मैदान पर नाचने-कूदने लगा और चिल्लाने लगा—"गया एक पापी इस ससार से ! मेरी एक प्रतिज्ञा पूरी हुई। अब दुर्योधन की बारी है। उसका काम तमाम करना बाकी है। वह बलिदान का बकरा किधर है ? कोई कह दे उससे कि वह भी तैयार हो जाय।"

भीमसेन का वह भयानक रूप, उसका वह चिल्लाना और वह उन्माद नृत्य देखकर लोगो के दिल दहल उठे। सब काप गये। यहा तक कि एक बार कर्ण का भी शरीर कापने लगा।

इसपर शल्य ने कर्ण को दिलासा देते हुए कहा—"कर्ण! तुम तो वीर हो, इस तरह हताश होना तुम्हें शोभा नहीं देता। इस समय तो दुर्योधन को, जो भग्न-हृदय-सा हो गया है, सान्त्वना देनी चाहिए। तुम्हे तो चाहिए था कि उसे धीरज देते। उल्टे तुम्हीं धीरज गँवा बैठे—हिम्मत हार जाओ, यह तो ठीक नहीं। दु शासन के मारे जाने पर अब सबकी आखें तुम्हीं को देख रही है तुम्हीं सबका आसरा बने हुए हो। युद्ध का सारा दायित्व अब तुम्हींको वहन करना होगा। क्षत्रियोचित धर्म से काम लो। अर्जुन के साथ युद्ध करके या तो विजय का यश प्राप्त करो या वीरोचित स्वर्ग।"

सारथी बने हुए शल्य की ये बाते सुनकर कर्ण गुस्से में आ गया। उसकी आखें लाल हो गईं और वह असीम क्रोध के साथ अर्जुन पर टूट पडा।

●

"दुर्योधन, इस युद्ध को बन्द कर दो! आपसी बैर भूल जाओ! पाडवो से सन्धि कर लो!" द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने कहा।

पर दुर्योधन झल्लाकर बोला—"पापी भीमसेन ने जगली जानवर की तरह भैया दु शासन का खून चूसते हुए जो कुछ कहा, क्या वह तुमने नहीं सुना? तुम तो उसके पास ही खडे थे! तो फिर सन्धि कर लेने की बेकार बाते क्यो करने लगे हो! हमारे लिए अब सन्धि-चर्चा बेकार है।"

अश्वत्थामा से यह कहकर दुर्योधन ने सेना की व्यूह-रचना को फिर से सुधारकर पाडवो पर हमला करने की आज्ञा दे दी।

●

अर्जुन और कर्ण के बीच घोर सग्राम छिडा हुआ था। कर्ण ने अर्जुन पर एक ऐसा बाण चलाया, जो काले नाग की तरह जहर की आग उगलता गया। अर्जुन की ओर उस भयानक तीर को आता देख कृष्ण ने रथ को पाव के अगूठे से दबा दिया, जिससे रथ ज़मीन में पाच अगुल धस गया। कृष्ण

की इस युक्ति से अर्जुन मरते-मरते बचा। कर्ण का चलाया हुआ सर्प-मुखास्त्र फुफकारता हुआ आया और अर्जुन का मुकुट उडा ले गया। इस-पर अर्जुन के क्रोध का ठिकाना न रहा। जोश के साथ कर्ण पर बाण-वर्षा कर दी। इतने में कर्ण के रथ का बाए तरफ का पहिया अचानक धरती में धस गया।

इससे कर्ण घबरा गया और बोला—"अर्जुन! जरा ठहरो! मेरे रथ का पहिया कीचड में फस गया है। जरा उसको उठाकर ठीक जमीन पर रख दू। तबतक के लिए जरा रुक जाओ। पाडव-पुत्र तुम्हें धर्म युद्ध करने का जो यश प्राप्त हुआ है, उसे व्यर्थ ही न गवाओ। मै जमीन पर खडा रहू और तुम रथपर बैठे-बैठे मुझपर बाण चलाओ, यह ठीक नहीं होगा। जरा रुको, मै अभी पहिया उठाकर ठीक जमीन पर रखे लेता हूँ। तबतक के लिए अपनी बाण-वर्षा बद रखो।"

कर्ण की ये बाते सुनकर श्रीकृष्ण बोले—"कर्ण! तुम भी धर्म की बाते करने लगे? यह ठीक रहा! अब मुसीबत पडने पर धर्म का खयाल आया तुमको? जब दु शासन, तुम और दुर्योधन द्रौपदी को भरी सभा में घसीट लाये थे उस वक्त तुम्हें धर्म की याद आई थी? नौसिखिये युधिष्ठिर को जुए के कुचक्र में फँसाते वक्त तुम्हारा धर्म कहा जा छिपा था? जब पाण्डव प्रतिज्ञा पूरी करके बारह साल का वनवास और एक साल का अज्ञात-वास करके लौटे, तब तुम लोगो ने उनका राज्य वापस देने से इन्कार किया था। क्या वह धर्म था? उस समय तुमने अपने धर्म को कहा छिपाये रखा था? जिन दुष्टो ने भीमसेन को जहर देकर मार देने की कोशिश की थी, उनके उस कुचक्र में तुम भी तो साथी बने हुए थे। लाख के भवन में कुन्ती-पुत्रो को ठहराकर उनको सोते हुए जला डालने का जो षड्यन्त्र किया गया था उसमें तुम्हारा भी तो हाथ था! क्या उस समय तुम्हे धर्म की याद आई थी? द्रौपदी का घोर अपमान होते हुए तुमने जो कुछ कहा था क्या वह भूल गये? और यह भी भूल गये कि यह सब देखकर तुम उसी समय कहकहा लगाकर हँसे थे?—'तेरे पति आज तेरे काम न आ

सके। चल अब और किसीको पति कर ले!' क्या य अधार्मिक बातें तुमने द्रौपदी को नहीं सुनाई थीं ? एक सती-साध्वी से ऐसी बाते करते हुए तुम्हारा धर्म कहा लुप्त हो गया था ? जब दुधमुहें बच्चे अभिमन्यु को तुम सात लोगो ने एकसाथ घेरकर निर्लज्जता के साथ मार डाला था तब तुम्हारे धार्मिक विचार कहा थे ? और आज जब मुसीबत सामने खडी दिखाई दे रही है तो तुमको धर्म याद आ रहा है।"

श्रीकृष्ण की इस झिडकी का कर्ण से कोई उत्तर देते न बना। उसन सिर झुका लिया और अटके हुए रथ पर से ही युद्ध जारी रखा। इतने में कर्ण का एक बाण अर्जुन को जा लगा, तो वह थोडी देर के लिए विचलित हो उठा। बस, यही ज़रा-सा समय पाकर कर्ण रथ से उतर पडा और पहिया उठाकर समतल पर लाने की कोशिश करने लगा। पर दैव उसका साथ छोड चुका था। कर्ण के हजार प्रयत्न करने पर भी पहिया गढे से निकलता न था।

तब कर्ण ने परशुराम से सीखे हुए मन्त्रास्त्रों को स्मरण में लाने का प्रयत्न किया, परन्तु परशुराम के शापवश वे भी याद न आये।

इतने में श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—"अर्जुन, अब देरी न करो, हिचकिचाओ भी नही। इसी समय इस दुष्ट को खत्म कर दो। मारो जल्दी से कसकर एक बाण।"

श्री व्यासजी कहते है कि श्रीकृष्ण की यह बात मानकर अर्जुन ने तान कर एक बाण ऐसा मारा कि कर्ण का सिर कटकर जमीन पर गिर पडा।

●

कवि का मन नही मानता कि इस अधार्मिक वध की सारी जिम्मेदारी अर्जुन पर ही छोड दी जाय। इसलिए वह कहते है कि भगवान् ने आदेश दिया और अर्जुन ने मान लिया। कवि अर्जुन को दोषी नहीं ठहराना चाहते। कर्ण के सर्पास्त्र से अर्जुन की रक्षा करने के लिए किसने रथ को नीचे झुकाया था ? भगवान् ने। जब कर्ण जमीन पर खड़ा होकर

देखते ही ब्राह्मण का मन उद्विग्न हो उठा। उन्हें बडा पछतावा होने लगा।

मन की भावनाओ के कार्यरूप में परिणत होने के लिए कितने ही बाहरी कारणो की आवश्यकता पडती है। किन्तु बाहरी कारण भावनाओ का हर वक्त साथ नहीं देते। इसी कारण हम कितनी ही बुराइयो से अक्सर बच जाते है। यदि यह बात न हो, यदि मन की सारी भावनाए तत्काल ही कार्यरूप में परिणत होने लग जाय तो फिर इस ससार के कष्टो को कोई सहन न कर सके।

कौशिक बडे पछताये कि एक निर्दोष पछी को मैंने मार दिया। क्रोध में आकर मैंने जो भावना की उसने यह क्या अनर्थ कर दिया! यह सोचकर उन्हें बडा शोक हुआ। इतने में भिक्षा का समय हो आया। कौशिक भिक्षा के लिए चल पडे।

एक द्वार पर भिक्षा के लिए वह खडे हुए। घर की मालकिन अन्दर बरतन साफ कर रही थी। कौशिक ने सोचा, काम पूरा होने पर मेरी तरफ ध्यान देगी। किन्तु इतने में स्त्री का पति, जो किसी काम पर बाहर गया हुआ था, लौट आया। आते ही बोला—'बडी भूख है।' पति की बात सुनते ही गृह-पत्नी ब्राह्मण की परवाह न करके अपने पति की सेवा-टहल में लग गई। पानी लाकर पाव धोये, आसन बिछाया। उसके बैठने पर थाली परोस कर उसके सामने रख दी और बैठकर पखा झलने लगी।

कौशिक द्वार पर खडे ही रहे। जब उस स्त्री का पति भोजन कर चुका तभी कौशिक के लिए वह भिक्षा लाई। भिक्षा देते हुए उसने कौशिक से कहा—"महाराज, आपको बहुत देर ठहरना पडा, क्षमा कीजिएगा।"

स्त्री की इस लापरवाही के कारण कौशिक क्रोध के मारे प्रज्वलित अग्नि से मालूम पड रहे थे। बोल उठे—"देवी! मुझे और बहुत घरो में जाना है। यह तुम्हारे लिए उचित नही था जो तुमने मुझे इतनी देर ठहरा रखा।"

स्त्री ने कहा—"ब्राह्मण-श्रेष्ठ! पति की सेवा-शुश्रूषा में लगी रही। इसी कारण कुछ देर हो गई, क्षमा कीजिएगा।"

कौशिक को अपनी दृढ-व्रतता और जीवन की पवित्रता का बडा घमड था। वह उस स्त्री को उपदेश देने लगे—"नारी! माना कि पति की सेवा-टहल करना स्त्री का धर्म होता है। किन्तु ब्राह्मण का अनादर करना भी ठीक नहीं। मालूम होता है तुम्हें अपने सतीत्व का बडा घमड है।"

स्त्री ने विनीत भाव से कहा—"नाराज न होइयेगा। अपने पति की शुश्रूषा में रहनेवाली स्त्री पर कुपित होना उचित नहीं। मुझे पेडवाला बगुला समझने की गलती न कीजिएगा। आपका क्रोध पति की सेवा में लगी रहने वाली सती का कुछ नहीं बिगाड सकता। मै बगुला नही हू।"

स्त्री की बातें सुनकर ब्राह्मण कौशिक चौंक उठे। उन्हें बडा अचरज हुआ कि इस स्त्री को बगुले के बारे में कैसे पता लगा? वे आश्चर्य कर रहे थे कि इतने में वह बोली—

"महात्मन्! आपने धर्म का मर्म न जाना। शायद आपको इस बात का भी पता नहीं कि क्रोध एक ऐसा शत्रु है जो मनुष्य के शरीर ही के अन्दर रहते हुए उसका नाश कर देता है। मेरा अपराध क्षमा करें और मिथिलापुरी के रहनेवाले धर्मव्याध से जाकर उपदेश ग्रहण करें।"

ब्राह्मण विस्मित होकर बोले—"देवी! आपका कल्याण हो। आप मेरी निन्दा जो कर रही है, मेरा विश्वास है कि वह मेरी भलाई के ही लिए है।"

उस साध्वी नारी को यो आशीर्वाद देकर कौशिक मिथिला नगरी को चल पडे।

●

मिथिला पहुच कर कौशिक धर्मव्याध की खोज करने लगे।

उन्होने सोचा कि जो महात्मा मुझे उपदेश देने के काबिल है वे अवश्य ही कहीं किसी आश्रम में रहते होगे। इस विचार से कितने ही सुन्दर भवनो और सुहावने बाग-बगीचो में ढूढा, पर कौशिक को कोई पता न चला। अत में एक कसाई की दुकान मिली जिस पर एक हट्टा-कट्टा आदमी बैठा मास बेच रहा था। लोगो ने कौशिक को बताया—"वह जो दुकान पर बैठे है वे ही धर्मव्याध है।"

ब्राह्मण बडे कुत्सित भाव से नाक-भौंह सिकोड कर दूर ही पर खडे रहे। उन्हें कुछ समझ में नहीं आया। ब्राह्मण को यो भ्रम में पडे-से देखकर कसाई जल्दी से उठकर उनके पास आया और बडी नम्रता के साथ बोला—"भगवन्! स्वस्ति। उस सती साध्वी ने ही तो आपको मेरे पास नहीं भेजा है?"

सुनकर कौशिक सन्न रह गये।

"द्विजवर! मै आपके यहा आने का उद्देश्य जानता हू। चलिये, घर पर पधारिये। आपकी इच्छा पूरी होगी।" यह कहकर धर्मव्याध ब्राह्मण को अपने घर ले गया। वहा पहुचकर कौशिक ने धर्मव्याध को अपने माता-पिता की बडी श्रद्धा के साथ सेवा-टहल करते देखा। इसके बाद इससे निवृत्त होकर कसाई धर्मव्याध ने ब्राह्मण कौशिक को बताया कि जीवन क्या है, कर्म क्या होता है और मनुष्य के कर्त्तव्य क्या होते है। यह उपदेश पाकर कौशिक अपने घर लौट आये और धर्मव्याध के उपदेश के अनुसार अपने माता-पिता की सेवा-टहल में लग गये जिनकी उपेक्षा करके वह वेदाध्ययन और तपस्या में लगे थे।

धर्मव्याध की कथा गीता के उपदेश का ही एक दूसरा रूप है। कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसमें परमात्मा व्याप्त न हो। इसलिए कोई भी काम ऐसा नहीं जो ईश्वरीय न हो। समाज के प्रचलित ढाचे के कारण, या खास मौका मिलने या न मिलने के कारण, अथवा अपनी पहुच या विशेष परिश्रम के कारण भिन्न-भिन्न मनुष्य भिन्न-भिन्न कामो में लग जाते है। इसमें ऊच-नीच का या और किसी तरह का प्रश्न ही कहा

उठ सकता है ? किसी भी काम को, उस काम के धर्म से डिगे बगैर करना ही ईश्वर की भक्ति करना है। धर्मव्याध की कथा का यही उपदेश है और यही गीता का भी उपदेश है।

: ३६ :

दुष्टों का जी कभी नहीं भरता

पांडवो के बनवास के समय कुछ ब्राह्मण पाडवो के आश्रम गये थे। वहा से लौटकर वे हस्तिनापुर पहुचे और धृतराष्ट्र को पाण्डवो के हाल-चाल सुनाये। धृतराष्ट्र ने जब यह सुना कि पाडव बन में आधी और धूप में बडी तकलीफ उठा रहे है तो उनके मन में चिन्ता होने लगी। सोचने लगे, इस अनर्थ का अत भी कभी होगा ? इसके नतीजे से कहीं मेरे कुल का सर्वनाश न हो जाय!

भीम का क्रोध अबतक अगर रुका हुआ है तो युधिष्ठिर के समझाने-बुझाने और दबाव के कारण ही। वह कबतक अपना क्रोध रोक सकेगा ? सबर की भी तो हद होती है, किंतु किसी-न-किसी दिन पाडवो का क्रोध बाध तोडकर ऐसा बह निकलेगा कि जिससे सारे कौरव-वश का सफाया हो जाने की ही सभावना है। यह सोचकर धृतराष्ट्र का मन काप उठा।

कभी सोचते—"अर्जुन और भीम तो हमसे बदला लेकर ही रहेंगे। शकुनि, कर्ण, दुर्योधन और नासमझ दु शासन को न जाने क्यो ऐसी मूर्खता-भरी धुन सवार है ? ये क्यो नहीं सोचते कि पेड की डाली के सिरे तक पहुच जाना खतरे से खाली नहीं होता ? थोडे से शहद के लालच में पडकर ये लोग शाख के सिरे तक पहुच चुके है। वे यह क्यो नहीं देखते कि भीमसेन के क्रोध-रूपी सर्वनाश का गड्ढा इन्हें निगल जाने के लिए मुह-बाये पडा है ?"

कभी सोचते—"आखिर हम लोग लालच में क्यो पड गये ? हमें

कमी किस बात की थी ? सब कुछ हमें मिला है। फिर भी हम क्यों लोभ में फसे ? क्यो अन्याय करने पर उतारू हो गये ? जो कुछ प्राप्त था उसीका ठीक से उपभोग करते हुए सुखपूर्वक नहीं रह सकते थे ? लेकिन हाय ! लालच में पडकर हमने जो पाप किये हैं उनका फल जरूर ही भुगतना पडेगा। पाप के जो बीज बोये है सो पाप ही की फसल काटनी होगी। और पाडवो का हम क्या बिगाड सके ? अर्जुन इन्द्रलोक जाकर दिव्यास्त्र प्राप्त करके कुशल-पूर्वक लौट आया है। सशरीर स्वर्ग जाकर सकुशल लौट आना कोई मामूली बात है ? कभी किसीसे यह हो सका है कि सदेह इन्द्रलोक जाये और उसे फिर छोडकर इस लोक में वापस लौट आवे ? यदि अर्जुन ने यह असभव काम सभव कर दिखाया है तो वह केवल बदला लेने की ही गरज से किया होगा।" इसी भाति धृतराष्ट्र सोच किया करते। मन में तरह-तरह की आशकाए उठतीं और उनके मन में व्यथा समाई रहती।

लेकिन दुर्योधन और शकुनि और ही कुछ सोचते थे। चिंता करना तो दूर, उन्हें तो अजीब आनन्द आ रहा था और उनका विचार था कि अब आगे शुभ दिन ही आनेवाले है।

कर्ण और शकुनि दुर्योधन की चापलूसी किया करते—"राजन ! जो राज्य-श्री युधिष्ठिर का तेज और शोभा बढा रही थी, वह अब हमारे पास आ गई है। बलिहारी है आपकी कुशाग्र-बुद्धि की, जिसके कारण हमें यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है।"

किंतु दुर्योधन को भला इतने से सतोष कहा होता ! कर्ण से बोला—"कर्ण ! तुम्हारा कहना ठीक तो है, परंतु मै तो चाहता हू कि पाडवो को मुसीबतो में पडे हुए अपनी आखो से देखू और उनके सामने अपने सुख-भोग और ऐश्वर्य का प्रदर्शन भी करूं जिससे उनको अपनी दयनीय हालत का जरा पता तो चले। जबतक शत्रु की तकलीफ को हम अपनी आखो से देख न लेंगे तबतक हमारा आनन्द अधूरा ही रह जायेगा। कोई ऐसा उपाय करना चाहिए कि जिसमें

अपना यह काम भी पूर्ण हो जावे। पिताजी की भी इसमें सम्मति लेनी होगी न ?

"पिताजी सोचते है कि पाडवों में हमसे ज्यादा तपोबल है। इससे पिताजी पाडवो से कुछ डरते रहते है। इस कारण बन में जाकर पाडवो से मिलने की इजाजत देने में झिझकते है। वे डरते है कि कहीं हमपर इससे कोई आफत न आजाय। लेकिन मै कहता हू कि यदि हमने द्रौपदी और भीमसेन को जगल में पडे तकलीफ उठाते न देखा तो हमारे इतने करने-धरने का लाभ ही क्या रहा ? मै केवल इतने से ही सतोष नहीं मान सकता कि हमें विशाल राज्य मिला है और उसका उपभोग करते है। मै तो पाडवो का कष्ट अपनी आखो देखना चाहता हू। इसलिए कर्ण, तुम और शकुनि कुछ ऐसा उपाय करो जिससे बन में जाकर पाडवो को देखने की पिताजी अनुमति दे दें।"

कर्ण ने हामी भर दी।

अगले दिन पौ फटने से पहले ही कर्ण दुर्योधन के पास जा पहुचा। उसके चेहरे पर आनन्द की झलक देखकर दुर्योधन ने उत्सुकता से पूछा कि बात क्या है। कर्ण बोला— "मुझे उपाय सूझ गया। द्वैतबन में कुछ ग्वालो की बस्तिया है जो हमारे अधीन है। हर साल उन बस्तियो में जाकर चौपायो की गिनती लेना राजकुमारो का ही काम होता है। बहुत काल से यह प्रथा चली आ रही है। इसलिए उस बहाने हम पिताजी की अनुमति आसानी से प्राप्त कर सकते है। क्यो, ठीक है न ?"

कर्ण ने बात पूरी की भी न थी कि दुर्योधन और शकुनि बासो उछल पडे। बोले—"बिलकुल ठीक सूझी है तुमको।" कहते-कहते दोनो ने कर्ण की पीठ थप-थपाई और विदा हुए।

ग्वालो की बस्ती के चौधरी को बुला भेजा गया और कुमारो ने उससे बातचीत भी कर ली।

●

चौधरी ने राजा धृतराष्ट्र से बिनती करके कहा— "महाराज!

गायें तैयार है। बन के एक रमणीक स्थान पर राजकुमारो के लिए हर तरह का प्रबन्ध किया जा चुका है। प्रथा के अनुसार राजकुमार उस स्थान पर पधारें। चौपायो की सख्या, उम्र, रग, नस्ल, नाम इत्यादि की जाच करके खाते में दर्ज कर लें, जैसा कि सदा होता आया है। बछडो पर चिह्न लगाने के बाद बन में कुछ देर आखेट खेलकर थोडा मन बहला लें। चौपायो की गिनती की रस्म भी अदा हो जायगी और राज-कुमारो का मन भी बहल जायगा।"

राजकुमारो ने भी पिता से आग्रह करके प्रार्थना की कि वे इसकी अनुमति दे दें।

किंतु धृतराष्ट्र ने न माना। बोले—"मानता हू कि राजकुमारो के लिए आखेट का खेल बडा अच्छा होता है। चौपायो की गिनती लेना और जाच करना भी आवश्यक ही है; परतु फिर भी सुनता हू कि आजकल द्वैतबन में पाडव ठहरे हुए है। इसलिए राजकुमारो का वहा जाना ठीक नही। उनके और तुम्हारे बीच मनमुटाव हो चुका है। ऐसी स्थिति में तुम लोगो को ऐसी जगह, जहा भीम और अर्जुन हो, भेजने पर मै कभी सहमत नहीं हो सकता।"

दुर्योधन ने विश्वास दिलाया कि पाडव जहा होगे वहा वे सब नहीं जायेंगे और बडी सावधानी से काम लेंगे।

"तुम्हारे हजार सावधान रहने पर भी मुझे भय है कि कोई आफत जरूर आ जायगी। तुम्हारे लिए यह उचित नहीं कि बनवास के दु ख से क्षुब्ध हुए पाडवो के नजदीक जाओ। हो सकता है, तुम्हारे अनुचरों में से ही कोई पाडवो से अशिष्टता का व्यवहार कर बैठे जिससे भारी अनर्थ हो सकता है। केवल गायो की गिनती का ही काम हो तो उसके लिए तुम्हारे बजाय किसी और को भी भेजा जा सकता है।" राजा ने बेटो को समझाते हुए कहा।

यह सुनकर शकुनि बोला—"राजन्! युधिष्ठिर धर्म के ज्ञाता है। भरी सभा में वे जो प्रतिज्ञा कर चुके है उससे विमुख नहीं होगे। पाडव उनका

कहा अवश्य मानेंगे। हमपर अपना क्रोध प्रकट न करेंगे। आखिर दुर्योधन आखेट ही तो खेलना चाहते है ? वे कोई ऐसा कार्य न करेंगे जिससे कोई बिगाड पैदा हो। आप उन्हें न रोकिए। चौपायो की गिनती का भी काम हो जायगा और दुर्योधन की इच्छा भी पूरी हो जायगी। मैं भी उनके साथ जाऊगा और कोई अनहोनी बात न होने दूगा। आप विश्वास मानें, पाडवो के पास तक हम नहीं फटकेंगे। मैं इस बात का वचन देता हू। आप निश्चिन्त होकर अनुमति दीजिए।"

विवश होकर धृतराष्ट्र ने अनुमति दे दी। बोले—"तो फिर जैसी तुम्हारी इच्छा।"

●

मन में जिसने वैर-भाव को जगह दी हो वह सतोष से सदा के लिए हाथ धो बैठता है। द्वेष वह आग है जो बुझाये नहीं बुझती। जलती आग को कहीं ईंधन डालकर बुझाया जा सकता है ? ईंधन पाकर तो वह और भी प्रबल हो उठती है तथा और भी ज्यादा ईंधन पाने के लिए लालायित हो उठती है। द्वेष रखने वाले का जी कभी नहीं भरता।

: ४० :

दुर्योधन अपमानित होता है

एक बडी सेना और असख्य नौकर-चाकरो को साथ लेकर कौरव द्वैतबन के लिए रवाना हुए। दुर्योधन और कर्ण फूले न समाते थे। वे सोचते थे, पाडवो को कष्टो में पडे देखकर खूब आनन्द आयेगा। उन्होंने पहुचने पर अपने डेरे ऐसे स्थान पर लगाये जहा से पाडवो का आश्रम चार कोस की दूरी पर ही था।

कुछ देर विश्राम करने के बाद वे ग्वालो की बस्तियो में गये,

चौपायो की गिनती की, मुहर लगाकर विधिवत् रस्म अदा की। इसके बाद ग्वालो के खेल और नाच देखकर कुछ मनोरजन किया। फिर जगली जानवरो के शिकार की बारी आई।

शिकार खेलते-खेलते दुर्योधन उस जलाशय के पास जा पहुचा जो पाडवो के आश्रम के पास ही था। तालाब का स्वच्छ जल, चारो ओर से रमणीक दृश्य आदि देखकर दुर्योधन खुश हुआ। सबसे बढकर आनद तो उसे इस बात से हुआ कि जलाशय के पास ठहरे हुए पाडवो के हाल-चाल भी देखे जा सकेंगे। दुर्योधन ने अपने लोगो को आज्ञा दी कि डेरे अब तालाब के किनारे लगा दिये जाय।

●

दैवयोग से उसी समय गन्धर्वराज चित्रसेन भी अपने परिवार के साथ उसी जलाशय के तट पर डेरा डाले हुए था। दुर्योधन के कर्मचारी डेरा लगवाने वहा गये तो गन्धर्वराज के अनुचरो ने उन्हे वहा डेरा डालने से मना किया।

अनुचरो ने लौटकर दुर्योधन को इसकी खबर दी कि कोई विदेशी नरेश अपने परिवार के साथ सरोवर के तटपर ठहरे हुए है और उनके नौकर हमें वहा ठहरने नहीं दे रहे है। यह सुनते ही दुर्योधन गुस्से से आग-बबूला हो उठा। वह बोला—"किस राजा की मजाल है जो मेरी आज्ञा को पूरा न होने दे ? जाओ, अपना काम पूरा करके आओ और कोई रोके तो उसकी और उसके परिवार की खूब खबर लो।"

आज्ञा पाकर दुर्योधन के अनुचर फिर जलाशय के पास गये और किनारे पर तबू गाडने लगे। गन्धर्वराज के नौकर इसपर बहुत बिगडे और दुर्योधन के अनुचरो की खूब खबर ली। वे कुछ न कर सके और प्राण लेकर भाग खडे हुए।

दुर्योधन को जब इस बात का पता चला तो उसके क्रोध की सीमा न रही। अपनी सेना लेकर तालाब की ओर बढा।

यहा पहुंचना था कि गन्धर्वों और कौरवो की सेनाए आपस में भिड़

गईं। घोर सग्राम छिड गया। पहले गन्धर्वों ने खुले तौर से आमने-सामने का युद्ध किया जिसमें उनको हार खानी पडी। यह देखकर गन्धर्वराज क्रुद्ध हो उठा और माया-युद्ध शुरू कर दिया। ऐसे-ऐसे मायास्त्र उसने कौरव -सेना पर बरसाये कि कौरवो की सेना उनके आगे ठहर न सकी। यहा तक कि कर्ण-जैसे महारथियो के भी रथ और अस्त्र चूर-चूर हो गये और वे उलटे पाव भाग खडे हुए। अकेला दुर्योधन लडाई के मैदान में अन्त तक डटा रहा। गन्धर्वराज चित्रसेन ने उसे पकड़ लिया और रस्सी से बाधकर अपने रथ पर बिठा लिया और शख बजाकर विजय-घोष किया। इस तरह कौरवो के पक्ष के सब प्रधान वीरो को गन्धर्वों ने कैद कर लिया। कौरवो की सेना तितर-बितर हो गई, कितने ही सैनिक खेत रहे। बचे-खुचे सनिको में से कुछ ने पाडवो के आश्रम में जाकर दुहाई मचाई और रक्षा की प्रार्थना की।

●

दुर्योधन और उसके साथियो को इस प्रकार अपमानित होते सुनकर भीम बडा खुश हुआ। युधिष्ठिर से बोला— "भाई साहब, गन्धर्वों ने तो वही कर दिया जो हमें करना चाहिये था। दुर्योधन हमारा मजाक उडाने के ही लिए यहा आया था। सो उसे ठीक सजा मिली। गन्धर्व-राज का हमें आभार मानना चाहिए जो उन्होने हमारी जिम्मेदारी स्वय पूरी कर दी।"

युधिष्ठिर ने गभीर स्वर में कहा—"भैया! तुम्हारा इस तरह आनद मनाना ठीक नहीं। ये हमारे ही कुटुम्ब के हैं जिनको गन्धर्वराज ने कैद कर रक्खा है। यह देखते हुए भी हम हाथ-पर-हाथ धरकर बैठे रहे, यह हमारे लिए उचित नहीं। अच्छा यही है कि तुम अभी चले जाओ और किसी तरह अपने बन्धुओ को गन्धर्वों से छुड़ा लाओ।"

युधिष्ठिर की बात सुनकर भीमसेन झल्ला उठा। बोला— "आप भी कैसे अजीब हैं जो ऐसी आज्ञा दे रहे हैं। जिस पापी ने हमें लाख के घर में ठहराकर आग की भेंट चढ़ाने का कुचक्र रचा, भला बताइये तो, उसे

मै क्यो छुडा लाऊ ? क्या आप यह भूल गये कि इसी दुरात्मा दुर्योधन ने मुझे विष मिला अन्न खिलाया था और गगा में डुबोकर मार डालने का प्रयत्न किया था ? ऐसे पापात्मा पर आप कैसे दया करते हैं ? जिन्होने प्यारी द्रौपदी को भरी सभा में खीच लाकर अपमानित किया, आप कैसे कहते हैं कि उन्हीं नीचो को हम अपना भाई मानें ?"

भीम ये बातें कर ही रहा था कि इतने में बन्दी दुर्योधन और उसके साथियो का आर्त्तनाद सुनाई दिया। सुनकर युधिष्ठिर बडे विचलित होकर बोले— "भीमसेन की बात ठीक नही है। भाइयो ! अभी जाकर कौरवो को छुडा लाना चाहिए।"

युधिष्ठिर के आग्रह करने पर भीम और अर्जुन ने कौरवो की बिखरी सेना को फिर से इकट्ठा किया और जाकर गन्धर्व-सेना पर टूट पडे।

पाडवो को देखते ही गन्धर्वराज चित्रसेन का क्रोध शात हो गया। उसने कहा— "मैंने तो दुरात्मा कौरवो को शिक्षा देने के लिए ही यह सब किया था। यदि आप चाहते है तो इनको मै अभी मुक्त किये देता हू।" यह कह कर चित्रसेन ने कौरवो को बन्धन-मुक्त कर दिया और साथ ही उन्हे यह भी आदेश दिया कि वे इसी घडी हस्तिनापुर लौट जायें। अपमानित कौरव फौरन हस्तिनापुर की ओर भाग खडे हुए। कर्ण, जो लड़ाई में भाग खडा हुआ था, रास्ते में दुर्योधन से मिला।

दुर्योधन ने क्षुब्ध होकर कहा— "कर्ण ! अच्छा होता यदि मै चित्रसेन के हाथो ही वहा मारा गया होता।"

कर्ण ने उसे बहुत समझाया, फिर भी दुर्योधन का क्षुब्ध हृदय जरा भी शात न हो सका। बोला— "दु शासन ! अब मेरा जीना बेकार है। मै यहीं अनशन करके प्राण-त्याग कर दू गा। तुम्हीं जाकर राज-काज सभाल लेना। शत्रुओ के सामने मेरा घोर अपमान हो चुका है। इसके बाद मेरा जीना बिलकुल बेकार है।"

दुर्योधन को बहुत ग्लानि अनुभव होने लगी। यह देख दुःशासन

की आखें भर आईं। रोते-रोते दुर्योधन के पाव पकडकर रुद्ध-कण्ठ से आग्रह करने लगा कि आप ऐसा न करे। भाइयो का यह करुण विलाप कर्ण से न देखा गया।

बोला—"कुरुवश के सुपुत्रो! यह तुम्हे शोभा नहीं देता कि इस प्रकार दीनो की भाति विलाप करो। शोक करने से तुम्हारा क्या भला होगा? रोने-कलपने से भी कहीं कुछ काम बना है? धीरज धरो। तुम्हारे शोक करने से तुम्हारे शत्रु पाडवो को ही आनन्द होगा। दूसरा और कुछ फायदा नहीं होगा। पाडवो को ही देखो। कितने भारी अपमान उन्हे सहने पडे थे। फिर भी उन्होने कभी अनशन का नाम तक न लिया!"

कर्ण की बातो का समर्थन करते हुए शकुनि बोला—

"दुर्योधन! कर्ण की बात मानो। तुम्हे भी हमेशा उलटा ही सूझा करता है। प्राण छोडने की क्या बात करने लगे! जब राज्य के उपभोग करने का समय है तो तुमको उपवास करने की सूझती है! तुम्हारे सिवा और कौन इस विशाल राज्य का शासक हो सकता है एव उपभोग कर सकता है? चलो, उठो। अभी तो हस्तिनापुर चलो। अगर तुम्हे अपने किये पर पछतावा हो रहा है तो फिर चलकर पाडवो से मित्रता कर लेते है और उनका राज्य उन्हे वापस देकर फिर सुखपूर्वक दिन बितावेगे।"

शकुनि की बात सुनते ही दुर्योधन मानो स्वप्न से जाग पड़ा। वह चौंक उठा। उसकी बुद्धि पर जो थोडा-सा प्रकाश पडा था वह फिर लुप्त हो गया और फिर से अन्धेरा छा गया। एकदम चिल्ला उठा—"ऐसे कैसे पाडवो से सधि की जा सकती है। उनपर तो विजय ही पाना पड़ेगा। और मै वह पाकर ही रहूगा।"

दुर्योधन के ये आशाजनक वचन सुनकर कर्ण ने उसकी खूब सराहना की और बोला—"धन्य हो दुर्योधन! आखिर मरने से फायदा क्या हो सकता है? जीवित रहने से तो बहुत कुछ प्राप्त किया जा सकता है।"

वे सब हस्तिनापुर की ओर चल पड़े। रास्ते में कर्ण ने दुर्योधन को विश्वास दिलाने की खातिर कहा कि "मै अपने खड्ग

की सौगन्द खाकर कहता हू कि तेरह बरस बाद लडाई में अर्जुन का जरूर वध करूँगा। यह मेरी प्रतिज्ञा है।" इससे दुर्योधन को बडी सात्वना मिली और उसकी ग्लानि कम होने लगी।

: ४१ :

कृष्ण की भूख

पाडवो के बनवास के समय दुर्योधन ने एक भारी यज्ञ किया था। दुर्योधन की तो इच्छा राजसूय-यज्ञ करने की थी, किंतु पण्डित ब्राह्मणो ने कहा कि धृतराष्ट्र और युधिष्ठिर के रहते उसे राजसूय-यज्ञ करने का अधिकार नहीं। तो ब्राह्मणो की सलाह मानकर दुर्योधन ने वैष्णव नामक यज्ञ करके ही सतोष माना।

यज्ञ के समाप्त होने पर उसके बारे में नगर के लोगो की यह राय हुई कि युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ की तुलना में दुर्योधन का वैष्णव-यज्ञ सोलहवा हिस्सा भी नहीं था, किंतु दुर्योधन के मित्रों ने तो उसकी प्रशसा के पुल बाध दिये। वे कहने लगे कि माधाता, ययाति, भरत जैसे यशस्वी महाराजाओ ने जो भारी यज्ञ किये थे, दुर्योधन का वैष्णव-यज्ञ उनकी बराबरी करने योग्य है। इस प्रशसा को सुनकर दुर्योधन गर्व और आनन्द से फूल उठा। राजभवन का आश्रय लेकर जीविका चलाने वाले चापलूस लोगो ने दुर्योधन के यज्ञ की महिमा खूब बढा-चढाकर इधर-उधर कही, उसपर खील बरसाईं और चन्दन छिडका। इस अवसर पर महाबली कर्ण उठा और भरी सभा में दुर्योधन को सबोधन करके बोला—

"राजन! आप इस बात का सोच न कीजिए कि राजसूय-यज्ञ न कर सके। शीघ्र ही पाचो पाडव युद्ध में हारकर हमारे हाथो मारे जाएगे और तब आप राजसूय-यज्ञ भी कर सकेगे। मै शपथ खाकर कहता हूं

कि जबतक युद्ध में अर्जुन का वध न कर दू तब तक न तो पानी से अपने पाव धोऊगा, न मास खाऊगा, न मदिरा पियूगा और न किसी मागने वाले को 'नाही' कहूगा। यह मेरा प्रण है।"

कर्ण की इस प्रतिज्ञा पर धृतराष्ट्र के पुत्रो ने बडा शोर मचाकर अपने आनन्द का प्रदर्शन किया। कर्ण की शपथमात्र से ही उनको यह विश्वास हो गया कि बस अब पाडवो का काम ही तमाम हो चुका है।

●

यज्ञशाला में कर्ण ने अर्जुन को मारने की जो प्रतिज्ञा की उसकी खबर जासूसो द्वारा युधिष्ठिर को मिली। इससे युधिष्ठिर बडे व्याकुल हो गये। बडी देर तक पृथ्वी पर टकटकी-सी बाधे देखते रह गये। कर्ण दैवी कवच-कुण्डलो के साथ पैदा हुआ है। उसका पराक्रम भी अद्भुत है और अब वह ऐसी प्रतिज्ञा कर चुका है, यह सब समय का फेर ही तो है। इससे मालूम होता है कि समय हमारे अनुकूल नहीं है। यह सोचते-सोचते युधिष्ठिर बडे चिन्तित हो गये।

एक दिन बडे सवेरे युधिष्ठिर ने नींद खुलने के जरा देर पहले एक सपना देखा। अक्सर सपने या तो नींद के शुरू में आते हैं या नींद खुलने से थोडी देर पहले। युधिष्ठिर ने सपने में देखा—द्वैतवन के हिंस्र जन्तुओ का एक झुण्ड आकर उनके आगे पुकार मचा रहा है और आर्त्त-स्वर में कह रहा है कि "महाराज! आप लोगो ने शिकार खेल-खेलकर हम सबो का करीब-करीब अन्त ही कर डाला है। इससे पहले कि हमारा सर्वनाश ही हो जाय, आपसे हमारी प्रार्थना है कि आप और किसी जगल में चले जाइये। हमारी सख्या बहुत घट चुकी है। थोडेसे जो जीवित बचे है, उन्हींके द्वारा वश की वृद्धि होनी है। हमारी नस्ल का बढ़ना-न-बढना आपकी ही कृपा पर निर्भर है। आपका कल्याण हो! आप हमपर दया करें।" कहते-कहते जानवरो की आखो में आसू उमड़ आये। यह देख-

कर युधिष्ठिर का जी भर आया। चौंककर उठ बैठे तो पता चला कि यह तो सपना था, परन्तु फिर भी युधिष्ठिर बडे बेचैन हो उठे। इस सपने से उन्हें बडी व्यथा पहुची। भाइयो से सपने का हाल कहा और सबसे सलाह करके वे किसी दूसरे बन में चले गये।

एक बार महर्षि दुर्वासा अपने दस हजार शिष्यो को साथ लेकर दुर्योधन के राजभवन में पधारे। वैसे दुर्योधन को महर्षियो के प्रति अधिक श्रद्धा न थी, किंतु दुर्वासा कहीं शाप न दे बैठें, इस डर से खुद उनका बडी नम्रता के साथ स्वागत किया और बडे यत्न से उनका सत्कार किया। दुर्योधन के सत्कार से ऋषि बहुत प्रसन्न हुए और कहा—"वत्स, कोई वर चाहो तो माग लो।"

दुर्वासा अपने क्रोध के लिए बडे विख्यात थे। ऐसे क्रोधी ऋषि को सतुष्ट करने से दुर्योधन को ऐसा आनन्द हुआ मानो मृत्यु के मुह से निकल आया हो। सोचा, कौन-सा वर मागू? बहुत दिमाग लड़ाने पर भी उसकी बुद्धि में औरो की बुराई के सिवा और कुछ न सूझा। बोला—"मुनिवर! प्रार्थना यही है कि जैसे आपने शिष्यो-समेत अतिथि बनकर मुझे अनुगृहीत किया, वैसे ही बन में मेरे भाई पाडवो के यहा भी जाकर उनका सत्कार स्वीकार करें। राजाधिराज युधिष्ठिर हमारे कुल के प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं। आप उनके पास जाइए और उनके अतिथि बनने की कृपा कीजिये। और फिर एक छोटी-सी बात मेरे लिए और करने की कृपा करें। वह यह कि आप अपने शिष्यो-समेत ठीक ऐसे समय युधिष्ठिर के आश्रम में जायें जब राजकुमारी द्रौपदी पांडवो एव उनके परिवार को भोजन करा चुकी हो और जब सभी लोग आराम से बैठे विश्राम कर रहे हो। बस, यही मेरी प्रार्थना है। इससे मुझपर बड़ा अनुग्रह होगा।"

लोगो को कठिनाइयो की कसौटी में कसकर परख लेने का महर्षि दुर्वासा को बडा चाव था। इसलिए उन्होने दुर्योधन की प्रार्थना तुरन्त मान ली।

दुर्वासा से ऐसी अजीब प्रार्थना करने का दुर्योधन का उद्देश्य यही था कि क्रोधी ऋषि पाडवो के पास ऐसे समय पर जाय जब ऋषि का समुचित सत्कार करना पाण्डवो से न हो सके और ऋषि क्रोध में आकर उन्हें शाप दे दें। दुर्योधन चाहता तो ऋषि से कोई ऐसा वर माग सकता था जिससे उसकी भलाई होती। पर उसने तो अपने शत्रुओ को हानि पहुचाना ही श्रेयस्कर समझा। दुरात्माओ का स्वभाव ऐसा ही होता है!

दुर्योधन की प्रार्थना मानकर दुर्वासा ऋषि अपने शिष्यो के साथ युधिष्ठिर के आश्रम में जा पहुचे। युधिष्ठिर ने भाइयो-समेत ऋषि की आवभगत की और दण्डवत करके विधिवत् उनका सत्कार किया। कुछ देर बाद मुनि ने कहा—"अच्छा! अभी स्नान करके आते है। तब तक भोजन तैयार करके रखना।" कह कर दुर्वासा शिष्यो-सहित नदी पर स्नान करने चले गये।

●

बनवास के प्रारम्भ में युधिष्ठिर की तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् सूर्य ने उन्हें एक अक्षयपात्र प्रदान किया था और कहा था कि ठीक बारह बरस तक इसके द्वारा मै तुम्हें भोजन दिया करूगा। इसकी विशेषता यह है कि द्रौपदी हर रोज चाहे जितने लोगो को इस पात्र में से भोजन खिला सकेगी, परन्तु सबके भोजन कर लेने पर जब द्रौपदी स्वय भी भोजन कर चुकेगी तब फिर इस बरतन की यह शक्ति अगले दिन तक के लिए लुप्त हो जायगी।

इस कारण पाडवो के आश्रम में सबसे पहले ब्राह्मणो और अतिथियों को भोजन दिया जाता था। फिर सब भाइयो के भोजन कर लेने के बाद युधिष्ठिर भोजन करते। जब सभी लोग भोजन करके तृप्त हो जाते तब अत में द्रौपदी भोजन करती और बरतन माज-धोकर रख देती। जिस समय दुर्वासा ऋषि आये थे तबतक सभी को खिला-पिलाकर द्रौपदी भी भोजन कर चुकी थी इसलिए सूर्यदेव का अक्षयपात्र उस दिन के लिए खाली हो चुका था।

द्रौपदी बडी चिन्तित हो उठी कि जब मुनि अपने एक हजार शिष्यो के साथ स्नान-पूजा करके भोजन के लिए आ जायेंगे तब वह उनको क्या खिलायेगी ? उसे कुछ न सूझा। कोई सहारा न पाकर उसने परमात्मा की शरण ली। दीन भाव से वह भगवान् की प्रार्थना करने लगी—"प्रभो ! शरणागतो की रक्षा करनेवाले ईश्वर ! जिनका कोई सहारा न हो उनके तुम ही तो सहारे हो। दुर्वासा ऋषि के क्रोध रूपी मझधार से तुम्ही हमारा बेडा पार लगा सकते हो। मेरी लाज रखो भगवान् !"

द्रौपदी इस प्रकार प्रार्थना कर ही रही थी कि इतने में भक्तो को सकट से छुडाने वाले भगवान् वासुदेव कही से आ गये और सीधे आश्रम के रसोईघर में जाकर द्रौपदी के सामने खडे हो गये। बोले—"बहन कृष्णा, बडी भूख लगी है। कुछ खाने को दो। और कुछ बाद में सोचना। पहले तो खाने को लाओ।"

द्रौपदी और भी बडी दुविधा में पड गई। बोली—"हे भगवन् ! यह कैसी परीक्षा है ? मै खाना खा चुकी हू। सूर्य के दिये हुए अक्षयपात्र की शक्ति आज के लिए समाप्त हो चुकी है। ऐसे समय पर उधर दुर्वासा ऋषि अतिथि बनकर आये हुए है। मै घबरा रही थी कि क्या करू ? वे थोडी देर में अपने शिष्यो-समेत स्नान करके वापस ही आ रहे होगे। और ऊपर से अब आप आ गये है और कहते है, भूख लगी है। इस विपदा से कैसे बचू ?"

कृष्ण बोले—"मै यहा भूख से तडप रहा हू और तुम्हें दिल्लगी सूझ रही है। जरा लाओ तो अपना अक्षयपात्र। देखें तो कि उसमें कुछ है भी कि नही।"

द्रौपदी हडबडा कर बरतन ले आई। उसके एक छोर पर अन्न का एक कण और साग की पत्ती लगी थी। श्रीकृष्ण ने उसे लेकर मुह में डालते हुए मनमें कहा—"जो सारे विश्व में व्याप्त है, सारा विश्व ही जिसका रूप है, यह उस हरि का भोजन हो, इससे उसकी भूख मिट

आय और वह प्रसन्न हो जाय।"

द्रौपदी तो यह देख लज्जा से सिकुड-सी गई। सोचा—कैसी हू मैं, कि मैंने ठीक से बरतन भी न धोया। इसीलिए उसमें लगा अन्न-कण और साग वासुदेव को खाना पडा। धिक्कार है मुझे। इस तरह द्रौपदी अपने आपको धिक्कार ही रही थी कि इतने में श्रीकृष्ण ने बाहर जाकर भीमसेन को कहा—"भीम, जरा जल्दी जाकर ऋषि दुर्वासा को शिष्यो-समेत भोजन के लिए बुला लाओ।"

भीमसेन बडे वेग से नदी की ओर उस स्थान पर गया जहा दुर्वासा आदि ब्राह्मण शिष्यो-समेत स्नान कर रहे थे। नजदीक जाकर भीमसेन क्या देखता है कि दुर्वासा ऋषि का सारा शिष्य-समुदाय स्नान-पूजा करके भोजन तक से निवृत्त हो चुका है।

शिष्य दुर्वासा से कह रहे थे—"मुनिवर! युधिष्ठिर से हम व्यर्थ में कह आये कि भोजन तैयार करके रखें। हमारा तो पेट ऐसा भरा हुआ है कि हमसे उठा भी नही जाता। इस समय तो जरा भी खाने की इच्छा नहीं है।"

यह सुन दुर्वासा ने भीमसेन से कहा—"हम सब तो भोजन से निवृत्त हो चुके है। युधिष्ठिर से जाकर कहना कि असुविधा के लिए हमें क्षमा करें।" यह कहकर ऋषि अपने शिष्यो-सहित वहा से रवाना हो गये।

सारा विश्व भगवान् श्रीकृष्ण में ही समाया हुआ है। इसलिए उनके चावल का एक कण खाने भर से सारे ऋषियो की भूख मिट गई और वे तृप्त होकर चले गये।

: ४२ :

जहरीला तालाब

पाडवो के बनवास की अवधि पूरी होने को ही थी। बारह बरस समाप्त होने में कुछ ही दिन रह गये थे।

पांडवो के आश्रम के पास ही एक गरीब ब्राह्मण की झोपडी थी । एक दिन एक हिरन उधर से आ निकला। झोपडी के बाहर अरणी की लकडी टगी थी । हिरन ने उस पर शरीर रगडकर खुजली मिटा ली और चल पडा । जाते समय अरणी की लकडी उसके सींग ही में अटक गई ।

काठ के चौकोर टुकडे पर मथनी जैसी दूसरी लकडी से रगडकर उन दिनो आग सुलगा लेते थे । इसीको अरणी कहते थे।

सींग में अरणी के अटक जाने से हिरन घबरा उठा और बडी तेजी से भागने लगा । यह देख ब्राह्मण चिल्लाने लगा और दौडकर पाडवो के आश्रम में जाकर पुकार मचाई कि हमारी अरणी हिरन उठा ले गया है । अब मै अग्निहोत्र के लिए अग्नि कैसे उत्पन्न करूगा ?

ब्राह्मण पर तरस खाकर पाचो भाई हिरन का पीछा करने लगे। पाडव दौडे तो बडे वेग से, पर वे हिरन के पास न पहुच सके। हिरन उछलता-कूदता छलागें मारता हुआ भागा और पाडवो को लुभाकर जगल में बडी दूर तक भटका ले गया और उनके देखते-देखते अचानक आखो से ओझल हो गया ।

पाचो भाई थक कर एक बरगद की छाह में बैठ गये। प्यास के मारे सबके मुह सूख रहे थे।

लेकिन सबको एक ही चिन्ता थी । नकुल ने बडे उद्विग्न भाव से युधिष्ठिर से कहा—"हमारे लिए यह कैसी लज्जा की बात है कि इस ब्राह्मण का इतना-सा भी काम हमसे न हो सका !"

नकुल को व्यथित देखकर भीमसेन बोला—"हमें तो उसी घडी उन पापियो का काम तमाम कर देना चाहिए था जब कि वे द्रौपदी को सभा के बीच घसीट लाये थे ! लेकिन तब हम चुपचाप रहे, इसीका नतीजा है कि आज हमें ऐसे कष्ट झेलने पड रहे है ।" यह कह कर भीमसेन ने अर्जुन की ओर दुःख-भरी निगाह से देखा ।

अर्जुन बोल उठा—"ठीक कहते हो भैया भीम ! उस समय तो

उस सूतपुत्र की कठोर बातें सुनकर भी मैं कठपुतला-सा खडा रह गया था। उसीके फलस्वरूप अब हमारी यह गति हो रही है।"

युधिष्ठिर ने देखा कि थकावट और प्यास के कारण सबकी सहनशीलता जवाब दे रही है। उनसे कुछ कहते न बना। उनको भी असह्य प्यास सताये जा रही थी। पर उसे वे सहन करके शांति से नकुल से बोले—"भैया! जरा उस पेड पर चढ कर देखो तो सही कि कहीं कोई जलाशय नदी दिखलाई दे रही है?"

नकुल ने पेड पर चढकर देखा और उतरकर कहा कि दूरी पर कुछ ऐसे पौधे दिखाई दे रहे हैं जो पानी ही के नजदीक उगते हैं। आसपास कुछ बगुले भी बैठे हैं। वहीं कहीं आसपास पानी अवश्य होना चाहिए।

युधिष्ठिर ने कहा कि जाकर देखो और पानी मिले तो ले आओ। यह सुन कर नकुल तुरन्त पानी लाने चल पडा।

कुछ दूर चलने पर अन्दाज के मुताबिक नकुल को एक जलाशय मिला। वह बडा प्रसन्न हुआ। सोचा, पहले तो अपनी प्यास बुझा लूं और फिर तरकस में पानी भरकर भाइयो के लिए ले जाऊंगा। यह सोचकर वह पानी में उतरा। पानी स्वच्छ था। उसने चुल्लू में पानी लिया और उसे पीना ही चाहता था कि इतने में यह आवाज आई—"माद्री के पुत्र! दुःसाहस न करो! यह जलाशय मेरे अधीन है। पहले मेरे प्रश्नो का उत्तर दो। फिर पानी पियो।"

नकुल चौंक पडा। पर उसे प्यास इतनी तेज लगी थी कि उस वाणी की परवाह न करके चुल्लू से पानी पी लिया। पानी पीकर किनारे पर चढ़ते ही उसे कुछ चक्कर-सा आया और वह गिर पडा।

●

बडी देर तक नकुल के न लौटने पर युधिष्ठिर चिन्तित हुए और सहदेव को भेजा। सहदेव जलाशय के नजदीक पहुचा तो नकुल को जमीन पर पड़ा देखा। उसने सोचा कि हो-न-हो, किसीने भाई को

मार डाला है। पर उसे भी प्यास इतनी तेज लगी थी कि वह ज्यादा कुछ सोच न सका। पानी पीने के लिए वह जलाशय में उतरा। वह पानी पीने को ही था कि पहले-जैसी वाणी सुनाई दी—"सहदेव! यह मेरा जलाशय है। मेरे प्रश्नो का जवाब देने के बाद ही तुम पानी पी सकते हो।"

सहदेव भी प्यास के मारे इतना व्याकुल हो रहा था कि उस वाणी की चेतावनी पर ध्यान न देते हुए पानी पी लिया और किनारे पर चढते-चढते अचेत होकर नकुल के पास ही गिर पडा।

जब सहदेव भी बहुत देर तक न लौटा तो युधिष्ठिर घबराकर अर्जुन से बोले—"अर्जुन! दोनो भाई पानी लेने गये हैं। अब तक क्यो नहीं लौटे। जाकर देखो तो उनके साथ कोई दुर्घटना तो नहीं हो गई? और लौटते समय तरकस में पानी भी लेते आना।"

अर्जुन बडी तेजी से चला। तालाब के किनारे पर दोनो भाइयो को मृत पडा देखा तो चौंक पडा। उसे अचरज हो रहा था और दु:ख भी। वह नहीं समझ पाया कि इनकी मृत्यु का कारण क्या है। यही सोचते हुए अर्जुन भी पानी पीने के लिए जलाशय में उतरा कि इतने में वही वाणी सुनाई दी—"अर्जुन! मेरे प्रश्नो का उत्तर देने के बाद ही प्यास बुझा सकते हो। यह तालाब मेरा है। मेरी बात न मानोगे तो तुम्हारी भी वही गति होगी जो तुम्हारे दो भाइयो की हुई है।"

अभिमानी अर्जुन यह सुनकर गुस्से से भर गया। धनुष तानकर ललकारा—"कौन हो तुम? सामने आकर रोको, नही तो यह लो। इन्हीं बाणो से तुम्हारे प्राण-पखेरू उडा देता हू।" बात खत्म भी न होने पाई थी कि अर्जुन ने शब्द-भेदी बाण छोडने शुरू कर दिये। जिधर से आवाज सुनाई दी उसी ओर निशाना लगाकर वह तीर चलाता रहा; किन्तु उन बाणो का कोई भी असर नहीं हुआ। जरा देर में फिर से आवाज आई—"तुम्हारे बाण मुझे छू तक नही सकते। मै फिर से कहे देता हूं, मेरे प्रश्नो का पहले उत्तर दो और फिर पानी पियो, नहीं

तो तुम्हारी मृत्यु निश्चित है।"

अपने बाणो को बेकार हुए देखकर अर्जुन के क्रोध की सीमा न रही। उसने सोचा कि यहा तो बडी जबरदस्त लडाई लडनी होगी। इससे पहले अपनी प्यास तो बुझा ही लू। फिर लड लिया जायगा। यह सोचकर अर्जुन ने जलाशय में उतर कर पानी पी लिया और किनारे आते-आते चारो खाने चित्त होकर गिर पडा।

उधर तीनो भाइयो की बाट जोहते-जोहते युधिष्ठिर बडे व्याकुल हो उठे। भीमसेन से चिन्तित स्वर में बोले—"भैया भीमसेन! न जाने अर्जुन भी क्यो नहीं लौटा! जरा तुम्ही जाकर देखो कि तीनो भाइयो को क्या हो गया है। लौटती बार पानी भी भर लाना। प्यास सही नहीं जा रही है। समय का रुख भी हमारे विपरीत ही मालूम होता है। जरा होशियारी से जाना, भाई! तुम्हारा भला हो।"

युधिष्ठिर की आज्ञा मानकर भीमसेन तेजी से जलाशय की ओर बढा। तालाब के किनारे पर देखा कि तीनो भाई मरे-से पडे है। देख कर भीमसेन का कलेजा टूक-टूक होने लगा। सोचा, यह किसी यक्ष की करतूत मालूम होती है। जरा पानी पी लेने के बाद देखता हू कि कौन ऐसा बली है जो मेरे रास्ते में आवे।

यह सोचकर भीमसेन तालाब में उतरना ही चाहता था कि आवाज आई—"भीमसेन! मेरे प्रश्नो का उत्तर दिये बिना पानी पीने का साहस न करो। यदि मेरी बात न मानोगे तो तुम्हारी भी अपने भाइयो जैसी गति होगी।"

"मुझे रोकने वाला तू कौन होता है?" कहता हुआ भीमसेन बेधडक तालाब में उतर गया और पानी पी लिया। पानी पीते ही और भाइयो की तरह वह भी वहीं ढेर होगया।

उधर युधिष्ठिर अकेले बैठे-बैठे घबराने लगे। बडे ताज्जुब की बात है कि कोई भी अबतक नहीं लौटा! कभी ऐसी बात हुई नहीं! आखिर भाइयो को हो क्या गया? क्या कारण है कि अभी तक लौटे

रथ का पहिया उठाने में लगा रहा, तब अर्जुन ने उसपर बाण क्यों चलाया ? भगवान की प्रेरणा से ।

उन दिनो की युद्ध-पद्धति की दृष्टि से ऐसी बाते धर्म-विरुद्ध मानी जाती थीं। धर्म के विरुद्ध चलाने का भार भगवान् के सिवाय और किसके द्वारा वहन किया जा सकता है ?

हिंसात्मक युद्ध के द्वारा अधर्म एव अत्याचार को नष्ट करने की आशा रखना व्यर्थ है । हथियार-बन्द युद्ध से अत्याचार या अन्याय कभी नहीं मिटते । धार्मिक उद्देश्यो के लिए ये जो युद्ध किये जाते है, उनमें भी अनिवार्य रूप से अन्याय और अधर्म हो ही जाते है । ऐसे युद्धो के परिणामस्वरूप अधर्म की ही वृद्धि होती है ।

: ९४ :

दुर्योधन का अन्त

जब दुर्योधन को इस बात की खबर मिली कि युद्ध में कर्ण भी मारा गया, तो उसके शोक की सीमा न रही । उसके लिए यह दुख असह्य हो उठा । दुर्योधन की इस शोचनीय अवस्था पर कृपाचार्य को तरस आया । उन्होने दुर्योधन को सान्त्वना देते हुए कहा—

"राजन् ! राज्य के लोभ से, यह युद्ध लडा जा रहा है । जो-जो काम जिन-जिन लोगो को सौंपा गया, उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक उसको किया और प्राण-पण से युद्ध करते हुए वे स्वर्ग सिधारे है । अब तुम्हारा कर्त्तव्य यही है कि पाडवो से किसी प्रकार सधि कर लो । अब युद्ध बद करना ही श्रेयस्कर होगा ।"

यद्यपि दुर्योधन हताश हो चुका था, फिर भी कृपाचार्य की यह सलाह उसे बिलकुल ही पसद न आई । वह उसे मानने के लिए तैयार न हुआ ।

गान्धारी बोली--- "भगवन् ! मै जानती हू कि पुत्रों के वियोग के दु ख से मेरी बुद्धि अस्थिर हो उठी है, परन्तु फिर भी पाडवो के सौभाग्य पर मै ईर्ष्या नहीं करती। आखिर वे भी मेरे लिए पुत्रो के ही बराबर हैं। मै जानती हू कि दु शासन और शकुनि ही इस कुल के नाश के मूल कारण थे। और यह भी मुझे विदित है कि अर्जुन और भीम निर्दोष है। अपनी सत्ता के मद के कारण मेरे पुत्रों ने यह युद्ध छेडा था। अत उनका मारा जाना उचित ही था और इसके लिए मै पाडवो को कुछ भी दोष नहीं देना चाहती। परन्तु एक बात सुनकर मुझे खेद व शोक हुआ। श्रीकृष्ण के देखते-देखते, भीमसेन ने दुर्योधन को गदा-युद्ध के लिए ललकारा, दोनो में युद्ध हुआ। यहा तक भी ठीक था। भीमसेन जानता था कि गदा-युद्ध में वह दुर्योधन की बराबरी नही कर सकता। लेकिन भीम ने नियम के विरुद्ध दुर्योधन की कमर के नीचे गदा मारकर उसे जो गिरा दिया वह मुझसे नही सहा जाता।"

भीम को भी दुर्योधन को अनीति से मारने का दु ख हो रहा था। गाधारी की बातें सुनकर उसे दु ख हुआ और उनसे क्षमा-याचना करता हुआ बोला, "मा ! युद्ध में अपने बचाव के लिए मुझसे ऐसा हुआ। वह धर्म हुआ हो या अधर्म, आप उसके लिए मुझे क्षमा कर दें। धर्म-युद्ध करके दुर्योधन से जीत सकना सम्भव न था, वह अजेय था। यही कारण था कि मुझे अधर्म बरतना पडा। पर यह भी तो सोचिये कि दुर्योधन ने सीधे-सादे युधिष्ठिर को जुआ खिलवाकर धोखा दिया और उनका राज्य छीन लिया। उसने हम सबको तरह-तरह के कष्ट पहुचाये और हमारे विरुद्ध कुचक्र रचे। बहुत समझाने-बुझाने पर भी उसने हमारा राज्य न लौटाने का हठ किया। द्रौपदी का भरी सभा में जो घोर अपमान हुआ वह आपको अच्छी तरह मालूम ही है। उस समय मुझे इतना गुस्सा आया था कि उसी सभा में मैंने दुर्योधन का वध कर दिया होता। तब शायद आप भी उसे अन्याय नहीं समझतीं। पर मै ऐसा नहीं कर सका; क्योंकि उस समय हम धर्मराज युधिष्ठिर के कारण प्रतिज्ञा में बधे हुए थे। अतएव कुछ कर नही सकते

थे। मन मार कर खडे-खडे देखते रहे। मैंने युद्ध-क्षेत्र में उसी अपमान का बदला लिया है। हा, कुछ अनीति जरूर बरतनी पडी। उसके लिए मा, आप हमपर क्रोध न करें। पर अपने मन को शात करें और हमें क्षमा ही कर दें।"

यह सुन गाधारी करुण स्वर में बोलीं— "बेटा! यदि तुमने मेरे सौ बेटो में से किसी एक को भी जीवित छोडा होता, तो हम दोनों उसीके आसरे सन्तोष कर लेते। लेकिन तुमने तो मेरे सौ-के-सौ बेटो को मार डाला।" कहते-कहते बूढी गाधारी का गला भर आया। पर थोडी ही देर में वह सभल गई। उसे क्रोध बहुत आ रहा था। उसने युधिष्ठिर को बुलाया। युधिष्ठिर डरते-डरते गाधारी के आगे आये और हाथ जोडकर खडे हो गये। यद्यपि गाधारी ने आखो पर कपडे की पट्टी बाध रक्खी थी, फिर भी युधिष्ठिर की उनकी ओर देखने की हिम्मत नहीं पड रही थी। वे सिर झुका कर खडे हो गये और बडी नम्रता के साथ बोले— "देवी, जिस अत्याचारी ने आपके पुत्रो की हत्या कराई, वही युधिष्ठिर आपको प्रणाम कर रहा है, और वह यदि आपके शाप के योग्य हो तो उसे शाप दीजिये। सचमुच मै बडा कृतघ्न हू। अब मुझे न तो राज्य का लोभ है, न प्राणो की ममता रही है।" यह कहते-कहते युधिष्ठिर गाधारी के पावो में गिर पडे।

युधिष्ठिर की नम्र बातो से गाधारी द्रवित हो उठी। वह कुछ न बोली। उसने युधिष्ठिर की ओर देखा भी नहीं। उसे भय था कि युधिष्ठिर पर मेरी क्रुद्ध दृष्टि पड जाय तो वह कहीं भस्म न हो जाय। इसलिए उसने अपना मुख दूसरी तरफ फेर लिया। फिर भी युधिष्ठिर के पाव की उग-लियो पर उसकी जरा-सी निगाह पड ही गई। निगाह पड़ते ही उनकी उगलिया काली-काली और विकृत हो गईं।

गाधारी का यह शोकोद्वेग देखकर अर्जुन भी डर गया और श्रीकृष्ण के पीछे ही खडा रहा। कुछ बोला नही।

महाबुद्धिमती और साध्वी गाधारी ने अपने दग्ध हृदय को धीरे-धीरे शात कर लिया और पाडवो को आशीर्वाद देकर विदा किया।

में छिपकर प्राण बचाना चाहते हो ? तुम्हारा दर्प और तुम्हारा आत्माभिमान, क्या हवा में उड गया ! तुम क्षत्रियकुल में पैदा हुए हो ! बाहर निकलो और क्षत्रियोचित ढग से युद्ध करो। भीरु न बनो ! युद्ध से भागकर जीते रहने की चेष्टा न करो ?" युधिष्ठिर ने ललकार कर कहा।

यह सुन दुर्योधन ने व्यथित होकर कहा—"युधिष्ठिर ! यह न समझना कि मै प्राणो के डर से यहा छिपा बैठा हू। मै भयभीत होकर भी यहा नहीं आया। शरीर की थकान मिटाने को ही जरा यहा ठडे जल में विश्राम कर रहा हू। युधिष्ठिर, मै न तो डरा हुआ ही हू और न मुझे प्राणो का ही मोह है। फिर भी, सच पूछो तो अब युद्ध से मेरा जी हट गया है। मेरे सभी सगी-साथी और बन्धु-बान्धव मारे जा चुके है। अब मै बिलकुल अकेला हू। राज्य-सुख का मुझे लोभ नहीं रहा। यह सारा राज्य अब तुम्हारा ही है। निश्चिन्त होकर तुम्हीं इसका उपभोग करो।"

"दुर्योधन ! एक दिन वह था जब तुम्हींने कहा था कि सुई की नोक जितनी जमीन भी नहीं दू गा। शाति की इच्छा से जब हमने तुम्हारे आगे मिन्नतें कीं तब तुमने इनकार कर दिया था। अब कहते हो, मेरा सर्वस्व तुम्हारा ही है। शायद तुम्हे अपने किये पापो का स्मरण नहीं रहा। तुमने जो महापाप किये है उन सबको क्या फिर से याद दिलाना जरूरी होगा ? तुमने हमें जो हानिया पहुचाई थी और द्रौपदी का जो अपमान किया था, वे सब तो पुकार-पुकार कर तुम्हारे प्राणो की बलि माग रहे है। अब तुम बच नहीं पाओगे।" युधिष्ठिर ने कडक कर कहा।

दुर्योधन ने जब स्वय युधिष्ठिर के मुख से ये कठोर बातें सुनीं तो उसने गदा उठा ली और जल में ही उठ खडा हुआ और बोला—

"अच्छा, यही सही। तुम एक-एक करके मुझसे भिड लो। मै अकेला हूं और तुम तो पाच हो। पाचो का अकेले के साथ लडना न्यायोचित नहीं। फिर तुम पाचो तरोताजा हो। मै थका हुआ हू और घायल हू। कवच भी मेरे पास नहीं है। इसलिए एक-एक करके निबट लो। चलो !

यह सुन युधिष्ठिर बोले—"यदि अकेले पर कइयो का हमला करना

धर्म नही, तो बालक अभिमन्यु कैसे मारा गया था ? तुम्हारी ही तो अनुमति पाकर उस एक बालक को सात-सात महारथियो ने मिलकर धर्म के विरुद्ध लडकर मारा था न ! तब धर्म का ध्यान नहीं रखा ? पर बात यह है कि जब अपने पर सकट पडता है तब धर्मशास्त्र का उपदेश सभी लोग देने लग जाते है। इस कारण अब बकवास बद करो और निकल आओ जलाशय से ! पहन लो कवच और हममें से जिस किसीसे भी चाहो, द्वन्द्व युद्ध कर लो। यदि मारे गये तो स्वर्ग पाओगे और यदि जीत गये, तो सारे राज्य के तुम्हीं स्वामी बनोगे।"

यह सुन दुर्योधन जलाशय से बाहर निकल आया और उसने भीम से गदा-युद्ध करने की इच्छा प्रकट की। भीम राजी हो गया और दोनो में गदा-युद्ध शुरू हो गया। दोनो की गदाए जब एक-दूसरे से टकरातीं तो उनमें से चिनगारिया निकल पडती थीं। इस तरह बडी देर तक युद्ध जारी रहा।

इसी बीच दर्शक लोग आपस में चर्चा करने लगे कि दोनो में जीत किसकी होगी। श्रीकृष्ण ने इशारो में ही अर्जुन को बताया कि भीम दुर्योधन की जाघ पर गदा मारेगा तो जीत जायगा। भीमसेन ने श्रीकृष्ण का यह इशारा तुरत भाप लिया और अचानक सिह की भाति दुर्योधन पर झपटा और उसकी जाघ पर जोर का गदा-प्रहार किया।

जाघ पर गदा की यह चोट लगनी थी कि दुर्योधन धडाम से पृथ्वी पर कटे पेड की भाति गिर पडा। यह देख भीम और उन्मत्त हो गया। उसका पुराना बैर मूर्तिमत हो उठा। उसी उन्मत्त अवस्था में उसने आहत पडे हुए दुर्योधन के माथे पर जोर से एक लात जमाई।

भीम का यह कार्य श्रीकृष्ण को ठीक न लगा। वह बोले—"भीमसेन ! अब बस करो ! तुमने अपना ऋण चुका दिया। तुम्हारा वचन पूरा हुआ। फिर भी दुर्योधन क्षत्रिय राजा है और हमारे ही कुल का है। इसलिए यह ठीक नही कि तुम उसके माथे पर इस प्रकार लात मारो। यह तो शीघ्र ही अपनी मौत मर जायगा। अब हम यहा खडे ही क्यो रहें !

व्यासाश्रम में छिपे अश्वत्थामा का पता लगा ही लिया। पाण्डवो और श्रीकृष्ण को देखते ही अश्वत्थामा घबरा गया। दिव्यास्त्रो और उनके मत्रो का तो अश्वत्थामा को ज्ञान था ही। उसने धीरे से एक तिनका उठा लिया और उसे अभिमन्त्रित करके और "यह पाण्डवो के वश का आमूल नाश करदे" यह कहकर उस तिनके को हवा में छोड दिया। मत्र-बल से वह तिनका अस्त्र बन गया और सीधे राजकुमारी उत्तरा की कोख में जा पहुचा। पांडव-वश का नामो-निशान तक इससे मिट गया होता; लेकिन श्रीकृष्ण के प्रताप व अनुग्रह से उत्तरा के गर्भ की रक्षा हो गई। समय पाकर उत्तरा के गर्भ का यही पिंड महाराज परीक्षित के रूप में उत्पन्न हुआ और पाडवो के वश का एकमात्र चिह्न रह गया।

●

अश्वत्थामा और भीमसेन में युद्ध छिड गया, लेकिन अन्त में अश्वत्थामा हार गया। वह अपनी पराजय के चिह्न के रूप में अपने माथे का उज्ज्वल रत्न पाडवो को भेंट करके अरण्य में चला गया। भीमसेन ने वह रत्न द्रौपदी के हाथ में रखा और कहा— "कल्याणी! यह रत्न तुम्हारी ही खातिर लाया हू। जिस दुष्ट ने तुम्हारे पुत्रो की हत्या की थी, वह परास्त कर दिया गया है। दुर्योधन मारा गया और दु शासन का लहू भी मैंने पिया। इस प्रकार मैंने अपनी सारी प्रतिज्ञाए पूरी कर लीं। आज मुझे बडी शाति अनुभव हो रही है।"

द्रौपदी भीमसेन का दिया वह रत्न युधिष्ठिर को देकर नम्रता के साथ बोली— "निष्पाप धर्मराज युधिष्ठिर! इस रत्न को आप अपने मस्तक पर धारण करें।"

●

हस्तिनापुर का सारा नगर नि सहाय स्त्रियो और अनाथ बच्चो के रोने-कलपने के हृदय-विदारक शब्दों से गूज उठा। युद्ध समाप्त होने के समाचार पाकर हजारो नि सहाय स्त्रियो को साथ लेकर वृद्ध महाराज धृतराष्ट्र कुरुक्षेत्र की समरभूमि में गये, जहा एक ही वश के लोगो ने—

भाई-बन्दों ने---एक-दूसरे से भयानक युद्ध करके अपने कुल का सर्वनाश कर डाला था। अन्धे धृतराष्ट्र ने बीती बातो का स्मरण करते हुए बहुत विलाप किया। पर उनके विलाप को वहा सुनता कौन ? वहा तो शृगाल और कुत्ते बेरोक-टोक घूम रहे थे और जो अबतक सबके प्रिय थे उनकी लाशो को बेरोकटोक खींचते-खाते थे। चील, कौए और गिद्ध लाशो पर से मास नोचते-खसोटते थे। उन स्त्रियो और वृद्ध धृतराष्ट्र का विलाप सुनकर वे सब एक जोर का कोलाहल कर उठे मानो कह रहे हो कि अब विलाप करने से लाभ क्या ?

: ९८ :

सांत्वना कौन दे ?

सजय ने दु खी महाराज धृतराष्ट्र से कहा---"महाराज, दूसरे के सात्वता देने मात्र से दु खी का दु ख दूर नही हो सकता, यह तो अपने मन को दृढ करने से ही होगा। अत आप धीरज धरें और शात हो। जिन असख्य राजा-महाराजाओ ने आपके पुत्र की खातिर युद्ध में प्राण दिये है, उनके दूसरे मृत बन्धु-बान्धवो का अन्तिम सस्कार भी तो आपको करना है।"

धर्मात्मा विदुर ने भी धृतराष्ट्र को सान्त्वना देने की चेष्टा की। वह बोले--- "महाराज ! युद्ध में जिनकी वीरोचित मृत्यु हुई है उनके बारे में तो शोक करना ही नही चाहिए। आत्मा अजर एव अमर है। आत्माओ में न तो कोई भाई है, न बन्धु। उनमें आपसी नाता-रिश्ता कुछ नहीं होता। आपके जो पुत्र मर गये है उनका अब आपके साथ कोई वास्तविक बन्धुत्व नहीं रहा। जबतक कोई जीवित रहता है तभी तक उसका रिश्ता माना जाता है, परन्तु देहावसान होने के बाद कोई किसीका नहीं रहता। सभी प्राणी किसी अदृश्य स्थान से आकर ससार में प्रकट होते है और फिर किसी अदृश्य लोक में जाकर लीन हो जाते है। जीवन का यही नियम है,

अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना, क्षत्रियो का तो धर्म है ही ! इसलिए मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप उतावले न होइए। पांडव निर्दोष है। उनसे नाराज न होइए। सिर्फ एक ही घटना को लेकर धर्माधर्म का विवेचन करना ठीक नहीं है। भीम का काम न्याय-युक्त है या नहीं, इस बात का निर्णय करने से पहले दुर्योधन के किये अत्याचारो पर भी ध्यान देना होगा। अब तो कलियुग का प्रारम्भ हो रहा है, इसमें तो अन्याय का बदला अन्याय ही माना जायगा। अत दुर्योधन के किये कई अन्यायो और छल-प्रपचो के बदले यदि भीमसेन ने कटि के नीचे गदा मार भी दी, तो वह अधर्म कैसे हो सकता है ? इसी दुर्योधन की प्रेरणा से—— उसके उकसाने पर—— पीछे से बाण मारकर हमारे अभिमन्यु का धनुष काट दिया गया था। जब अर्जुन का पुत्र रथ-विहीन होकर बिना धनुष के जमीन पर खडा था, तभी उसपर बहुत-से महारथियो ने एक साथ हमला करके उसे मार डाला। भीमसेन इसको मार भी डालता तो यह कोई अधर्म या अन्याय नही होता। फिर यह भी तो सोचिये कि बार-बार इसने पाडवो पर अत्याचार किये और व्यर्थ में उनसे युद्ध भी छेडा। तब फिर यह बात कैसे भूली जा सकती है कि मौका आने पर भीमसेन अपनी प्रतिज्ञा का पालन न करेगा ? इस कारण भीम के इस कृत्य को एकदम अन्याय नहीं कहा जा सकता !"

श्रीकृष्ण की इन दलीलो का बलराम पर कोई असर हुआ हो ऐसा नहीं लगा। वे अपनी राय पर दृढ रहे और भीम के काम को न्याय-युक्त मानने को तैयार न हुए। फिर भी उन्होने अपने क्रोध को शात जरूर कर लिया।

वह बोले——"भैया कृष्ण ! तुम चाहे जो कहो, मुझे तो विश्वास है कि दुर्योधन को वीरोचित स्वर्ग प्राप्त होगा और भीमसेन के सुयश पर कलक की कालिमा लगी रहेगी। गदा-युद्ध के नियम का उल्लघन करने के कारण भीम को ससार सदा धिक्कारता रहेगा। और जिस स्थान पर ऐसा अन्याय हुआ हो वहा मैं तो पल भर भी नहीं ठहरूगा।" इतना कहकर

बलराम तुरन्त द्वारका को प्रस्थान कर गये ।

●

"युधिष्ठिर ! आप भी तो कुछ कहिये । इस बारे में आपकी क्या राय है ? आप क्यो चुप है ?" श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर की ओर घूमते हुए पूछा ।

युधिष्ठिर बोले— "श्रीकृष्ण ! भूमि पर मृत-तुल्य पडे दुर्योधन के सिर पर भीम का लात मारना मुझे अच्छा न लगा । यह बात ठीक है कि कौरवो ने हमपर बहुत अत्याचार किये और हमें असख्य कष्ट पहुचाये । और यह भी मैं जानता हू कि भीमसेन का मन क्रोध और दु ख के मारे बडा विकल हो जाता रहा है । उसी विकलता के कारण प्रतिज्ञा लेकर भीमसेन ने जिस ढ ग से दुर्योधन को मारा था वह कार्य न्याय-युक्त है या नही इसका मैं ठीक-ठीक निर्णय नहीं कर पाता । भीमसेन ने भारी मुसीबतें झेली है, इसलिए उसके इस काम के विरुद्ध एकाएक मुझसे कुछ कहते भी नहीं बनता है ।"

जब धर्म को क्षति पहुचती है तो सज्जनो का मन शात नहीं हो पाता । पर मन पशोपेश में जरूर पड जाता है । भीम के इस कार्य से धर्मराज की बुद्धि कुठित हो गई । विवेकशील अर्जुन भी चुप रहा । उसने न भीमसेन को सराहा, न उसे दोष ही दिया । लेकिन पास में जो दूसरे क्षत्रिय खडे थे, वे दुर्योधन की निन्दा करते नहीं थकते थे । यह श्रीकृष्ण को अच्छा न लगा । वे बोले —

"क्षत्रियगण ! आप लोगो को यह शोभा नही देता कि घायल होकर अधमरे दुर्योधन की आप यो निंदा करें । यह ठीक है कि नासमझी के कारण ही दुर्योधन की यह अवस्था हुई है । दुष्टो की सगति का ही यह प्रभाव था कि दुर्योधन भी दुष्ट बना, फिर भी यह राजा है— राजकुल का है । इसे वीर-मृत्यु प्राप्त हुई है । इसे हम यहीं छोडें और उसे अपने कर्मों के अनुसार फल पाने दें ।"

घायल और अधमरे तड़पते हुए दुर्योधन ने जब श्रीकृष्ण के ये बोल सुने

भीमसेन ने उनको तुरन्त उठाकर छाती से लगा लिया और सांत्वना व शाति की बातें कहकर बहुत आश्वासन दिया ।

धृतराष्ट्र भी युधिष्ठिर के पास आकर सात्वना देते हुए बोले— "बेटा, तुम्हे इस तरह शोक-विह्वल नही होना चाहिए । चलो उठो । अपने बन्धुओ और मित्रो के साथ राज्य का शासन करना ही तुम्हारा कर्तव्य है । शोक तो मुझे और गाधारी को करना चाहिए । तुमने तो क्षत्रियोचित धर्म का पालन करते हुए विजय प्राप्त की है । अब तुम्हे विजेता के योग्य कर्तव्यो का भी पालन करना होगा । अपनी नासमझी से मैने भैया विदुर की सलाह न मानी, उसीका यह घोर परिणाम हुआ है । दुर्योधन ने जो मूर्खताए की उनको सही समझकर मैने धोखा खाया । इस कारण मेरे सौ-के-सौ पुत्र उसी भाति काल-कवलित हो गये जैसे सपने में मिला धन नीद खुलने पर लोप हो जाता है । अब तुम्हीं मेरे पुत्र हो । इस कारण तुम्हे दुःखी न होना चाहिए ।

: १०१ :

ईर्ष्या

पितामह भीष्म को जलाजलि देने के बाद जब युधिष्ठिर शोकमग्न हो गये तो व्यासजी ने उन्हें शात करने के लिए एक कथा सुनाई ।

कोई चाहे कितना ही बडा क्यों न हो, कितना ही विवेकशील क्यो न हो, ईर्ष्या उसका पतन कर ही देती है । ईर्ष्या से लोग अपमानित हो जाते हैं । बृहस्पति देवताओ के आचार्य थे । सभी वेदो तथा शास्त्रो के ज्ञाता थे और बडे विद्वान् थे । पर उनको भी ईर्ष्यावश अपमानित होना पडा था ।

बृहस्पति के एक भाई थे जिनका नाम था सवर्त । वे बडे विद्वान् और सज्जन थे । इस कारण बृहस्पति को उनसे ईर्ष्या होने लगी । सज्जनो

से लोग उनकी सज्जनता के कारण ही जलते हैं ; यह बात कुछ विलक्षण मालूम होने पर भी सच है ।

अपनी ईर्ष्या के कारण बृहस्पति ने सवर्त को कई तरह की तकलीफें दीं । यहा तक कि तग आकर सवर्त घर से निकल भागे और पागलो का सा बाना धारण करके गाव-गाव घूमने-भटकने लगे ।

उन्हीं दिनो इक्ष्वाकु-वश के मरुत नाम के राजा ने महादेवजी को अपनी कठोर तपस्या से प्रसन्न करके उनके वरदान से हिमालय की किसी चोटी पर से सोने की राशि प्राप्त कर ली और उसको लेकर एक महायज्ञ करने का आयोजन किया । उसने देव-गुरु बृहस्पति से यज्ञ कराने की प्रार्थना की ।

पर बृहस्पति को भय हुआ कि इतना भारी यज्ञ करके राजा मरुत कहीं देवराज से अधिक यश न प्राप्त कर लें । इस कारण उन्होने मरुत को यज्ञ कराने से इन्कार कर दिया ।

राजा मरुत इससे निराश तो हुए पर उनको बृहस्पति के भाई सवर्त का पता लग गया और उन्होने उनसे यज्ञ की पुरोहिताई करने की प्रार्थना की । पहले तो सवर्त ने बृहस्पति के भय के कारण इन्कार किया पर राजा के बहुत आग्रह करने पर राजी हो गये ।

बृहस्पति को जब यह मालूम हुआ कि सवर्त राजा मरुत का यज्ञ कराने वाले है, तो उनकी ईर्ष्या और भी बढ गई । ईर्ष्या की आग उनके मन में इस प्रकार प्रबल हो उठी कि वे उससे दिन-पर-दिन दुबले होने लगे । उनके देह की कान्ति फीकी पड गई और उनकी बडी दयनीय दशा हो गई ।

आचार्य की यह दशा देखकर देवराज बहुत चिन्तित हुए । उन्होने बृहस्पति को बुलाया और उनका आदर-सत्कार करके कुशल पूछा और बोले— "आचार्य ! आप दुबले क्यो हो रहे है ? नींद तो आती है न ? सेवक लोग आपकी सेवा-टहल तो ठीक से कर रहे है न ? देवता लोग आपका यथोचित आदर तो कर रहे है न? कहीं किसीसे कोई अपराध तो नहीं हुआ ?"

प्रकार का तेज चमकने लगा। व्यासजी कहते है कि उस समय आकाश से दुर्योधन पर पुष्प-वर्षा होने लगी और गन्धर्वो ने दुदुभि बजाई। दिशाओ में एक अपूर्व ज्योति फैल गई।

यह सब देखकर श्रीकृष्ण और पाचो पाडव मन-ही-मन बडे लज्जित हुए। उन्हे लगा कि दुर्योधन के कथन में सचाई है।

"दुर्योधन ने सच ही कहा है। हम केवल धर्म-युद्ध करके उसपर विजय नहीं पा सकते थे। बिना कुछ प्रपच रचे, उसपर विजय पाना हमारे लिए सभव नहीं था।" श्रीकृष्ण ने कहा और सब अपने-अपने रथो पर सवार होकर अपनी छावनी की ओर चल दिये।

: ८६ :

अश्वत्थामा

दुर्योधन पर जो-कुछ बीती उसका हाल सुनकर अश्वत्थामा बहुत क्षुब्ध हो उठा। अपने पिता द्रोणाचार्य को मारने के लिए जो कुचक्र रचा गया था वह उसे भूला नहीं था। भीमसेन ने युद्ध के माने हुए नियमो के विरुद्ध कटि के नीचे दुर्योधन को गदा मारकर जो हराया, यह जानकर वह मारे क्रोध के और भी आपे-से बाहर हो गया। तुरंत वह उस स्थान पर जा पहुचा जहा दुर्योधन मृत्यु की प्रतीक्षा करता हुआ पडा था। दुर्योधन के सामने जाकर अश्वत्थामा ने दृढतापूर्वक प्रतिज्ञा की कि आज ही रात में वह पाडवो का बीज नष्ट करके रहेगा।

मृत्यु की प्रतीक्षा करते हुए दुर्योधन ने जब यह सुना तो उसका पुराना बैर फिर जागृत हो आया और उसे कुछ प्रसन्नता हुई। उसके आसपास खडे लोगो से कहकर अश्वत्थामा को कौरव-सेना का विधिवत् सेनापति बनाया और बोला—

"आचार्य पुत्र! यह मेरा शायद अतिम कार्य है। शायद आप ही

मुझे शाति दिला सकें। मै बडी आशा से आपकी राह देखता रहूगा।"

●

सूरज डूब चुका था, रात हो गई थी। घने जगल में चारो ओर अधेरा-ही-अधेरा था। एक बडे बरगद के पेड के नीचे अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा रात बिताने की गरज से ठहरे। कृप और कृतवर्मा बहुत थके हुए थे। इसलिए दोनो वहीं पडे-पडे सो गये। लेकिन अश्वत्थामा को नीद नहीं आई। क्रोध और द्वेष के मारे सर्प की भाति फुफकारता हुआ वह जागता रहा। रात का समय था। चारो ओर कई तरह के जानवरो की बोलिया सुनाई दे रही थीं। उनको सुनता-सुनता अश्वत्थामा विचार में डूब गया।

उस बरगद की शाखो पर कोओ के झुण्ड-के-झुण्ड बसे हुए थे। रात को वे सब सोये हुए थे कि इतने में एक बडे भारी गिद्ध ने आकर उन कौओ पर आक्रमण कर दिया। एक-एक करके उन सोते हुए कौओ पर चोच मारकर गिद्ध उनको चीरने-फाडने लगा। रात का वक्त था। गिद्ध को तो खूब दिखाई दे रहा था। लेकिन कौओ को अधेरे में कुछ सूझता नहीं था। वे चिल्ला-चिल्ला कर मरते गये। अकेले गिद्ध के आगे सैकडो कौओ की एक न चली।

यह देख अश्वत्थामा सोचने लगा— "अकेले गिद्ध ने इन सभी कौओ को सोते समय उनकी कमजोरी का लाभ उठाकर जिस तरह मार डाला है, ठीक वैसे ही मै भी इन अधम पाडवो को और मेरे पिता की हत्या करने वाले धृष्टद्युम्न को, उनके सगी साथियो समेत, एकसाथ ही क्यो न मार डालू? अभी रात का समय है और वे सब अपने शिविरो में पडे सोते होगे। इस समय उन सबका वध कर डालना बहुत सुगम होगा। यद्यपि ऐसा करना न्याय-युक्त नहीं है, पर उन्होने भी तो अधर्म का ही सहारा लेकर मेरे पूज्य पिता एव राजा दुर्योधन को मारा है। इस अधर्म का बदला अधर्म से ही क्यो न लू? इस गिद्ध ने तो मुझे समय पर उपदेश ही दिया

क्रोध में आकर कर्ण को शाप दिया कि युद्ध में तुम्हारे रथ का पहिया कीच में धस जायगा और तुम भी उसी तरह मारे जाओगे जैसे मेरी गाय मारी गई।"

●

परशुराम कर्ण को बहुत प्यार करते थे। उसे उन्होंने धनुर्विद्या की सारी बातें सिखलाईं और ब्रह्मास्त्र चलाने और वापस लेने का रहस्य भी बतला दिया।

इसी बीच एक दिन परशुराम कर्ण की गोद में सिर रखकर सो रहे थे। इतने में एक भौंरा कर्ण की जाघ के नीचे घुस गया और काटने लगा। परन्तु कर्ण टस-से-मस न हुआ। उसे भय हुआ कि कहीं हिलने-डुलने से परशुराम की नींद न टूट जाय। इतने में भौंरे के काटने के कारण कर्ण की जाघ से रक्त की धारा बहने लगी। गरम-गरम लहू के स्पर्श से परशुराम की नींद खुल गई। उन्होंने आखें खोली तो देखते क्या है कि इतना खून बह निकलने पर भी कर्ण अविचलित भाव से पीडा सहता हुआ बैठा है। परशुराम को समझते देर न लगी कि कर्ण ब्राह्मण नहीं, बल्कि क्षत्रिय है। उन्हे असीम क्रोध हुआ और उसी आवेश में क्षत्रियो के शत्रु परशुराम ने कर्ण को शाप दे दिया कि जो विद्या तुमने मुझसे सीखी वह ऐन वक्त पर तुम्हारे काम नहीं आयेगी।

●

कर्ण दानवीर भी था। एक बार इन्द्र ने ब्राह्मण के वेश में आकर कर्ण से उसके जन्मजात कवच-कुडलो की याचना की। कवच के न रहने पर उसकी शक्ति पहले की-सी न रहेगी, वह कमजोर हो जायगा, यह जानते हुए भी कर्ण ने तुरन्त कवच-कुडल देवराज को दे दिये।

कर्ण के बारे में ये सब बातें सुनाने के बाद नारदजी ने कहा—"युधिष्ठिर! कई कारणो के परिणामस्वरूप कर्ण का वध हुआ। माता कुन्ती से उसने प्रतिज्ञा की थी, परशुराम और गायवाले ब्राह्मण के शाप से वह कमजोर हो चुका था, भीष्म पितामह ने उसे महारथियो में गिनने से इन्कार करके उसका अपमान किया और शल्य ने उसकी अवहेलना की।

इन सब बातो से और श्रीकृष्ण के कौशल से कर्ण मारा गया। अत. तुम यह न समझो कि तुम्हारे ही कारण कर्ण का वध हुआ। तुम्हारा इतना व्यथित होना ठीक नहीं।"

पर नारदजी की इन बातो से युधिष्ठिर को सात्वना न हुई। यह देख कुन्ती बोली—"बेटा, तुम उदास न होओ। मैंने कर्ण को बहुत समझाया था कि दुर्योधन का साथ छोड दे। स्वय उसके पिता भगवान् सूर्य ने भी उसको यह सलाह दी थी। किंतु कर्ण ने किसीकी न सुनी। इस कारण अपनी मृत्यु का तो वह स्वय ही कारण बना। तुम अपने मन पर जरा भी बोझ न रखो।"

कुन्ती की बात सुनकर युधिष्ठिर ने कहा— "मा! तुमने कर्ण के जन्म के रहस्य को हमसे छिपा रक्खा। इस कारण हमें उनका असली परिचय न मिल सका। इसी कारण मुझे इतनी व्यथा हो रही है। यह सब तुम्हारे कारण ही हुआ। मै शाप देता हू कि आज से स्त्रिया किसी भी रहस्य को गुप्त न रख सकेंगी।"

यह कथा पौराणिको की कल्पना मालूम होती है। प्राय लोग समझते है कि स्त्रिया किसी भी रहस्य को हजम नहीं कर सकती। इसी लोकमत के आधार पर इस कहानी की सुन्दर ढग से कल्पना की गई है। किसी रहस्य को गुप्त रखने से दुनियादारी की दृष्टि से चाहे फायदा हो या नुकसान, पर धार्मिकता की दृष्टि से यह कोई इतना उत्तम गुण नहीं समझा जाता। अत स्त्रियो को इस बात की कमी महसूस करने की कोई आवश्यकता नही। किसी बात को गुप्त रखने की शक्ति न होना धर्म के पथ पर कभी रोडा नहीं बन सकता। सम्भव है स्वाभाविक प्रेम के कारण ही स्त्रिया किसी बात को गुप्त रखने में असमर्थ होती हो।

लोकमत ऐसा होने पर भी, कितनी ही स्त्रिया ऐसी है जो रहस्यो को भलीभाति गुप्त रख लिया करती है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि सभी पुरुषो में बात पचाने की सामर्थ्य होती है। भिन्न-भिन्न अभ्यासो व वृत्तियो के कारण प्रायः लोगो में जो भिन्नताए दिखाई देती हैं उन्हें स्त्रियो-

यह कहकर कृपाचार्य और कृतवर्मा भी अश्वत्थामा के साथ हो लिये।

●

आधी रात बीत चुकी थी। पाडवो के शिविरो में सभी सैनिक मीठी नींद में सो रहे थे। धृष्टद्युम्न भी कवच उतार कर अपने शिविर में बेसुध-सा सोया पडा था। इतने में अश्वत्थामा और उसके दोनो साथी वहा आ पहुचे। अश्वत्थामा पहले धृष्टद्युम्न के शिविर में घुसा और सोये पडे धृष्टद्युम्न पर उन्मत की भाति नाचने-कूदने लगा। अश्वत्थामा के पैरो तले कुचला जाकर धृष्टद्युम्न तत्काल ही मर गया। इसी प्रकार सभी पाचाल वीरो को अश्वत्थामा ने कुचलकर भयानक ढग से मार डाला और फिर द्रौपदी के पुत्रो की भी एक-एक करके इसी प्रकार हत्या कर दी।

कृपाचार्य और कृतवर्मा ने भी इस हत्याकाण्ड में अश्वत्थामा का हाथ बटाया। वहा तीनो ने ऐसे-ऐसे अत्याचार किये जैसे कि भारत में अबतक किसीने सुने भी न थे। यह कुकर्म करके तीनो ने वहा आग लगा दी। आग भडक उठी और शिविरो में फैल गई। इससे सोये पडे सारे सैनिक जाग उठे और भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगे। उन सबको अश्वत्थामा ने बडी निर्दयता से मार डाला और बोला—"हमारा कर्त्तव्य अब पूरा हुआ। जो कुछ करना था, वह कर चुके। अब दुर्योधन को जाकर यह खुशखबरी सुनानी चाहिए। यदि वह जीवित हुए तो यह समाचार सुनकर बहुत ही प्रसन्न होगे।" यह कह तीनो उस स्थान की ओर चले जहा दुर्योधन पडा मौत की घडिया गिन रहा था।

: ९७ :

अब विलाप करने से लाभ?

दुर्योधन के पास पहुचकर अश्वत्थामा ने कहा— "महाराज दुर्योधन! आप अभी जीवित है क्या? देखिये, आपके लिए मै ऐसा अच्छा समाचार

लाया हू कि जिसे सुनकर आपका कलेजा जरूर ही ठडा हो जायगा और आप शाति से मर सकेंगे। जो-कुछ हम लोगो ने किया है, उसे आप ध्यान से सुनें। सारे पाचाल खत्म कर दिये गये। पाण्डवो के भी सारे पुत्र मारे गये। पाडवो की सारी सेना का हमने सोते में ही सर्वनाश कर दिया। पाडवो के पक्ष में अब केवल सात ही व्यक्ति जीवित बच गये हैं। हमारे पक्ष में कृपाचार्य, कृतवर्मा और मैं—तीन रह गये है।"

यह सुनकर दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुआ और बोला—"गुरु भाई अश्वत्थामा! आपने मेरी खातिर वह काम किया है जो न भीष्म पितामह से हुआ और न जिसे महावीर कर्ण ही कर सके। अब मैं शाति से मर सकूगा।" इतना कहकर दुर्योधन ने अपने प्राण त्याग दिये।

●

रात के समय अचानक छापा मारकर अश्वत्थामा और उनके साथियो ने सारी पाडव-सेना को तहस-नहस कर दिया यह जानकर युधिष्ठिर को भारी व्यथा हुई। वह भाइयो से बोले—"अभी-अभी हमें विजय प्राप्त हुई कि इतने में बुरी तरह इस प्रकार हार खा गये। जो परास्त हुए थे, अब तो उनकी ही जीत हो गई। महापराक्रमी कर्ण के भी आक्रमण से द्रौपदी के जो पुत्र बच गये थे, वे ही अब हमारी असावधानी के कारण कीडो की भाति जल मरे। हमारी अवस्था ठीक उस व्यापारी की-सी हो गई जो बडे महासागर को बडी सुगमता से पार कर के अन्त में किसी छोटे-से नाले में डूबकर नष्ट हो जाता है।"

द्रौपदी की दयनीय अवस्था की क्या कहे कि जिसके पाचो बेटे एक साथ अचानक काल-कवलित हो गये! यह शोक उसके लिए असह्य हो उठा। धर्मराज युधिष्ठिर के पास आकर वह कातर स्वर में पुकार उठी—"क्या इस पापी अश्वत्थामा से बदला लेने वाला हमारे यहा कोई नहीं रहा?"

●

शोक-विह्वल द्रौपदी की हालत देखकर पाचो पाडव अश्वत्थामा की खोज में निकले। ढूढते-ढूढते आखिर उन्होंने गगा नदी के तट पर

व्यासाश्रम में छिपे अश्वत्थामा का पता लगा ही लिया। पाण्डवो और श्रीकृष्ण को देखते ही अश्वत्थामा घबरा गया। दिव्यास्त्रो और उनके मत्रो का तो अश्वत्थामा को ज्ञान था ही ! उसने धीरे से एक तिनका उठा लिया और उसे अभिमन्त्रित करके और "यह पाण्डवो के वश का आमूल नाश करदे" यह कहकर उस तिनके को हवा में छोड दिया। मत्र-बल से वह तिनका अस्त्र बन गया और सीधे राजकुमारी उत्तरा की कोख में जा पहुचा। पाडव-वश का नामो-निशान तक इससे मिट गया होता, लेकिन श्रीकृष्ण के प्रताप व अनुग्रह से उत्तरा के गर्भ की रक्षा हो गई। समय पाकर उत्तरा के गर्भ का यही पिंड महाराज परीक्षित के रूप में उत्पन्न हुआ और पाडवो के वश का एकमात्र चिह्न रह गया।

●

अश्वत्थामा और भीमसेन में युद्ध छिड गया, लेकिन अन्त में अश्वत्थामा हार गया। वह अपनी पराजय के चिह्न के रूप में अपने माथे का उज्ज्वल रत्न पाडवो को भेंट करके अरण्य में चला गया। भीमसेन ने वह रत्न द्रौपदी के हाथ में रखा और कहा— "कल्याणी ! यह रत्न तुम्हारी ही खातिर लाया हू। जिस दुष्ट ने तुम्हारे पुत्रो की हत्या की थी, वह परास्त कर दिया गया है। दुर्योधन मारा गया और दु शासन का लहू भी मैंने पिया। इस प्रकार मैंने अपनी सारी प्रतिज्ञाए पूरी कर लीं। आज मुझे बडी शाति अनुभव हो रही है।"

द्रौपदी भीमसेन का दिया वह रत्न युधिष्ठिर को देकर नम्रता के साथ बोली— "निष्पाप धर्मराज युधिष्ठिर ! इस रत्न को आप अपने मस्तक पर धारण करें।"

●

हस्तिनापुर का सारा नगर नि:सहाय स्त्रियो और अनाथ बच्चो के रोने-कलपने के हृदय-विदारक शब्दों से गूज उठा। युद्ध समाप्त होने के समाचार पाकर हजारो नि सहाय स्त्रियो को साथ लेकर वृद्ध महाराज धृतराष्ट्र कुरुक्षेत्र की समरभूमि में गये, जहा एक ही वश के लोगो ने—

भाई-बन्दो ने---एक-दूसरे से भयानक युद्ध करके अपने कुल का सर्वनाश कर डाला था। अन्धे धृतराष्ट्र ने बीती बातो का स्मरण करते हुए बहुत विलाप किया। पर उनके विलाप को वहा सुनता कौन ? वहा तो शृगाल और कुत्ते बेरोक-टोक घूम रहे थे और जो अबतक सबके प्रिय थे उनकी लाशो को बेरोकटोक खींचते-खाते थे। चील, कौए और गिद्ध लाशो पर से मास नोचते-खसोटते थे। उन स्त्रियो और वृद्ध धृतराष्ट्र का विलाप सुनकर वे सब एक जोर का कोलाहल कर उठे मानो कह रहे हो कि अब विलाप करने से लाभ क्या ?

: ९८ :

सांत्वना कौन दे?

सजय ने दु खी महाराज धृतराष्ट्र से कहा--"महाराज, दूसरे के सात्वता देने मात्र से दु खी का दु ख दूर नहीं हो सकता, यह तो अपने मन को दृढ करने से ही होगा। अत आप धीरज धरें और शात हो। जिन असख्य राजा-महाराजाओ ने आपके पुत्र की खातिर युद्ध में प्राण दिये है, उनके दूसरे मृत बन्धु-बान्धवो का अन्तिम सस्कार भी तो आपको करना है।"

धर्मात्मा विदुर ने भी धृतराष्ट्र को सान्त्वना देने की चेष्टा की। वह बोले--- "महाराज ! युद्ध में जिनकी वीरोचित मृत्यु हुई है उनके बारे में तो शोक करना ही नहीं चाहिए। आत्मा अजर एव अमर है। आत्माओ में न तो कोई भाई है, न बन्धु। उनमें आपसी नाता-रिश्ता कुछ नही होता। आपके जो पुत्र मर गये है उनका अब आपके साथ कोई वास्तविक बन्धुत्व नहीं रहा। जबतक कोई जीवित रहता है तभी तक उसका रिश्ता मान्ना जाता है, परन्तु देहावसान होने के बाद कोई किसीका नही रहता। सभी प्राणी किसी अदृश्य स्थान से आकर ससार में प्रकट होते है और फिर किसी अदृश्य लोक में जाकर लीन हो जाते हैं। जीवन का यही नियम है,

इसलिए रोना-कलपना व्यर्थ है । रणभूमि में लडते हुए जिन्होने प्राण त्यागे वे तो देवराज इन्द्र के अतिथि बनकर देवलोक में निवास करते हैं । इसलिए महाराज, बीती बातो पर विलाप करने से न तो आपको धर्म प्राप्त होगा, न अर्थ, न काम ही । मोक्ष की तो बात ही दूर है । अत आप शोक करना छोड दें ।"

इस तरह विदुर ने कई प्रकार से धृतराष्ट्र के व्यथित हृदय को शात करने की चेष्टा की ।

विदुर धृतराष्ट्र को सात्वना दे रहे थे कि इतने में भगवान् व्यास भी वहा आ पहुचे और धृतराष्ट्र को आश्वासन देने लगे। वे बोले—"बेटा ! मैं कोई नई बात तो तुम्हे बताने वाला नहीं हू जो तुम्हे विदित न हो । तुम तो जानते ही हो कि यह जीवन अनित्य है और पृथ्वी का भार उतारने के लिए यह युद्ध हुआ था । मैंने स्वय भगवान् विष्णु की दिव्यवाणी से यह बात जानी है । इस कारण इस युद्ध को टाला नही जा सकता था । अत अब धीरज धारण करो और युधिष्ठिर को ही अपना पुत्र समझो तथा उसको स्नेह-दान करते हुए सुखपूर्वक रहो ।" इतना कर व्यासदेव अतर्धान होगये ।

कुछ देर बाद धर्मराज युधिष्ठिर रोती-बिलखती हुई स्त्रियो के समूह को पार करते हुए भाइयो व श्रीकृष्ण सहित धृतराष्ट्र के पास आये व नम्रतापूर्वक हाथ जोडे खडे रहे । शोकविह्वल राजा धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को गले तो लगाया; पर वह स्नेह-पूर्ण आलिंगन न था ।

इसके बाद धृतराष्ट्र ने भीम को अपने पास बुलाया । धृतराष्ट्र के हाव-भाव से श्रीकृष्ण ने अदाजा लगाया कि इस समय धृतराष्ट्र पुत्रशोक के कारण क्रोध में हैं । इससे भीम को उनके पास भेजना ठीक न होगा । अत उन्होंने भीमसेन को तो एक तरफ हटा लिया और उसके स्थान पर लोहे की बनी एक प्रतिमा अन्धे राजा धृतराष्ट्र के आगे लाकर खडी कर दी । श्रीकृष्ण का भय सही साबित हुआ । वृद्ध राजा ने प्रतिमा को भीम समझकर ज्योही छाती से लगाया त्योही उन्हे याद हो आया कि मेरे कितने ही

प्यारे बेटों को इसी भीम ने मार डाला है । इस विचार के मन में आते ही धृतराष्ट्र क्षुब्ध हो उठे और उस प्रतिमा को जोरो से छाती से लगाकर कस लिया । प्रतिमा चूर-चूर हो गई ।

पर प्रतिमा के चूर हो जाने के बाद धृतराष्ट्र को खयाल आया कि मैंने यह क्या कर डाला ? वह दु खी हो गये और शोक-विह्वल होकर विलाप करने लगे— "हाय ! क्रोध में आकर मूर्खतावश मैंने यह क्या कर लिया । भीम की हत्या कर दी !" और यह कह कर बुरी तरह विलाप करने लगे ।

इसपर श्रीकृष्ण ने धृतराष्ट्र से कहा— "राजन् ! क्षमा करें । मुझे पहले ही से मालूम था कि क्रोध में आकर आप ऐसा काम करेंगे । इसलिए उस अनर्थ को टालने के लिए मैंने पहले से ही उचित प्रबन्ध कर रखा था । आपने जिसको नष्ट किया वह भीमसेन का शरीर नहीं, बल्कि लोहे की मूर्ति थी । आपके क्रोध का ताप उस प्रतिमा पर ही उतर कर शात हो जाय । भीमसेन अभी जीवित है ।"

यह सुन धृतराष्ट्र के मन को धीरज बधा और उन्होंने अपना क्रोध शात कर लिया । उन्होंने सभी पाडवो को आशीर्वाद देकर विदा किया । धृतराष्ट्र से आज्ञा पाकर पाचो भाई श्रीकृष्ण के साथ देवी गाधारी के पास गये ।

●

पाडवो के जाने से पहले ही व्यासजी गाधारी के पास पहुच चुके थे और शोकातुर गाधारी को सान्त्वना देते हुए कह रहे थे— "देवी ! पाडवो पर नाराज न होओ । उनके प्रति मन में द्वेष को स्थान न दो । याद है तुम्हे, युद्ध छिडने से पहले तुम्हींने कहा था कि जहा धर्म होगा, जीत भी उन्हींकी होगी । और आखिर वही हुआ । जो बातें हो चुकी है उनका विचार करके मन में बैर रखना उचित नहीं । तुम्हारी सहनशीलता और धैर्य का यश ससार भर में फैला हुआ है । अब तुम अपने स्वभाव को न बदलना ।"

गान्धारी बोलीं— "भगवन् ! मै जानती हूं कि पुत्रों के वियोग के दु ख से मेरी बुद्धि अस्थिर हो उठी है, परन्तु फिर भी पाडवो के सौभाग्य पर मैं ईर्ष्या नहीं करती । आखिर वे भी मेरे लिए पुत्रो के ही बराबर हैं । मै जानती हू कि दु शासन और शकुनि ही इस कुल के नाश के मूल कारण थे । और यह भी मुझे विदित है कि अर्जुन और भीम निर्दोष हैं । अपनी सत्ता के मद के कारण मेरे पुत्रो ने यह युद्ध छेडा था । अत उनका मारा जाना उचित ही था और इसके लिए मैं पाडवो को कुछ भी दोष नहीं देना चाहती । परन्तु एक बात सुनकर मुझे खेद व शोक हुआ । श्रीकृष्ण के देखते-देखते, भीमसेन ने दुर्योधन को गदा-युद्ध के लिए ललकारा, दोनो में युद्ध हुआ। यहा तक भी ठीक था। भीमसेन जानता था कि गदा-युद्ध में वह दुर्योधन की बराबरी नहीं कर सकता । लेकिन भीम ने नियम के विरुद्ध दुर्योधन की कमर के नीचे गदा मारकर उसे जो गिरा दिया वह मुझसे नहीं सहा जाता ।"

भीम को भी दुर्योधन को अनीति से मारने का दु'ख हो रहा था। गाधारी की बातें सुनकर उसे दु ख हुआ और उनसे क्षमा-याचना करता हुआ बोला, "मा ! युद्ध में अपने बचाव के लिए मुझसे ऐसा हुआ । वह धर्म हुआ हो या अधर्म, आप उसके लिए मुझे क्षमा कर दें । धर्म-युद्ध करके दुर्योधन से जीत सकना सम्भव न था, वह अजेय था। यही कारण था कि मुझे अधर्म बरतना पडा। पर यह भी तो सोचिये कि दुर्योधन ने सीधे-सादे युधिष्ठिर को जुआ खिलवाकर धोखा दिया और उनका राज्य छीन लिया। उसने हम सबको तरह-तरह के कष्ट पहुचाये और हमारे विरुद्ध कुचक्र रचे। बहुत समझाने-बुझाने पर भी उसने हमारा राज्य न लौटाने का हठ किया। द्रौपदी का भरी सभा में जो घोर अपमान हुआ वह आपको अच्छी तरह मालूम ही है । उस समय मुझे इतना गुस्सा आया था कि उसी सभा में मैंने दुर्योधन का वध कर दिया होता । तब शायद आप भी उसे अन्याय नहीं समझतीं । पर मै ऐसा नहीं कर सका, क्योकि उस समय हम धर्मराज युधिष्ठिर के कारण प्रतिज्ञा में बधे हुए थे । अतएव कुछ कर नहीं सकते

थे। मन मार कर खडे-खडे देखते रहे। मैंने युद्ध-क्षेत्र में उसी अपमान का बदला लिया है। हा, कुछ अनीति जरूर बरतनी पडी। उसके लिए मा, आप हमपर क्रोध न करें। पर अपने मन को शात करें और हमें क्षमा ही कर दें।"

यह सुन गाधारी करुण स्वर में बोलीं—"बेटा! यदि तुमने मेरे सौ बेटो में से किसी एक को भी जीवित छोडा होता, तो हम दोनो उसीके आसरे सन्तोष कर लेते। लेकिन तुमने तो मेरे सौ-के-सौ बेटो को मार डाला।" कहते-कहते बूढी गाधारी का गला भर आया। पर थोडी ही देर में वह सभल गई। उसे क्रोध बहुत आ रहा था। उसने युधिष्ठिर को बुलाया। युधिष्ठिर डरते-डरते गाधारी के आगे आये और हाथ जोडकर खडे हो गये। यद्यपि गाधारी ने आखो पर कपडे की पट्टी बाध रक्खी थी, फिर भी युधिष्ठिर की उनकी ओर देखने की हिम्मत नहीं पड रही थी। वे सिर झुका कर खडे हो गये और बडी नम्रता के साथ बोले—"देवी, जिस अत्याचारी ने आपके पुत्रो की हत्या कराई, वही युधिष्ठिर आपको प्रणाम कर रहा है, और वह यदि आपके शाप के योग्य हो तो उसे शाप दीजिये। सचमुच मै बडा कृतघ्न हू। अब मुझे न तो राज्य का लोभ है, न प्राणो की ममता रही है।" यह कहते-कहते युधिष्ठिर गाधारी के पावो में गिर पडे।

युधिष्ठिर की नम्र बातो से गाधारी द्रवित हो उठी। वह कुछ न बोली। उसने युधिष्ठिर की ओर देखा भी नहीं। उसे भय था कि युधिष्ठिर पर मेरी क्रुद्ध दृष्टि पड जाय तो वह कहीं भस्म न हो जाय। इसलिए उसने अपना मुख दूसरी तरफ फेर लिया। फिर भी युधिष्ठिर के पाव की उग-लियो पर उसकी जरा-सी निगाह पड़ ही गई। निगाह पडते ही उनकी उगलिया काली-काली और विकृत हो गईं।

गाधारी का यह शोकोद्वेग देखकर अर्जुन भी डर गया और श्रीकृष्ण के पीछे ही खडा रहा। कुछ बोला नहीं।

महाबुद्धिमती और साध्वी गाधारी ने अपने दग्ध हृदय को धीरे-धीरे शात कर लिया और पाडवो को आशीर्वाद देकर विदा किया।

युधिष्ठिर आदि सब वहासे चले गये, पर द्रौपदी वहीं गांधारी के पास ही रही। अपने पाचो सुकुमार बालको के मारे जाने के कारण द्रौपदी शोक-विह्वल होकर रो रही थी। उसकी उस अवस्था पर गाधारी को बडी दया आई। वह बोली— "बेटी, दुखी न होओ। मै और तुम एक ही जैसी है। हमें सान्त्वना देने वाला कौन है ? इस सबकी दोषी तो मै हू। मेरे ही दोष के कारण आज इस कुल का सर्वनाश हुआ है। पर अब अपने को भी दोष देने से क्या लाभ ?"

: ६६ :

युधिष्ठिर का पश्चात्ताप

कुरुक्षेत्र के युद्ध में मारे गये बन्धु-बाधवो की आत्म-शाति के लिए तिलाजलि देने के बाद पाचो पाडव गगा-किनारे एक महीने तक ठहरे।

इन्हीं दिनो एक रोज नारद मुनि वहा पधारे। उन्होने युधिष्ठिर से प्रश्न किया— "धर्मपुत्र ! भगवान् कृष्ण के अनुग्रह, धनजय के बाहुबल और अपनी धर्मपरायणता के बल से तुम्हे विजय का यश प्राप्त हुआ और सारा राज्य अब तुम्हारा ही हो गया। क्यो अब तो तुम सन्तुष्ट हो न ?"

युधिष्ठिर ने रुधे हुए स्वर से कहा— "भगवन्, यह बात सच है कि सारा राज्य मेरे अधीन हो गया है। फिर भी इस विजय को मै भारी पराजय ही समझता हू। जिसमें मेरे बन्धु-बाधव मारे गये, जिसकी प्राप्ति के लिए हमें अपने प्यारे पुत्रो की बलि चढानी पडी उसे विजय कैसे कहा जाय ? मुनिवर, जो अपने व्रत पर आजीवन अटल रहे और जिनकी युद्ध-कुशलता पर सारा ससार मुग्ध था, अपने उस बड़े भाई कर्ण को शत्रु समझकर हमने मार डाला। राज्य के लोभ में पड़कर ही तो हमने यह घोर पाप कर डाला। जिस बीर ने अपनी माता से की हुई प्रतिज्ञा का पालन करते हुए हम लोगो को प्राणो की भीख दी थी, अपने उसी भाई को हमने अन्याय

से मारा। आप ही बताइये कि मुझसे बढकर नीच और दुरात्मा और कौन हो सकता है ? महर्षि, आप सन्तुष्ट होने की बात पूछते है ? मेरा हृदय तो आज जिस व्यथा से भरा हुआ है उसका कहना ही कठिन है। कर्ण के पैर माता कुन्ती के पैरो से बिल्कुल मिलते थे। राजसभा में जब उन्होने हमारा अपमान किया था, तब मुझे क्रोध तो बहुत आ रहा था; किन्तु ज्योही उनके पैरो पर मेरी दृष्टि पडती थी, न जाने कैसे मेरा क्रोध शात हो जाता था। जब यह पता चला कि कर्ण हमारा बडा भाई था तब उस बात का रहस्य समझ में आया।"

इतना कहकर युधिष्ठिर ने दीर्घ नि श्वास लिया। वे यह बात याद कर करके बडे व्यथित हो जाते थे। इसपर नारद मुनि ने कर्ण के शाप पाने का सारा हाल युधिष्ठिर को सुनाया और उनकी व्यथा दूर करने की चेष्टा की।

युवावस्था में कर्ण को जब यह बात मालूम हुई कि अर्जुन अस्त्र-शस्त्रों के ज्ञान में उससे बहुत बढा-चढा है तो उसने द्रोणाचार्य से प्रार्थना की कि वह उसे ब्रह्मास्त्र चलाना सिखाने की कृपा करें। आचार्य द्रोण ने उसकी प्रार्थना अस्वीकार करते हुए कहा कि ब्रह्मास्त्र की विद्या या तो किसी शीलवान ब्राह्मण को ही सिखाई जा सकती है या किसी ऐसे क्षत्रिय को, जिसने कठिन तपस्या करके अपने आपको पवित्र बना लिया हो। इसके अलावा और किसीको ब्रह्मास्त्र की विद्या नहीं सिखलाई जा सकती। यह सुन कर्ण महेन्द्र पर्वत पर गया जहा परशुराम आश्रम बनाकर रहा करते थे। कर्ण ने यह भी सुन रक्खा था कि परशुराम केवल ब्राह्मणो को ही शिष्य बनाते है। इस कारण कर्ण ने परशुराम से झूठमूठ कह दिया कि मै ब्राह्मण हू। परशुराम ने उसे शिष्य बना लिया। परशुराम के साथ रहकर कर्ण धनुर्वेद और अस्त्रो की शिक्षा प्राप्त करने लगा।

एक दिन कर्ण अकेला बाण चलाने का अभ्यास कर रहा था कि इतने में दैवयोग से आश्रम के नजदीक चरने वाली एक गाय को उसका बाण लग गया और गाय वहीं मर गई। जिस ब्राह्मण की वह गाय थी उसने

क्रोध में आकर कर्ण को शाप दिया कि युद्ध में तुम्हारे रथ का पहिया कीच में धस जायगा और तुम भी उसी तरह मारे जाओगे जैसे मेरी गाय मारी गई।"

●

परशुराम कर्ण को बहुत प्यार करते थे। उसे उन्होंने धनुर्विद्या की सारी बातें सिखलाईं और ब्रह्मास्त्र चलाने और वापस लेने का रहस्य भी बतला दिया।

इसी बीच एक दिन परशुराम कर्ण की गोद में सिर रखकर सो रहे थे। इतने में एक भौरा कर्ण की जाघ के नीचे घुस गया और काटने लगा। परन्तु कर्ण टस-से-मस न हुआ। उसे भय हुआ कि कहीं हिलने-डुलने से परशुराम की नींद न टूट जाय। इतने में भौंरे के काटने के कारण कर्ण की जाघ से रक्त की धारा बहने लगी। गरम-गरम लहू के स्पर्श से परशुराम की नींद खुल गई। उन्होंने आखें खोली तो देखते क्या है कि इतना खून बह निकलने पर भी कर्ण अविचलित भाव से पीडा सहता हुआ बैठा है। परशुराम को समझते देर न लगी कि कर्ण ब्राह्मण नहीं, बल्कि क्षत्रिय है। उन्हे असीम क्रोध हुआ और उसी आवेश में क्षत्रियो के शत्रु परशुराम ने कर्ण को शाप दे दिया कि जो विद्या तुमने मुझसे सीखी वह ऐन वक्त पर तुम्हारे काम नहीं आयेगी।

●

कर्ण दानवीर भी था। एक बार इन्द्र ने ब्राह्मण के वेश में आकर कर्ण से उसके जन्मजात कवच-कुडलो की याचना की। कवच के न रहने पर उसकी शक्ति पहले की-सी न रहेगी, वह कमजोर हो जायगा, यह जानते हुए भी कर्ण ने तुरन्त कवच-कुडल देवराज को दे दिये।

कर्ण के बारे में ये सब बातें सुनाने के बाद नारदजी ने कहा—"युधिष्ठिर! कई कारणो के परिणामस्वरूप कर्ण का वध हुआ। माता कुन्ती से उसने प्रतिज्ञा की थी, परशुराम और गायवाले ब्राह्मण के शाप से वह कमजोर हो चुका था, भीष्म पितामह ने उसे महारथियो में गिनने से इन्कार करके उसका अपमान किया और शल्य ने उसकी अवहेलना की।

इन सब बातों से और श्रीकृष्ण के कौशल से कर्ण मारा गया। अत. तुम यह न समझो कि तुम्हारे ही कारण कर्ण का वध हुआ। तुम्हारा इतना व्यथित होना ठीक नहीं।"

पर नारदजी की इन बातो से युधिष्ठिर को सात्वना न हुई। यह देख कुन्ती बोली—"बेटा, तुम उदास न होओ। मैंने कर्ण को बहुत समझाया था कि दुर्योधन का साथ छोड दे। स्वय उसके पिता भगवान् सूर्य ने भी उसको यह सलाह दी थी। किंतु कर्ण ने किसीकी न सुनी। इस कारण अपनी मृत्यु का तो वह स्वय ही कारण बना। तुम अपने मन पर जरा भी बोझ न रखो।"

कुन्ती की बात सुनकर युधिष्ठिर ने कहा— "मा! तुमने कर्ण के जन्म के रहस्य को हमसे छिपा रक्खा। इस कारण हमें उनका असली परिचय न मिल सका। इसी कारण मुझे इतनी व्यथा हो रही है। यह सब तुम्हारे कारण ही हुआ। मै शाप देता हू कि आज से स्त्रिया किसी भी रहस्य को गुप्त न रख सकेंगी।"

यह कथा पौराणिको की कल्पना मालूम होती है। प्राय लोग समझते है कि स्त्रिया किसी भी रहस्य को हजम नहीं कर सकतीं। इसी लोकमत के आधार पर इस कहानी की सुन्दर ढग से कल्पना की गई है। किसी रहस्य को गुप्त रखने से दुनियादारी की दृष्टि से चाहे फायदा हो या नुकसान, पर धार्मिकता की दृष्टि से यह कोई इतना उत्तम गुण नहीं समझा जाता। अत' स्त्रियो को इस बात की कमी महसूस करने की कोई आवश्यकता नही। किसी बात को गुप्त रखने की शक्ति न होना धर्म के पथ पर कभी रोडा नहीं बन सकता। सम्भव हैं स्वाभाविक प्रेम के कारण ही स्त्रिया किसी बात को गुप्त रखने में असमर्थ होती हो।

लोकमत ऐसा होने पर भी, कितनी ही स्त्रिया ऐसी हैं जो रहस्यो को भलीभाति गुप्त रख लिया करती है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि सभी पुरुषो में बात पचाने की सामर्थ्य होती हैं। भिन्न-भिन्न अभ्यासो व वृत्तियो के कारण प्राय. लोगो में जो भिन्नताए दिखाई देती है उन्हे स्त्रियो-

चित्त या पुरुषोचित कहकर विभक्त कर देना संसार का स्वभाव है।

: १०० :

शोक और शान्ति

युधिष्ठिर के मन में यह बात समा गई थी कि हमने अपने बन्धु-बाधवो को मारकर राज्य पाया है। इससे उनको भारी व्यथा रहने लगी। वे यही सोचते रहते। अन्त में उन्होने सन्यास लेकर वन में जाने का निश्चय किया ताकि इस पाप का प्रायश्चित्त हो सके। इस विचार से उन्होने सब भाइयो को बुलाकर कहा—"भाइयो! मुझे न राज करने की चाह है, न भोग की। अब तुम्हीं सब इस राज्य को सभालो। मै तो वन में जाकर तपस्या करना चाहता हू।"

यह सुनकर सब भाइयो पर मानो वज्र गिर गया। वे बहुत चिंतित हो उठे और बारी-बारी से सब युधिष्ठिर को समझाने लगे।

अर्जुन ने गृहस्थ-धर्म की श्रेष्ठता पर प्रकाश डाला। उसने कहा कि गृहस्थ रहते हुए किस प्रकार बहुत ही अच्छे पुण्य कर्म किये जा सकते है।

भीमसेन ने कटु वचनो से काम लिया। वह बोला— "महाराज, आप भी उन्ही मन्द-मति लोगो की तरह बातें करने लगे है जो शस्त्रो की रट लगाते है और धर्म का रहस्य जाने बगैर धर्म की दुहाई देते है। सन्यास क्षत्रियो का धर्म नहीं है, बल्कि अपने कर्तव्यो का भलीभांति पालन करते हुए जीवन बिताना ही क्षत्रिय का धर्म है।"

नकुल ने प्रमाणपूर्वक यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि कर्म-मार्ग न केवल सुगम है बल्कि उचित भी, जबकि सन्यास-मार्ग कटीला और दुष्कर है। इस तरह देर तक युधिष्ठिर से वाद-विवाद होता रहा।

सहदेव ने भी नकुल के पक्ष का समर्थन किया और अन्त में अनुरोध

किया कि हमारे पिता, माता, आचार्य, बन्धु सब कुछ आप ही है। हमारी ढिठाई क्षमा करें।

द्रौपदी भी इस वाद-विवाद में पीछे न रही। वह बोली—"महाराज! दुर्योधन और उसके पक्ष के लोगो को मारना बिलकुल ही न्याय-सगत था। उसपर पछताने की आवश्यकता ही नहीं। कुकर्म करने वालो को दड देना राजा के कर्तव्यो में से ही है और उसका पालन करना उनके लिए अनिवार्य होता है। जिन्होने पाप-कर्म किये थे उन्हीको तो आपने दड दिया है। तब फिर उसपर पश्चात्ताप करने की आवश्यकता ही क्या है ? अब तो आपका यही कर्तव्य है कि राजोचित धर्म का पालन करते हुए राज्य-शासन करें और सोच न करें।"

इसी चर्चा के बीच भगवान् व्यास भी वहा आ पहुचे और उन्होने इतिहासो और शास्त्रो से कई प्रमाण देकर युधिष्ठिर की शका दूर करने की चेष्टा की। उन्हें राज्य-शासन का भार वहन करने को राजी कर लिया। इसके बाद हस्तिनापुर में युधिष्ठिर का बडी धूमधाम के साथ राज्याभिषेक हुआ।

शासन-सूत्र ग्रहण करने से पहले युधिष्ठिर महात्मा भीष्म के पास गये जो कुरुक्षेत्र में शर-शैया पर पडे तपस्या करते हुए मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे थे। पितामह भीष्म ने युधिष्ठिर को धर्म का मर्म समझाया।

युधिष्ठिर को भीष्म पितामह ने जो धर्मोपदेश दिया वह महाभारत के शातिपर्व में है। इस महाग्रथ का यह एक सुविख्यात भाग है और अपने में सपूर्ण शास्त्र है।

युधिष्ठिर को उपदेश देने के बाद भीष्म पितामह ने शरीर त्यागा। परपरागत प्रथा के अनुसार युधिष्ठिर ने गगा में पितामह का जलतर्पण किया। तर्पण के बाद जैसे ही वे जल से निकले और किनारे पर आये कि उनके मन में अतीत की घटनाओ का स्मरण हो आया। वे फिर शोक-विह्वल हो उठे और धडाम से पृथ्वी पर गिर पडे जैसे शिकारी के बाण लगने पर हाथी गिरता है।

भीमसेन ने उनको तुरन्त उठाकर छाती से लगा लिया और सांत्वना व शांति की बातें कहकर बहुत आश्वासन दिया ।

धृतराष्ट्र भी युधिष्ठिर के पास आकर सात्वना देते हुए बोले— "बेटा, तुम्हे इस तरह शोक-विह्वल नही होना चाहिए । चलो उठो । अपने बन्धुओ और मित्रो के साथ राज्य का शासन करना ही तुम्हारा कर्तव्य है । शोक तो मुझे और गाधारी को करना चाहिए । तुमने तो क्षत्रियोचित धर्म का पालन करते हुए विजय प्राप्त की है । अब तुम्हे विजेता के योग्य कर्तव्यो का भी पालन करना होगा । अपनी नासमझी से मैंने भैया विदुर की सलाह न मानी, उसीका यह घोर परिणाम हुआ है । दुर्योधन ने जो मूर्खताए की उनको सही समझकर मैंने धोखा खाया । इस कारण मेरे सौ-के-सौ पुत्र उसी भाति काल-कवलित हो गये जैसे सपने में मिला धन नींद खुलने पर लोप हो जाता है । अब तुम्हीं मेरे पुत्र हो । इस कारण तुम्हे दु खी न होना चाहिए ।

: १०१ :

ईर्ष्या

पितामह भीष्म को जलाजलि देने के बाद जब युधिष्ठिर शोकमग्न हो गये तो व्यासजी ने उन्हें शात करने के लिए एक कथा सुनाई ।

कोई चाहे कितना ही बडा क्यो न हो, कितना ही विवेकशील क्यो न हो, ईर्ष्या उसका पतन कर ही देती है । ईर्ष्या से लोग अपमानित हो जाते है । बृहस्पति देवताओ के आचार्य थे । सभी वेदो तथा शास्त्रो के ज्ञाता थे और बडे विद्वान् थे । पर उनको भी ईर्ष्यावश अपमानित होना पडा था ।

बृहस्पति के एक भाई थे जिनका नाम था सवर्त । वे बडे विद्वान् और सज्जन थे । इस कारण बृहस्पति को उनसे ईर्ष्या होने लगी । सज्जनो

से लोग उनकी सज्जनता के कारण ही जलते हैं, यह बात कुछ विलक्षण मालूम होने पर भी सच है।

अपनी ईर्ष्या के कारण बृहस्पति ने सवर्त को कई तरह की तकलीफें दीं। यहा तक कि तग आकर सवर्त घर से निकल भागे और पागलो का सा बाना धारण करके गाव-गाव घूमने-भटकने लगे।

उन्ही दिनो इक्ष्वाकु-वश के मरुत नाम के राजा ने महादेवजी को अपनी कठोर तपस्या से प्रसन्न करके उनके वरदान से हिमालय की किसी चोटी पर से सोने की राशि प्राप्त कर ली और उसको लेकर एक महायज्ञ करने का आयोजन किया। उसने देव-गुरु बृहस्पति से यज्ञ कराने की प्रार्थना की।

पर बृहस्पति को भय हुआ कि इतना भारी यज्ञ करके राजा मरुत कहीं देवराज से अधिक यश न प्राप्त कर लें। इस कारण उन्होने मरुत को यज्ञ कराने से इन्कार कर दिया।

राजा मरुत इससे निराश तो हुए पर उनको बृहस्पति के भाई सवर्त का पता लग गया और उन्होने उनसे यज्ञ की पुरोहिताई करने की प्रार्थना की। पहले तो सवेर्त ने बृहस्पति के भय के कारण इन्कार किया पर राजा के बहुत आग्रह करने पर राजी हो गये।

बृहस्पति को जब यह मालूम हुआ कि सवर्त राजा मरुत का यज्ञ कराने वाले है, तो उनकी ईर्ष्या और भी बढ गई। ईर्ष्या की आग उनके मन में इस प्रकार प्रबल हो उठी कि वे उससे दिन-पर-दिन दुबले होने लगे। उनके देह की कान्ति फीकी पड गई और उनकी बडी दयनीय दशा हो गई।

आचार्य की यह दशा देखकर देवराज बहुत चिन्तित हुए। उन्होने बृहस्पति को बुलाया और उनका आदर-सत्कार करके कुशल पूछा और बोले— "आचार्य! आप दुबले क्यो हो रहे है? नीद तो आती है न? सेवक लोग आपकी सेवा-टहल तो ठीक से कर रहे है न? देवता लोग आपका यथोचित आदर तो कर रहे है न? कहीं किसीसे कोई अपराध तो नही हुआ?"

बृहस्पति ने उत्तर दिया—"देवराज! कोमल शैय्या पर आराम से सोया करता हू। सेवक लोग प्रेमपूर्वक सेवा-टहल कर रहे है। देवताओ के व्यवहार से भी कोई अन्तर नहीं आया है।" पर वे इतना ही कह सके। आगे उनसे कुछ नहीं बोला गया। दु ख के कारण उनका गला रुध गया।

देवगुरु का यह हाल देखकर देवराज का जी भर आया। स्नेहपूर्वक पूछा— "गुरुदेव क्या बात है जो आप इतने व्यथित हो रहे है? आपका रग फीका पड गया है और आप दुबले भी बहुत हो गये है। आखिर बात क्या है?"

देवराज के बहुत आग्रह करने पर बृहस्पति ने कहा—"मेरा भाई सवर्त राजा मरुत के महायज्ञ की पुरोहिताई करने वाला है। यह मुझसे सहन नहीं हो रहा है। यही कारण है कि मै दु खी और दुबला हो रहा हू।"

यह सुनकर देवराज अचभे में आ गये। वे बोले—"ब्राह्मण-श्रेष्ठ! आपको तो सारी इच्छित वस्तुए प्राप्त है। आप हम देवताओ के पुरोहित और मन्त्री है। आप इतने बडे बुद्धिमान है कि आपकी सलाह का सभी देवता मान करते है। तो फिर बिचारा सवर्त आपका बिगाड ही क्या सकता है? आप व्यर्थ ही उससे क्यो दु खी हो रहे है?"

पर-उपदेश-कुशल इन्द्र ने अपने अतीत को मानो बिसार ही दिया और स्वय आचार्य बृहस्पति को ईर्ष्या न करने का उपदेश देने लगा। बृहस्पति ने उनको उनकी भूली हुई बातो का स्मरण कराकर कहा— "देवराज! अपने किसी शत्रु की बढती देखकर तुम कभी चैन से सोये हो? मेरी भी वही बात है। तुम्हारा अब यही कर्तव्य है कि किसी तरह सवर्त की बढती रोको और मेरी रक्षा करो।"

यह सुन देवराज ने अग्नि-देव को बुलाकर कह दिया कि राजा मरुत के यहां जाकर किसी तरह उसका महायज्ञ रोकने का प्रयत्न करें।

आज्ञा पाकर अग्नि-देव मृत्युलोक को रवाना हुए और जब

स्वय अग्निदेव ही क्रोध में आजाय तो फिर पूछना ही क्या। रास्ते के लहलहाते पेड-पौधो को जलाते-उजाडते हुए और अपनी भयानक गर्जना से पृथ्वी को कपाते हुए अग्निदेव प्रबल वेग से चले और राजा मरुत के आगे देवरूप में ही जा खडे हुए।

अग्नि-देव को अपने यहा आया देखकर राजा मरुत के आनन्द की सीमा नहीं रही। वह दैवी अतिथि का सत्कार करने दौडा।

"कोई है? जल्दी से लाओ आसन, अर्घ्य, पाद्य और गाय! शीघ्रता करो!" राजा ने परिचरो को आज्ञा देकर कहा।

सत्कार व पूजा हो चुकने के बाद अग्निदेव ने अपने आने का कारण बताया और बोले—"राजन्, सवर्त को अपने यहासे हटा दो। यदि तुम चाहो तो मै स्वय बृहस्पति को ही पुरोहिताई करने को राजी कर दूंगा।"

सवर्त भी वहीं उपस्थित थे। अग्निदेव की बात सुनकर वह क्रोध में आ गये। नियमपूर्वक ब्रह्मचर्य-व्रत पालन करने के कारण सवर्त की शक्ति और तेज वृद्धि पर थे।

वह अग्नि से बोले—"देखो अग्निदेव, आप ऐसी बातें न करें। मै आपको सावधान किये देता हू। मुझे अगर क्रोध आ गया तो आपको मै अपनी दृष्टि से ही जलाकर भस्म कर दूगा।"

ब्रह्मचर्य में तो वह शक्ति होती है जिससे आग भी भस्म हो जाती है।

सवर्त की बातें सुनते ही अग्निदेव भय से पीपल के पत्ते की तरह कांपते हुए वापस इन्द्र-भवन को लौट आये और देवराज को सारा हाल सुनाया।

लेकिन देवराज को उनकी बातो पर विश्वास न हुआ। वह बोले "यह कैसी अजीब बात बता रहे हैं अग्निदेव! अरे तुम तो स्वयं दूसरों को जलाने वाले हो! तुम्हें कोई कैसे भस्म कर सकता है?"

अग्नि ने ताना देते हुए कहा—"ऐसा न कहिये देवराज! दूर क्यो

जाते हैं, ब्रह्म-तेज एव ब्रह्मचर्य की शक्ति से तो आप स्वयं भी अपरिचित नहीं हैं!"

देवराज को ब्राह्मणो का अपमान करने के कारण जो कष्ट उठाने पडे थे अग्निदेव का उनकी ओर ही इशारा था। इद्र समझ गये और अग्नि से निराश होकर उन्होने एक गन्धर्व को बुलाकर आज्ञा दी कि मरुत के पास जाकर मेरा यह सन्देश सुनाओ कि यदि वह सवर्त का साथ न छोडेगा तो मै उसका शत्रु बन जाऊगा और फिर उसका सर्वनाश निश्चित ही है।

आज्ञा पाकर गन्धर्व मरुत राजा के पास गया और इन्द्र का सन्देसा कह सुनाया।

पर, मरुत राजा इन्द्र की बात मानने को तैयार नहीं हुआ। वह बोला--"अपने मित्र से छल करना घोर पाप है। मै इस समय सवर्त का साथ नहीं छोड सकता।"

गधर्व ने कहा--"राजन जब इन्द्र तुमपर वज्र-प्रहार करेंगे तब तुम कैसे बचोगे?" गन्धर्व की बात पूरी भी न हो पाई थी कि आकाश में इन्द्र के वज्र की कडक सुनाई देने लगी।

उसे सुनकर राजा मरुत का हृदय दहल गया। उसने समझा कि इन्द्र ने हमला कर दिया है। वह सवर्त के पास गया और उन्हींकी शरण ली।

सवर्त ने राजा को अभय देकर कहा--"डरो मत!" और अपनी तपस्या की शक्ति का इन्द्र पर प्रयोग कर दिया। बस, वही इन्द्र जो आक्रमणकारी बनकर आये थे मूर्त्तिमान शान्ति की तरह नम्रतापूर्वक आकर राजा मरुत के यज्ञ में सम्मिलित हुए और सानन्द हवि ग्रहण कर चले गये। बृहस्पति ने ईर्ष्या-वश जो प्रयत्न किये थे वे सब इस तरह बेकार हो गये और ब्रह्मचर्य के तेज की जीत हुई।

ईर्ष्या एक ऐसा पाप है जो बड़े-से-बडो को भी लग जाता है। विद्या की अधीश्वरी सरस्वती तक को लजाने वाले बृहस्पति जब

ईर्ष्या के वशीभूत हुए तो साधारण लोगो का तो पूछना ही क्या है ।

: १०२ :

उत्तक मुनि

पाडवो से बिदा होकर श्रीकृष्ण द्वारका लौट रहे थे । रास्ते में उत्तक नाम के एक ब्राह्मणो में उत्तम मुनि से उनकी भेंट हुई । उनको देखते ही श्रीकृष्ण ने अपना रथ खडा किया और उतरकर उनको प्रणाम किया ।

मुनि उत्तक ने उचित वन्दना करके श्रीकृष्ण से पूछा—

"माधव ! हस्तिनापुर में सब कुशल से तो है ? पाडवो और कौरवो में स्नेह-भाव बना रहता है न ?"

तपस्वी उत्तक ससार की घटनाओ से बिलकुल बेखबर थे । उन्हे इतना भी पता न था कि इन्हीं दिनो दोनो में घोर सग्राम हुआ और कौरवो का नाश हो गया ।

श्रीकृष्ण को ब्राह्मण मुनि का यह प्रश्न पहेली-सा लगा । क्षण भर के लिए उन्हे कुछ जवाब न सूझा । थोडी देर बाद उन्होने युद्ध का सारा हाल बताया और कहा— "द्विजवर कौरवो और पाडवो में घोर युद्ध हुआ । मैंने अपनी तरफ से शाति-स्थापन की कोई चेष्टा उठा न रखी । परन्तु कौरव कुछ मानते ही न थे । सब-के-सब युद्ध में मारे गये । भावी को कौन टाल सकता है ?"

यह हाल सुनकर उत्तक को क्रोध हो आया । उनकी आखें लाल हो उठीं और होठ फडकने लगे । वे बोले— "वासुदेव ! तुम्हारे देखते-देखते यह घोर अन्याय हुआ ? तुमने कौरवो की रक्षा क्यो नहीं की ? तुम चाहते तो उनको बचा सकते थे । तुम्हारे छल-कपट के कारण ही उनका नाश हुआ होगा । तुम्हीं उनके नाश का कारण बने होगे । मै तुम्हे अभी

की चाह नहीं ।"

परन्तु भगवान् ने बहुत आग्रह किया कि कोई वरदान तो मागिये ही । उत्तक मुनि मरुभूमि के आस-पास घूमने-फिरने वाले निस्पृह तपस्वी थे । अत उन्होने कहा—"प्रभो ! यदि मुझे आप कुछ देना ही चाहते हो तो इतनी कृपा करो कि जब भी और जहा कहीं भी मुझे प्यास बुझाने के लिए जल की आवश्यकता हो वहीं पानी मिल जाया करे ।

"बस ! और कुछ नही चाहिए ?" यह कहकर श्रीकृष्ण हस पडे और मुनि को वरदान देकर द्वारका की ओर रवाना हो गये ।

●

बहुत दिन बाद, एक बार जब उत्तक वन में फिर रहे थे तो उन्हे बडी प्यास लगी । बहुत ढूढने पर भी कहीं पानी न मिला । तब उत्तंक ने श्रीकृष्ण का ध्यान किया और तुरन्त उनके सामने एक चडाल खडा दिखाई दिया । वह अर्धनग्न था और उसने फटे-पुराने चीथडे पहन रखे थे । वे भी इतने मैले थे कि देखते ही घृणा उत्पन्न होती थी । चार-पाच शिकारी कुत्ते उसे घेरे हुए थे । हाथ में वह धनुष लिये था और उसके कन्धे पर पानी से भरी मशक लटक रही थी ।

उत्तक को देखकर चाडाल हसता हुआ बोला—"मालूम होता है आप प्यास के मारे परेशान है । आपको देखकर मुझे बडी दया आती है । यह लीजिये पानी ।" कहकर चाडाल ने मशक के मुंह पर की बास की टोटी आगे बढा दी ।

उस चाडाल की गदी सूरत, उसकी चमडे की मशक और उसके पास खडे शिकारी कुत्तो को देखकर उत्तक ने नाक-भौं सिकोड ली और उसका पानी लेने से इन्कार कर दिया ।

उत्तक को बडा क्रोध हुआ कि श्रीकृष्ण ने मुझे झूठा वरदान कैसे दिया ? उधर चाडाल सामने खडा बार-बार मशक बढ़ाकर कह रहा था कि पानी पी लें । ज्यो-ज्यो वह आग्रह करता था त्यो-त्यो मुनि उत्तक का क्रोध भी बढ़ता जाता था । एकाएक चाडाल कुत्तो समेत आखो से ओझल हो

गया ।

चाडाल के यो अचानक अन्तर्धान हो जाने पर उत्तक को बडा आश्चर्य हुआ। उन्होंने सोचा कौन था यह ? निश्चय ही चाडाल नहीं। यह तो मेरी परीक्षा हुई थी। अरे रे, मुझसे भारी भूल हो गई। मेरे ज्ञान ने भी समय पर साथ न दिया। यदि चाडाल ही था तो बिगड क्या गया था ? मैंने उसके हाथ का पानी पीने से इन्कार करके बडी मूर्खता की। यह सोचकर उत्तक मुनि पश्चात्ताप करने लगे ।

थोडी ही देर में शख और सुदर्शन चक्र लिये भगवान् श्रीकृष्ण उत्तक के सामने प्रकट हुए ।

उत्तक ने व्यथित होकर कहा—"पुरुषोत्तम ! मेरी इस तरह परीक्षा लेना तुम्हारे लिए ठीक था ? मै ब्राह्मण हू। प्यास लगने पर भी किसी चाडाल के हाथो मशक वाला गदा पानी कैसे पी सकता था ? तुमको मेरे लिए ऐसा पानी भेजना क्या उचित था ?"

श्रीकृष्ण हसकर बोले—"मुनिवर ! आपने पानी की इच्छा की तो मैंने देवराज से कहा कि उत्तक मुनि को अमृत ले जाकर पिलाओ। देवराज ने कहा कि मनुष्य को अमृत नहीं पिलाया जा सकता। कोई और वस्तु भले ही आप भिजवाइए। अन्त में मेरे आग्रह करने पर देवराज ने मान तो लिया, पर कहा—"मै चाडाल के रूप में जाऊगा और पानी के रूप में अमृत पिलाऊगा। यदि उत्तक ने न पिया तो नहीं पिलाऊगा।" मै देवराज की बात पर राजी हो गया कि आप तो बडे ज्ञानी और महात्मा है। आपके लिए तो चाडाल और ब्राह्मण समान होगे और चाडाल के हाथ का पानी पीने में नही सकुचायेंगे। अब आपके इस इन्कार करने से मेरी तो पराजय ही हो गई। इतना कहकर श्रीकृष्ण अतर्धान हो गए और उत्तक बहुत ही लज्जित हुए।

: १०३ :

सेर भर आटा

कुरूक्षेत्र का युद्ध समाप्त हो चुका था और युधिष्ठिर हस्तिनापुर की गद्दी पर आसीन हो चुके थे। महाराज युधिष्ठिर ने अश्वमेध का महायज्ञ किया था जिसमें सारे भारत के राजा इकट्ठे हुए थे। यज्ञ बडी धूमधाम से हुआ। देश के कोने-कोने में इस बात की घोषणा कर दी गई थी कि जितने भी ब्राह्मण और दीन-दरिद्र लोग जो-कुछ दान लेना चाहे वे राजाधिराज युधिष्ठिर के अश्वमेध यज्ञ में पहुचे। इस कारण यज्ञशाला में जहा महा-राजाओ की जगमगाती भीड थी वहा हरेक जाति और वर्ण के गरीब लोग भी दल-के-दल आकर दान ले जा रहे थे। इस प्रकार शास्त्रोक्त रीति से और सुचारु रूप से यज्ञ सपन्न हुआ।

यज्ञ के अतिम दिन अचानक एक बडा-सा नेवला यज्ञशाला के बीच में कहींसे आ खडा हुआ और बडी निर्भीकता के साथ उपस्थित लोगो को देखता हुआ ठहाका मारकर हसने लगा। एक अदने-से नेवले को इस प्रकार मनुष्यों की तरह हसते देखकर यज्ञ कराने वाले ब्राह्मणो के मन में भय-सा छा गया। वे शकित हो उठे कि कहीं कोई भूत या पिशाच तो हमारे यज्ञ में विघ्न डालने नहीं आ गया! यज्ञ-मडप में उपस्थित दूसरे लोग भी चौंक कर नेवले को ध्यान से देखने लगे।

नेवले का रूप अनूठा था। उसका आधा शरीर सुनहरा था और आधा साधारण नेवलो का-सा। इस अद्भुत नेवले ने दूर-दूर से आये हुए राजा-महाराजाओ और विद्वान ब्राह्मणो की ओर देखकर नि सकोच कहना शुरू किया—

"महामान्य सज्जनवन्द ! शायद आप लोग सोच रहे होंगे और मन में

खुश हो रहे होगे कि आपने कोई बडा भारी यज्ञ सपन्न किया है, परन्तु याद रखिये कि यह आपका केवल भ्रम है। इससे पहले एक बार एक महान् यज्ञ हो चुका है। कुरुक्षेत्र में रहने वाले एक गरीब ब्राह्मण ने केवल एक सेर आटा अतिथि को दान में दिया था। लेकिन आप लोगो द्वारा इस अश्वमेध यज्ञ में असख्य लोगो को दिये गए इस अपार दान की उस गरीब ब्राह्मण द्वारा दिये गए एक सेर आटे के दान की बराबरी नहीं हो सकती। अत हे उपस्थित सज्जनगण, मै आपको चेतावनी देने आया हू कि आप इस यज्ञ का अपने मन में भी घमंड न कीजियेगा।"

नेवले को इस प्रकार बातें करते देखकर यज्ञ-मडप में उपस्थित लोग आश्चर्य में आ गये। याजक ब्राह्मणो ने उस नेवले से पूछा—"हे नकुल तुम कौन हो, और हम लोगो की इस यज्ञशाला में तुम कहा-से आ गये ? इस यज्ञ की तुम इस प्रकार बुराई किस आधार पर कर रहे हो ? यह महान् अश्वमेध यज्ञ शास्त्र-विहित सभी सामग्रियो एव विधियो से किया गया है। इसमें तुम किस प्रकार दोष निकाल रहे हो ? जो लोग इस यज्ञ में आये है उन सबकी उचित पूजा हुई है, उनका यथोचित सत्कार किया गया है। जो जितना चाहता था उसे उतना और उसी तरह का दान दिया गया। इस दान से सभी सन्तुष्ट हुए है। मन्त्र-पाठ में भी त्रुटि नहीं हुई और अग्नि में आहुतियां भी उचित रीति से दी गई है। चारो वर्णों के लोग इससे पूर्णरूप से सन्तुष्ट हुए है। इतना सब कुछ होने पर भी क्या कारण है कि तुम इसे दोषयुक्त बता रहे हो ? हमें समझाकर कहो।"

यह सुन फिर नेवला एक बार कहकहा लगाकर हसा और बोलने लगा—"हे विप्रगण। मैंने जो कुछ कहा बिलकुल ठीक कहा है। न तो मेरा आप लोगो से कोई द्वेष है न राजाधिराज युधिष्ठिर से ही मै कोई ईर्ष्या करता हू। फिर भी मै जोर देकर कहता हू कि आप लोगो ने धूमधाम से इतना धन खर्च करके जो यह यज्ञ किया वह कुरुक्षेत्रवाले उस ब्राह्मण के दिये दान की समता कदापि नहीं कर सकता। दानवीर तो वही द्विजवर थे।

अपने दान-पुण्य के फलस्वरूप उनको अपनी पत्नी, पुत्र और बहू के साथ विमान में बैठकर सदेह स्वर्ग सिधारते हुए मैंने अपनी आंखो से देखा था। आप सब लोगो को मैं उसका सारा हाल सुनाता हू।

•

इस महाभारत-युद्ध से पहले, कुरुक्षेत्र में एक ब्राह्मण रहा करते थे। खेत में बिखरे हुए अनाज के दानो को चुन-चुन कर इकट्ठा करके वह अपनी आजीविका चलाते थे। ब्राह्मण, उसकी पत्नी, पुत्र और पुत्र-वधू—चारो इसी उच्छ-वृत्ति से दिन गुजारते थे। उन्होने अपना यह नियम बना रखा था कि जो कुछ अनाज इकट्ठा हो उसको बराबर बाटकर तीसरे पहर के शुरू होने से थोडी देर पहले खा लिया करे। किसी दिन नियत समय तक कोई भी अनाज नहीं मिलता था। जिस दिन ऐसा होता उस दिन सब उपवास कर लिया करते और अगले दिन नियत समय पर खा लेते थे।

उसी समय एक बार पानी न बरसने के कारण भारी अकाल पडा। सब कहीं लोग भूख-प्यास से तडपने लगे। जब खेतो में कुछ उगता ही न था तो फसल भी नहीं कटती थी और जब फसल नही कटती तो अनाज के दाने बिखरते कहासे? इस कारण ब्राह्मण और उनके कुटुब को लगातार कई दिनो तक भूखो रहना पडा।

एक दिन चारो जने भूखे-प्यासे धूप में तपते हुए दूर-दूर तक घूमे-फिरे तब कहीं जाकर सेर भर ज्वार के दाने इकट्ठे कर पाये। उस सेर भर ज्वार का आटा पीसा गया और यथा-विधि पूजा-पाठ आदि समाप्त होन पर उस आटे को बराबर चार हिस्सों में बांटकर चारो व्यक्ति आनन्द से खाने बैठे।

ठीक इसी समय कोई भूखा ब्राह्मण आ पहुचा। अतिथि को आया देख ब्राह्मण ने उठकर उसका विधिवत् सत्कार किया। वे लोग इतने निर्मल हृदय के थे कि स्वय भूखे रहते हुए भी अतिथि का सत्कार करते हुए उन्होंने ऐसा अनुभव किया मानो उनका जीवन सार्थक हो गया। वे हर्ष से फूले न समाये। उन्होने अतिथि से पूछा—"विप्रवर मै गरीब हू। यह

आटा नियमपूर्वक परिश्रम से कमाया हुआ है। कृपया आप इसका भोजन करें। आपका कल्याण हो।"

इतना कहकर ब्राह्मण ने अपने हिस्से का आटा अतिथि के सामने रख दिया और अतिथि ने उसे खा लिया। फिर भी उसकी भूख न मिटी। उसने कुछ कहा तो नहीं, लेकिन भूखी नजर से ब्राह्मण की ओर देखा।

ब्राह्मण ने देखा, अतिथि को सन्तोष नहीं हुआ। इससे वह चिन्तित हो गए। उन्हे चिन्तित देखकर उनकी पत्नी ने कहा—"नाथ! मेरे हिस्से का भी आटा अतिथि को खिला दीजिए। यदि उससे उन्हें सन्तोष हो गया तो मैं भी सन्तुष्ट हो जाऊगी।"

पत्नी ने इतना कहकर अपने हिस्से का आटा पति के आगे रख दिया।

लेकिन ब्राह्मण ने पत्नी की बात न मानी। बोले— "सती! तुम्हारा कहना ठीक नहीं। पति का कर्त्तव्य है कि अपनी स्त्री का भरण-पोषण करे। जब जानवर और कीड़े-मकोड़े तक अपनी मादा का भरण-पोषण सावधानी के साथ करते है तो फिर मैं मनुष्य होकर अपनी सेवा करने वाली पत्नी का भरण-पोषण न करू तो मेरा क्या भला होगा? प्रिये! तुम भूखी हो और तुम्हारी हड्डिया निकली हुई है। शरीर पर स्नायु का चिह्न तक नहीं। ऐसी दशा में तुम्हें भूखी रखकर मैं अतिथि का सत्कार करने लग जाऊ तो मुझे उसका कौन-सा फल प्राप्त होगा?"

यह सुनकर पत्नी ने कहा—"नाथ! मै आपकी सहधर्मिणी हू। धर्म, अर्थ आदि सभी बातो में आपका मेरा समान अधिकार है। जैसे आपने स्वय भूखे रहते हुए भी अतिथि को अपने हिस्से का आटा खिलाया था वैसे ही कृपा करके मेरा भी हिस्सा खिला दीजिये। मेरी यह प्रार्थना अस्वीकार न कीजिये।"

पत्नी के यो आग्रह करने पर ब्राह्मण ने उसके हिस्से का भी आटा अतिथि को खिला दिया। उसे खा चुकने पर भी अतिथि की भूख न

मिटी। इसपर ब्राह्मण और भी उदास हो गया।

यह हाल देखकर ब्राह्मण के पुत्र ने कहा—"पिताजी! यह मेरे हिस्से का भी आटा लीजिए और अतिथि को खिला दीजिए।"

यह सुन पिता व्यथित होकर बोले—"बेटा! जो उमर में बूढे है वे भूख सह सकते है। जवानो की भूख बडी तेज हुआ करती है। मेरा मन नहीं मानता कि तुम्हारा भी हिस्सा लेकर अतिथि को खिला दू।"

पर पुत्र ने न माना और अनुरोध करके कहा—"पिताजी! पिता के बूढे हो जाने पर उनकी रक्षा करना पुत्र ही का कर्त्तव्य हो जाता है। यह भी बात नहीं कि पिता और पुत्र अलग-अलग अस्तित्व रखते है। आखिर पिता ही तो पुत्र बनता है। इसलिए मेरे हिस्से का आटा भी आप ही का है। आप मेरा हिस्सा स्वीकार करलें और अधभूखे अतिथि को सतुष्ट करें।"

पिता ने हर्ष के साथ कहा—"पुत्र! धन्य है तुम्हें। शील, इन्द्रिय-दमन आदि हर बात में तुमपर मुझे गर्व हो सकता है, तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारे भी हिस्से का आटा मै स्वीकार करता हू।" यह कहकर ब्राह्मण ने उसे लेकर अतिथि को खिला दिया।

पर उसे खाने के बाद भी अतिथि का पेट नहीं भरा। उसके मुख पर सन्तोष की झलक दिखाई न दी। यह देख ब्राह्मण बडे लज्जित हो गये और किंकर्त्तव्यविमूढ-से बैठे रहे।

उनका यह हाल देखकर उनकी पुत्र-वधू ने कहा—"पिताजी, मै भी अपना हिस्सा अतिथिदेव के लिए देती हू। लीजिए इसे भी अतिथि को खिला दीजिए। आपके आशीर्वाद से मेरा स्थायी कल्याण होगा।"

बहू की बात सुनकर ब्राह्मण बोले—"बेटी! अभी तुम लडकी हो। तकलीफ सहते-सहते तुम्हारा रग फीका पड गया है और तुम दुबली हो गई हो। तुम्हें भूखी रखकर अतिथि को तुम्हारा कौर खिला दू तो मै धर्म का नाश करने वाला साबित हो जाऊगा। तुम्हारा भूखो तडपना मै कैसे देख सकता हू।"

पर बहू ने आग्रह करके कहा—"पिताजी आप मेरे प्रभु के प्रभु है, गुरू के गुरू हैं और ईश्वर के ईश्वर हैं। मेरा आटा आपको स्वीकार करना ही होगा। मेरा यह शरीर आपकी सेवा ही के लिए है। आप मेरा आटा लेकर मुझे सद्गति प्राप्त करने योग्य बनाइये।"

यह सुनकर ब्राह्मण के हर्ष की सीमा न रही। मुक्त कठ से बहू को आशीर्वाद देते हुए बोले—"सुशीला बेटी! पति की इच्छा पर चलने वाली सती! तुम्हे सारे सौभाग्य प्राप्त हो।"

बहू के हिस्से का भी आटा अतिथि के आगे रख दिया गया। उसे खाकर अतिथि तृप्त हो गये और बहुत प्रसन्न हुए। वह बोले—

"आपने अपनी शक्ति के अनुकूल पवित्र हृदय से जो दान दिया उसे पाकर मैं बहुत सन्तुष्ट हुआ। आपका दिया दान अद्भुत है, निराला है। वह देखिये, देवता भी फूल बरसा रहे हैं। देवर्षिगण, देवता, गन्धर्व आदि आपके दर्शन करने के लिए अपने अनुचरों के साथ विमानो में बैठे आकाश में इकट्ठे हो रहे है। आप अपनी पत्नी, पुत्र और बहू समेत अभी स्वर्ग सिधारेंगे। आपने जो दान दिया उससे आपको ही नहीं बल्कि आपके पूर्वजो को भी स्वर्गवास का भाग्य प्राप्त होगा। प्राय देखा जाता है कि भूख से विवेक का नाश हो जाता है और धार्मिकता का विचार जाता रहता है। बडे-बडे ज्ञानी भी भूख के मारे अस्थिर हो उठते है, धीरज गवा देते हैं। आपने तो भूखो रहते हुए भी पुत्र-प्रेम से धर्म को ही अधिक समझा। सैकडो राजसूय यज्ञ, अश्वमेध यज्ञ भी आपके इस दान की बराबरी नहीं कर सकेंगे। आपका दान उनसे कहीं बढ़कर है। वह देखिए, आपके लिए दैवी विमान तैयार खडा है। चलिए स्वर्ग सिधारिए।" इतना कहकर अतिथि देव अन्तर्धान हो गये।

●

अनाज चुनने की वृत्ति रखने वाले ब्राह्मण के स्वग सिधारने का यह हाल सुनाकर नेवले ने कहा—"विप्रगण, उन ब्राह्मण के दान में दिये गये ज्वार के आटे की सुवास सूघते-सूंघते मेरा सिर सुनहरा बन गया।

इसके बाद जहा आटा परोसा गया था, उस स्थान में भी मैं खूब लोटा। आटे के जो कण उस स्थान में बिखरे हुए थे, उनके लग जाने के कारण मेरे शरीर का आधा हिस्सा सुनहरा बनकर जगमगा उठा। इसपर मुझे अभिलाषा हुई कि शरीर का बाकी हिस्सा भी स्वर्णिम बन जाय तो क्या ही अच्छा हो! इसी अभिलाषा से मैं तपोवनों और यज्ञशालाओ आदि की खाक छानता रहा। इतने में सुना कि यशस्वी धर्मराज यज्ञ करने वाले है। सुनते ही खुशी-खुशी यहा दौडा आया। मुझे आशा थी कि यहा बाकी शरीर भी सुनहरा बन जायगा। परन्तु मेरी आशा पूरी न हुई। इसीलिए कहता हू कि आप का महान यज्ञ उस ब्राह्मण के सेर भर आटे की बराबरी नहीं कर सकता।"

: १०४ :

पांडवो का धृतराष्ट्र के प्रति बरताव

किसी भी वस्तु का लोभ लोगो को तभीतक रहता है जबतक कि वह प्राप्त नहीं हो जाती। ज्योही इच्छित वस्तु प्राप्त हो जाती है त्योही उसका आकर्षण जाता रहता है। यही नही बल्कि नई व्यथाए और विपदाए भी आ घेरती है। यह बात ठीक है कि युद्ध करना और शत्रुओ को दड देना क्षत्रियो का धर्म होता है, परन्तु फिर भी अपने ही भाइयो व रिश्तेदारो को मारने पर जो राज्य या पद प्राप्त हो, उससे कौनसे सुख की आशा की जा सकती है? अर्जुन ने युद्ध शुरू होने से पहले श्रीकृष्ण से यही कहकर अपनी व्यथा प्रकट की थी। यद्यपि श्रीकृष्ण ने इस शका का समाधान करते हुए कर्मयोग एव कर्त्तव्य-पालन का उपदेश दिया था, तो भी अर्जुन ने जो शका उठाई थी, वह भी कुछ अश में ठीक थी—एकदम निरर्थक नहीं थी।

कौरवो पर विजय पा लेने के बाद सारे राज्य पर पाडवो का एकछत्र अधिकार हो गया और उन्होने कर्त्तव्य समझकर राजकाज का भार भी

संभाल लिया। परतु फिर भी जिस सतोष और सुख की उन्हें आशा थी वह प्राप्त नहीं हुआ।

राजा जनमेजय ने पूछा कि विजय पाकर और राज्यसत्ता प्राप्त करने पर पाडवो ने महाराज धृतराष्ट्र के साथ कैसा व्यवहार किया? इस प्रश्न के उत्तर में वैशपायन मुनि कथा जारी रखते हुए कहने लगे—

शोकातुर हो रहे धृतराष्ट्र को पाडव उचित गौरव अवश्य दिया करते थे। वे राजकाज में भी उनकी सलाह लिया करते थे। उन्हींकी अनुमति से राजाधिराज युधिष्ठिर के नेतृत्व में पांडव राज करते थे। गाधारी, जो अपने सौ पुत्रो को एकसाथ गवा बैठी थी, ऐसा अनुभव करती थी मानो स्वप्न में मिला धन नींद टूटते ही खो गया हो। देवी कुन्ती दुखियारी गाधारी की बडी ही श्रद्धा और स्नेह के साथ सेवा करती थी। द्रौपदी भी उन दोनो वृद्धाओ की समान रूप से सेवा-शुश्रूषा किया करती थी।

युधिष्ठिर ने वृद्ध धृतराष्ट्र के आराम का भी हर तरह से आयोजन किया था। धृतराष्ट्र के भवन में कोमल, शय्या, सुखद आसन आदि का प्रबन्ध था और कीमती गहने-कपडे आदि भी पर्याप्त रूप में रहते थे। धृतराष्ट्र के भोजन के लिए विविध पकवान बनते थे। कृपाचार्य भी वृद्ध राजा के साथी बनकर उन्हींके भवन में रहा करते थे। भगवान् व्यास भी अक्सर आ जाया करते थे और सुदर सूक्तियो-भरी आख्यायिकाए सुनाया करते थे, जो राजा के व्यथित हृदय पर शीतल लेप का-सा प्रभाव करती थीं। राजकाज के बारे में युधिष्ठिर धृतराष्ट्र से बराबर सलाह लिया करते थे और शासन-सम्बन्धी सारा काम इस ढग से करते थे जिससे प्रतीत होता था कि धृतराष्ट्र ही की आज्ञा से सब काम होता है। महाराज युधिष्ठिर कोई ऐसी बात छेड़ते ही नही थे जिससे वृद्ध धृतराष्ट्र के मन को चोट पहुचने की आशका हो। देश-विदेश से आने वाले राजा लोग महाराज धृतराष्ट्र का वही सम्मान करते जैसे पहले किया करते थे। रनिवास की स्त्रिया गाधारी की सेवा-शुश्रूषा में जरा भी त्रुटि न होने देती थीं।

युधिष्ठिर ने अपने भाइयो को आज्ञा दे रखी थी कि पुत्रों के बिछोह

से दु:खी राजा धृतराष्ट्र को किसी भी तरह की व्यथा न पहुचने पाये। सिवाय भीमसेन के और सब पाडव युधिष्ठिर के ही आदेशानुसार व्यवहार करते थे। पाडव वृद्ध धृतराष्ट्र का खूब आदर करते हुए उन्हे हर प्रकार का सुख एव सुविधा पहुचाने के प्रयत्न में लगे रहते जिसमें धृतराष्ट्र को अपने पुत्रो का अभाव महसूस न हो। धृतराष्ट्र भी पाडवो से स्नेहपूर्ण व्यवहार किया करते थे। न तो पाडव उन्हे अप्रिय समझते थे न धृतराष्ट्र ही पाडवो को अप्रिय समझते थे।

परन्तु भीमसेन कभी-कभी ऐसी बातें या काम कर दिया करता था जिससे धृतराष्ट्र के दिल को चोट पहुचती। युधिष्ठिर के राजाधिराज बनने के थोडे ही दिन बाद भीमसेन धृतराष्ट्र की किसी आज्ञा को कार्यरूप में परिणत न होने देता था। कभी धृतराष्ट्र को सुनाते हुए कह भी देता कि दुर्योधन और उनके साथी अपनी ही नासमझी के कारण मारे गये, आदि।

बात यह थी कि दुर्योधन-दु शासन आदि के किये अत्याचारो और अपमानो का दुखद स्मरण भीमसेन के मन में अमिट रूप से अकित हो चुका था। इस कारण न तो वह अपना पुराना बैर भूल सकता था न क्रोध को ही दबा सकता था। कभी-कभी वह गाधारी तक के आगे उलटी-सीधी बातें कर दिया करता था।

भीमसेन की इन तीखी बातो से धृतराष्ट्र के हृदय को बडी चोट पहुचती थी। गाधारी को भी इस कारण बहुत दु ख होता। परन्तु फिर भी वह विवेकशीला थी और धर्म का मर्म जानती थी, इसलिए भीमसेन की कडुवी बातें चुपचाप सह लिया करती और धर्म की प्रतिमूर्ति कुती से स्फूर्ति पाकर धीरज धर लिया करती।

: १०५ :

धृतराष्ट्र

यद्यपि महाराज युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र को हर प्रकार से आराम पहुंचाने का उचित प्रबन्ध कर रक्खा था, तो भी धृतराष्ट्र का जी सुख-भोग में नहीं लगता था। एक तो वे बहुत वृद्ध होगये थे, फिर भीमसेन की अप्रिय बातो से कभी-कभी उनका हृदय खिन्न हो जाता था। धीरे-धीरे उनके मन में इतना विराग आगया कि आराम से रहना तो दूर रहा वे छिपे तौर से आंशिक उपवास तक रखने लगे और उन्होने पलग पर सोना भी छोड दिया। दूसरे और कितने ही कठिन व्रतो के कारण उनका शरीर बहुत कृश हो गया था। इन बातो में गाधारी भी उन्हींका अनुसरण किया करती थी।

एक दिन धृतराष्ट्र धर्मराज के भवन में गये और बुलाकर उनसे बोले—

"बेटा! तुम्हारा कल्याण हो। पन्द्रह वर्ष से तुम मुझे अपने यहा आराम से रख हुए हो और ध्यान से मेरी देखभाल करते रहे हो। तुम्हारे आश्रय में रहते हुए मैंने दान-पुण्य भी बहुत किये। पुत्र-विहीना गाधारी भी किसी तरह धीरज धर लेती है और दिल लगाकर मेरी सेवा किया करती है। द्रौपदी का अपमान करने वाले और तुम्हारी पैतृक सपत्ति हर लेने वाले मेरे अन्यायी पुत्रो का तो उनके अपने कर्मों के कारण नाश हुआ। पर युद्ध में मारे जाकर वे वीरोचित स्वर्ग को प्राप्त हुए। इस कारण मुझे उनकी कोई चिन्ता नहीं है। अब तो मेरी और गाधारी की यही प्रबल इच्छा है कि हम भी अपनी स्वर्ग-प्राप्ति की तैयारी करें और धार्मिक-कर्तव्यो पर अधिक ध्यान दें। तुम तो शास्त्रो के ज्ञाता हो और यह भी जानते हो कि हमारे वश की परपरागत प्रथा के अनुसार हम वृद्धो को वल्कल धारण

करके वन में जाना चाहिए। इसके अनुसार ही मै अब तुम्हारी भलाई की कामना करता हुआ वन में जाकर रहना चाहता हू। तुम्हे इस बात की मुझे अनुमति देनी ही होगी। तुम राजा हो, इसलिए मेरी तपस्या के फल का छठा हिस्सा भी तुम्हे प्राप्त होगा।"

धृतराष्ट्र की ये बातें सुनकर युधिष्ठिर बहुत खिन्न हुए और भरे हुए हृदय से बोले—"महाराज हम लोगो को तनिक भी पता न था कि आप इस भाति व्रत-उपवास रख रहे है, भूमि पर सोते है और तरह-तरह की यातनाओ से शरीर को कष्ट पहुचाकर कृश कर रहे है। मेरी लापरवाही के कारण ही आपको यह अपार दु ख सहना पड रहा है। सचमुच मै बडा ही दुरात्मा हू। मै इस राज्य को लेकर क्या करूगा ? सुख-भोग से मेरा भी जी उचट गया है। महाराज, सम्पत्ति के लोभ में पडकर मैने भारी अपराध किया। आप उसे क्षमा करें। अब मैने तय किया है कि आज से आपका ही पुत्र युयुत्सु राजगद्दी पर बैठे या जिसे आप चाहे राजा बना दें। अथवा शासन की बागडोर स्वय अपने हाथ में ले लें और प्रजा का पालन करें। मै वन चला जाऊगा। राजा मै नही बल्कि आप ही है। ऐसी हालत में आपको अनुमति मै कैसे दे सकता हू ? मुझे काफी अपयश प्राप्त हो चुका है; अब और भी दोष का भागी न बनाइए। दुर्योधन से मेरा अब कोई बैर-विरोध नहीं रहा। जो दुर्घटना हुई वह विधि की लीला और सबकी नासमझी के कारण ही हुई मालूम होती है। किसी एक को उसके लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता। महाराज! जैसे दुर्योधन आदि आपके पुत्र थे वैसे ही हम भी आपके ही पुत्र है। कुन्ती और गाधारी दोनो को ही मै अपनी माता मानता आया हू। यदि आप वन में जायगे तो मै भी आपके साथ ही चलूगा। आपके वन में चले जाने पर, आपके बिना, मै इस राज्य को लेकर कौनसा सुख भोग सकूगा ? मै आपके हाथ जोडता हू और सिर नवाकर प्रार्थना करता हू कि आप अपने मन का क्लेष दूर कीजिए। मै खुशी-खुशी आपकी सेवा-टहल करता रहूगा और उसीसे अपने भी व्यथित हृदय को शात करूगा।"

यह सुन धृतराष्ट्र बोले— "कुन्ती-पुत्र, मेरे मन में वन में जाकर तपस्या करने की इच्छा बडी प्रबल हो रही है । तुम्हारे साथ मै इतने बरसो सुखपूर्वक रहा और तुम और तुम्हारे सभी भाई ध्यानपूर्वक मेरी सेवा-शुश्रूषा करते रहे। वन में जाने का तो मेरा ही समय है । तुम्हारा नहीं । इस कारण वन में जाने की अनुमति तुम्हें देने का सवाल ही नहीं उठता । यह अनुमति तो तुमको मुझे देनी ही होगी ।"

यह सुन युधिष्ठिर अजलिबद्ध होकर कापते हुए खडे रहे । वे कुछ बोल न सके । उनसे ये बातें कहने के बाद धृतराष्ट्र आचार्य कृप एव विदुर से बोले— "भैया विदुर और आचार्य ! आप लोग महाराज युधिष्ठिर को समझा-बुझाकर मुझे वन में जाने की अनुमति दिलाइए । मैं पूरी तरह उनको समझा नही पा रहा हू । मेरा कठ सूख रहा है । काफी देरतक बोलता रहा—शायद इसीसे ." यह कहते-कहते वृद्ध राजा मूर्छित होगये और गांधारी के ऊपर गिर पडे। गाधारी ने उनको सभाल लिया ।

धृतराष्ट्र की यह हालत देखकर युधिष्ठिर का गला भर आया और आखो से आसू बहने लगे । उनका यह दु ख उनके लिए असह्य हो उठा । वह व्यथित होकर बोले—"हाथी के समान जिसकी ताकत थी और जिन्होने लोहे की मूर्ति को अपनी बाहो से कसकर चूर कर दिया था वही वीर धृतराष्ट्र इस तरह खिन्न हृदय होकर हड्डी के पजर समान दुबले हो गये और मूर्छित होकर दीन-दुर्बल मनुष्य की भाति गाधारी के सहारे पडे है । हाय रे विधाता ! धिक्कार है मुझे, जिसके कारण इन पूज्य वीर की यह दशा हुई। धिक्कार है मुझे, मेरी विद्या को और मेरी बुद्धि को कि जिसे धर्म का ज्ञान अभीतक प्राप्त न हो सका ।"

इस तरह विलाप करते हुए युधिष्ठिर ने ठडा पानी लेकर धृतराष्ट्र के मुख पर छिडका और उनके शरीर पर अपने कोमल हाथ धीरे-धीरे फेरने लगे । धृतराष्ट्र जब होश में आये तो युधिष्ठिर को प्यार से गले लगा लिया और गद्गद् स्वर में बोले— "बेटा ! तुम्हारे स्पर्श से ही मुझे

असीम आनन्द प्राप्त हो रहा है। मै ऐसा सुख पा रहा हू मानो मैने अमृत पी लिया हो।"

यह सब चर्चा हो ही रही थी कि इतने में भगवान् व्यास वहा पधारे। सारा हाल मालूम होने पर वे युधिष्ठिर से बोले—"बेटा, कुरुकुल-श्रेष्ठ धृतराष्ट्र की जैसी इच्छा हो वैसा ही तुम करो। यह वृद्ध हो गया है, पुत्रो से बिछुडा हुआ है। इस परिस्थिति में और बहुत दिन यह कष्ट इससे सहा नहीं जायगा। गाधारी बडी विवेकशीला है और अपना दु ख धीरज के साथ सह लिया करती है। तुम मेरी बात मानो और धृतराष्ट्र को वन जाने की अनुमति दे दो। वहापर यह मधुभरे फूलो की सुवास का आनद लेता हुआ निश्चित होकर दिन बितायगा। प्राचीन काल के राजर्षियो के मार्ग का इसे भी अनुकरण करने दो। राजाओ का यही धर्म होता है कि या तो लडते-लडते वीर-गति पावें या वन में जाकर तपस्या करते रहकर स्वाभाविक मृत्यु की प्रतीक्षा करें। धृतराष्ट्र ने यज्ञ किये और सुख भी भोग लिया। जब तुम लोग बनवास और अज्ञातवास करते रहे तब इसने अपने पुत्र के विशाल राज्य का शासन-सुख तेरह वर्ष तक भोगा। अब इधर पन्द्रह बरस से तुम भी इसके साथ पुत्र का-सा बरताव करते हुए इसे आराम पहुचाते रहे हो और किसी वस्तु की कमी महसूस न होने दी। अब इसकी आयु तपस्या करने की है इसीलिए यह वन जाना चाहता है। क्रोध के कारण या तुम लोगो से असन्तुष्ट होकर नही। अत इसको जाने की अवश्य अनमति दो। इसीमें तुम्हारा और इसका कल्याण है।"

: १०६ :

तीनों वृद्धों का अवसान

युधिष्ठिर से वन में जाने की अनुमति पाकर धृतराष्ट्र गाधारी के साथ अपने भवन में लौट आये और अनशन व्रत समाप्त किया। गान्धारी

और कुन्ती दोनो ने साथ-साथ बठकर भोजन किया। धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को अपने पास बिठा लिया और प्रेम के साथ आशीर्वाद दिया। उसके बाद वृद्ध राजा धृतराष्ट्र उठे और गान्धारी के कन्धे पर हाथ रख कर लाठी टेकते हुए वन के लिए रवाना हुए। माता कुन्ती भी उनके साथ हो ली।

अपने व्रत के कारण पतिव्रता गान्धारी ने अपनी आखो पर पट्टी बाधी हुई थी। इसलिए वह कुन्ती देवी के कन्धे पर हाथ रक्खे रास्ता टटोलती हुई जाने लगी और इस तरह तीनो वृद्ध राज-कुटुबी राजधानी की सीमा पार कर वन की ओर चले।

देवी कुन्ती ने गान्धारी की सेवा-टहल करने के लिए उनके साथ वन जाने का निश्चय कर लिया था। जाते समय वह युधिष्ठिर से बोली, "बेटा! सहदेव से कभी नाराज न होना। वीरोचित रीति से लडकर स्वर्ग सिधारे हुए भाई कर्ण का सदा स्नेह के साथ स्मरण करते रहना। यह मेरा ही कसूर था कि मैंने तुम लोगो से उसका वास्तविक परिचय छिपा रखा। द्रौपदी की प्रेम के साथ रक्षा करते रहना। इस बात का खयाल रखना कि भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव को किसी तरह का दु ख न पहुचने पावे। सारे कुटुब की देखभाल करने का भार अब तुम्हारे ही कन्धो पर है।"

धर्मराज समझ रहे थे कि गान्धारी को थोडी दूर तक बिदा करने के लिए माता कुन्ती साथ जा रही हैं। इसलिए कुन्ती की ये बातें सुनकर वह तो सन्न रह गए। उनसे कुछ कहते न बना और काफी देर तक अवाक् से खडे रहे। सभलकर बोले— "मा! तुम वन में क्यो जा रही हो? अभी तुम्हारा जाना तो ठीक नहीं है। तुम्हींने तो आशीर्वाद देकर हमें युद्ध के लिए भेजा था। अब तुम्हीं हमें छोडकर वन को जाने लगी। यह ठीक नहीं।" इतना कहते-कहते युधिष्ठर का गला भर आया। किन्तु उनके बहुत आग्रह करने पर भी कुन्ती अपने निश्चय पर अटल रही। वह बोली—

"बेटा अधीर न होओ। मैं उस लोक में जाना चाहती हू जहा मेरे पति निवास करते होगे। मैं बहिन गान्धारी की सेवा-टहल करती हुई तपस्या करूगी और समय आने पर शरीर त्याग करके तुम्हारे पिता के पास पहुच जाऊगी। बेटा, अब तुम लोग नगर को वापस जाओ। न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करते रहो और तुम्हारी बुद्धि सदा धर्म पर ही अटल रहे।"

पुत्रो को इस प्रकार आशीर्वाद देकर देवी कुन्ती धृतराष्ट्र और गान्धारी के साथ वन को चलीं।

युधिष्ठिर अवाक् होकर खडे देखते रहे।

●

धृतराष्ट्र गान्धारी और कुन्ती ने तीन वर्ष तक वन में तपस्वियों का-सा जीवन व्यतीत किया। एक दिन धृतराष्ट्र स्नान-पूजा करके आश्रम लौटे ही थे कि इतने में जगल में एकाएक आग भडक उठी, हवा तेज चल रही थी, इसलिए शीघ्र ही आग सारे जगल में फैल गई। हिरन, जगली सुअर आदि जानवरो के झुड-के-झुड भयभीत होकर जलाशय की तरफ भागने लगे।

इस अवसर पर सजय भी उनके साथ था। धृतराष्ट्र ने उसको कहीं भी भागकर अपने प्राण बचाने का आग्रह किया और फिर सती गान्धारी और देवी कुन्ती के साथ वह पूरब की ओर मुख करके योग-समाधि में बैठ गये और उसी स्थिति में उन तीनो ने उस दावानल में अपने शरीर की आहुति दे दी।

धृतराष्ट्र का प्राणसखा सजय जो उनकी आखो और प्राणो के समान उनका सहारा था उनके देहावसान के बाद सन्यास ग्रहण करके हिमालय में तप करने चला गया।

: १०७ :

श्रीकृष्ण का लीला-संवरण

महाभारत की युद्ध-समाप्ति के बाद, भगवान श्रीकृष्ण छत्तीस बरस तक द्वारका में राज्य करते रहे। उनके सुशासन में श्रीकृष्ण के समान-वशी भोज, वृष्णि, अन्धक आदि यादव राजकुमार असीम सुख-भोग में जीवन व्यतीत करने लगे। भोग-विलास के कारण उनका सयम और शील जाता रहा।

इन्हीं दिनो एक बार कुछ तपस्वी लोग द्वारका में पधारे। उच्छृखल यादवगण उन महात्माओ की खिल्ली उडाने के लिए साम्ब नामक राजकुमार को स्त्री की पोशाक पहनाकर ऋषियो के सामने ले गए और उसे ऋषियो के सामने उपस्थित करके पूछा—"आप लोग शास्त्रो के ज्ञाता है, कृपया बतलाइये कि इस स्त्री के पुत्र होगा या पुत्री ?"

यादवो के इस झूठ व नटखटीपन पर ऋषियो को क्रोध हुआ। वे बोले "इसके एक मूसल पैदा होगा और वही तुम्हारे कुल के नाश का कारण बनेगा।"

यो शाप देकर तपस्वी-गण चले गये। तपस्वियो के इस तरह शाप देने पर यादव बहुत पछताये कि मजाक करके हम अपना सर्वनाश मोल ले बैठे। उनके मन में भय छा गया।

अगले दिन ऋषियो के कहे अनुसार स्त्री-वेषधारी साम्ब के एक मूसल पैदा हुआ। इसपर यादवो की घबराहट और बढ गई। वे बड़े व्यथित हो उठे और डरने लगे कि कही ऋषियो का शाप पूर्णरूप से सच न साबित हो जाय। उनको तो मूसल में कालदेव ही नजर आया। आख़िर सबने आपस में सलाह-मशविरा करके मूसल को जलाकर भस्म कर दिया

और उस भस्म को समुद्र के किनारे पर बिखेर दिया। जब उस राख पर पानी बरसा तो वहापर घास उग आई। यादवो ने सोचा कि अब हमारे भय का कारण दूर हो गया और इसी भ्रम में पडकर उन्होने ऋषियो के शाप को बिसार दिया।

इसके कई दिनो बाद, एक बार यादव लोग समुद्रतट की सैर करते हुए मदिरा पीते, नाचते, गाते आनन्द मनाने लगे। समुद्रतट पर उनकी भारी भीड जमा हो गई थी। धीरे-धीरे शराब का नशा उनपर असर करने लगा।

महाभारत-युद्ध में यादव कुल का वीर कृतवर्मा कौरवो के पक्ष में लडा था और सात्यकि पाडवो के पक्ष में। शराब का नशा चढ़ने पर उनमें इसी विषय को लेकर बहस होने लगी।

सात्यकि कृतवर्मा की हसी उडाता हुआ बोला—"क्षत्रिय होकर किसीने सोते हुओ को कभी मारा है? अरे कृतवर्मा! तुमने तो ऐसा करके सारे यादव कुल को अपमानित कर दिया। निर्लज्ज कहीके! धिक्कार है तुम्हे।"

सात्यकि की बात का नशे में चूर हो रहे कुछ और लोगो ने अनुमोदन किया। इसपर कृतवर्मा क्रोध के मारे आपे से बाहर हो गया।

"सात्यकि! तुम मुझे उपदेश देने वाले होते कौन हो? युद्ध-क्षेत्र में अपना हाथ कट जाने पर जब महात्मा भूरिश्रवा शर-शय्या पर बैठे प्रायोपवेशन कर रहे थे तब तुमने उनकी हत्या की थी। ऐसे कसाई की यह धृष्टता कि मुझे उपदेश करे!" कृतवर्मा ने कडककर कहा। नशे में चूर दूसरे लोगो ने कृतवर्मा की बातो का समर्थन किया और सात्यकि की निन्दा करने लगे। बस, फिर क्या था? उपस्थित यादवो के दो दल बन गये और दोनो में झगडा शुरू हो गया। काफी मार-काट हुई।

"यह लो! जिस पापी ने सोते हुओ की हत्या की थी वह अभी अपने पाप का फल भुगतेगा," कहते-कहते सात्यकि हाथ में तलवार लिये कृतवर्मा पर टूट पड़ा और एक ही बार में उसका सिर धड़ से अलग

कर दिया।

यह देख कई यादवो ने सात्यकि को घेर लिया और शराब के प्यालों और मटको को उसपर फेंक-फेंक कर मारने लगे। श्रीकृष्ण के बेटे प्रद्युम्न ने सात्यकि की तरफ से उन लोगो का मुकाबला किया तो उसको भी बहुत-से लोगो ने घेर लिया। थोडी ही देर में सात्यकि और प्रद्युम्न दोनो मारे गये।

यह देख श्रीकृष्ण भी क्रोध में आ गये और समुद्र-किनारे जो लंबी घास उगी हुई थी उसीका एक गुच्छा उखाडकर विपक्षियो पर टूट पडे। बस सभी यादवो ने एक-एक घास का गुच्छा उखाड लिया और उसीसे एक-दूसरे पर वार करने लगे।

ऋषियो के शाप के प्रभाव से मूसल की राख से उगे घास के पौधे यादवो के उखाडते ही मूसल बन गये और वे यादव उन्हीं मूसलो से एक-दूसरे पर आघात करते हुए वहीं कट मरे।

शराब के नशे के कारण हुए इस फसाद में यादववश के सभी लोग समूल नष्ट हो गये।

यह वश-नाश देखकर बलराम को असीम शोक हुआ, और उन्होने वही योग-समाधि में बैठकर शरीर त्याग दिया। उनके मुख से सफेद साप के रूप में एक अलौकिक ज्योति निकली और समुद्र में विलीन हो गई और बलराम का अवतार-कृत्य समाप्त हो गया।

सब बन्धु-बान्धओ का सर्वनाश हुआ देखकर श्रीकृष्ण भी ध्यान-मग्न हो गये और समुद्र के किनारे वाले वन में अकेले विचरण करते रहे। जो कुछ हुआ, उसपर विचार करके उन्होने जान लिया कि उनके भी ससार छोडकर जाने का समय आ गया। यह जानकर वे वहीं जमीन पर एक पेड के नीचे लेट गये।

इतने में कोई शिकारी शिकार की तलाश में घूमता-फिरता उधर से आ निकला। सोये हुए श्रीकृष्ण को शिकारी ने दूर से हिरन समझा और धनुष तानकर एक तीर मारा।

तीर श्रीकृष्ण के तलुए को छेदता हुआ शरीर में घुस गया और श्रीकृष्ण के लीला-सवरण करने का निमित्त बन गया। इस प्रकार अलौकिक कीर्त्ति-सपन्न श्रीकृष्ण का देहावसान हो गया।

: १०८ :

धर्मपुत्र युधिष्ठिर

यादवो के सर्वनाश और श्रीकृष्ण के निर्वाण के शोकजनक समाचार हस्तिनापुर में पहुचने पर पाडवो के मन में सासारिक जीवन के प्रति विराग छा गया और जीवित रहने की चाह उनमें न रह गई। अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित को राजगद्दी पर बिठाकर पाचो पाडवो ने द्रौपदी को साथ लेकर तीर्थ-यात्रा करने का निश्चय किया। वे हस्तिनापुर से रवाना होकर अनेक पवित्र स्थानो के दर्शन करते हुए अन्त में हिमालय की तलहटी में जा पहुचे। उनके साथ-साथ एक कुत्ता भी चल रहा था। उन्होने पहाड पर चढना शुरू किया और चढते-चढते रास्ते में द्रौपदी, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव इन पाचो ने एक-एक करके गिरकर शरीर त्याग दिये। पर सत्य-ब्रह्म का ज्ञान रखने वाले युधिष्ठिर तनिक भी विचलित न हुए। वे ऊपर चढते ही गये। अब उनके पीछे-पीछे वह कुत्ता उनका साथी बनकर चल रहा था।

असल में युधिष्ठिर का धर्म ही कुत्ते के रूप में उनके पीछे-पीछे चल रहा था। बहुत दूर जानेपर देवराज इन्द्र दैवी रथ लेकर युधिष्ठिर के सामने प्रकट हुए और बोले—

"युधिष्ठिर! द्रौपदी और तुम्हारे भाई स्वर्ग पहुच चुके है। अकेले तुम्हीं रह गये, तुम अपने शरीर के साथ ही इस रथ पर सवार होकर स्वर्ग चलो। तुम्हे ले जाने के लिए ही मै आया हू।"

युधिष्ठिर रथ पर सवार होने लगे तो कुत्ता भी उनके साथ रथ पर

चढने लगा। पर इन्द्र ने उसे चढने न दिया। बोले कि कुत्ते के लिए स्वर्ग में स्थान नही है। यह सुन युधिष्ठिर ने कहा कि यदि इस कुत्ते के लिए स्वर्ग में जगह नहीं तो फिर मुझे भी वहा जाने की इच्छा नहीं।

इन्द्र के बहुत समझाने पर भी युधिष्ठिर कुत्ते को छोडकर अकेले स्वर्ग जाने को राजी नहीं हुए।

अपने पुत्र की परीक्षा लेने के ही उद्देश्य से धर्मदेव कुत्ते के रूप में आये हुए थे। पुत्र के मन की दृढता देखकर धर्म-देव बडे प्रसन्न हुए और उनको आशीर्वाद देकर अन्तर्धान हो गये।

●

युधिष्ठिर स्वर्ग में पहुचे तो पहले-पहल दुर्योधन से ही उनकी भेंट हुई। धर्मपुत्र ने देखा, दुर्योधन सूर्य के तेज के साथ जगमगाते हुए सुन्दर आसन पर विराजमान है और देवता लोग उसे घेरे हुए खडे है।

यह देखकर युधिष्ठिर को बडा क्रोध आया। उपस्थित देवताओ से बोले—"जहा लोभी और अदूरदर्शी दुर्योधन बस रहा हो, वहा मै रहना नहीं चाहता। इसने हमपर अनेक अत्याचार किये और हमें दारुण दु ख पहुचाया। इसीके कुकर्मों के फलस्वरूप हमें अपने बन्धु-बान्धवो और मित्रो को मारना पडा। इसीकी आज्ञा से हमारी सतीसाध्वी पत्नी द्रौपदी भरी सभा में अपमानित हुई। मै इसे देखना तक नहीं चाहता। मेरे और भाई कहा है? जहा वे होगे, वहीं मै भी जाना चाहता हू।"

यह कहकर युधिष्ठिर वहासे लौट पड़े।

यह देख सर्वज्ञ देवर्षि नारद युधिष्ठिर से बोले—"राजश्रेष्ठ, तुम्हारा यो कहना ठीक नहीं। स्वर्ग में वैर-विरोध होता ही नहीं। वीर दुर्योधन के बारे में ऐसी बाते न करो। दुर्योधन ने क्षत्रियोचित धर्म का पालन करके यह पद प्राप्त किया है। जो बाते हो चुकी है उनका सदा स्मरण करते रहना और उन्हे मन में जमने देना ठीक नहीं। आपसी वैर-विरोध के लिए यहा स्थान नहीं है। अब तो आपको दुर्योधन के साथ ही यहा प्रेम-पूर्वक रहना होगा। यहा सदेह पहुचने के कारण ही आपके मन में ऐसे

संकुचित विचार उठ रहे है । अब इन कुविचारों को मन से निकाल दो ।"

यह सुन युधिष्ठिर बोले—"द्विजवर, जिसे धर्म का ज्ञान ही नहीं है, जो पापी है, जिसने सत्पुरुषो को हानि पहुचाई और जो असख्य लोगो के नाश का कारण हुआ उसके लिए वीरो के योग्य स्वर्ग में स्थान मिला। परन्तु मेरे शीलवान, शूर भाइयो एव द्रौपदी को कौन-सी गति प्राप्त हुई है ? वे तो यहा दिखाई ही नहीं देते । कर्ण भी नहीं दिखाई देते और न मेरे लिए प्राण त्यागने वाले अन्य राजा लोग ही देख पडते है । मै उन्हे देखना चाहता हू । विराट, द्रुपद, धृष्टकेतु, शिखडी, द्रौपदी के पुत्र, अभिमन्यु आदि वीर जिन्होंने मेरी खातिर युद्ध की बलिवेदी में अपने प्राणो की आहुति दी थी, यहा क्यो नहीं दिखाई देते ? मै भी वहीं रहना चाहता हू जहा वे लोग होगे । माता कुन्ती ने कर्ण को भी जलाजलि देने का जो आदेश दिया था उसका स्मरण करते ही मुझे दु सह दु ख हो आता है । जिन वीर कर्ण का वास्तविक परिचय जाने बिना अनजान में मैंने वध करवा दिया, मै उनके दर्शन करना चाहता हू । प्राणो से प्यारे भाई भीम, देवराज के समान तेजवाले अर्जुन, प्रिय नकुल व सहदेव, धर्मपरायणा द्रौपदी आदि सबको मै देखना चाहता हू । जहा द्रौपदी और मेरे भाई न होगे वहा मै नहीं रहना चाहता । जहा वे होगे, वही मेरे लिए स्वर्ग है । इस स्थान को मै स्वर्ग ही नहीं मानता ।"

युधिष्ठिर की ऐसी बातें सुनकर उपस्थित देवताओ ने कहा—"महाराज ! जहा आपकी पत्नी और भाई रहते है आप यदि वहा जाना चाहते है तो आनन्दपूर्वक जा सकते है ।"

देवताओ के आदेशानुसार एक देवदूत युधिष्ठिर को दूसरी तरफ ले जाने लगा । आगे-आगे देवदूत चला और उसके पीछे-पीछे युधिष्ठिर चले । रास्ते में अधेरा छाया हुआ था । जो थोडा बहुत दिखाई देता था वह भी भयानक प्रतीत होता था ।

रास्ता मास और रक्त के कीचड से भरा था । चारो तरफ हड्डिया लाशें और बाल पड़े हुए थे । जिधर देखो उधर कीड़े बिलबिला रहे थे

और बडी ही बदबू आ रही थी। जहा-तहा कुछ आदमी पडे कराह रहे थे। किसीका हाथ कटा था, तो किसीका पैर। यह बीभत्स दृश्य देखकर युधिष्ठिर उद्‌भ्रात से हो उठे। उन्हें कुछ समझ में ही नहीं आया कि बात क्या है। तरह-तरह के विचार उनके मन में उठने लगे।

उन्होने देवदूत से पूछा—"इस तरह इस रास्ते और कितनी दूर चलना होगा? मेरे भाई कहा है?"

"आगे जाने की इच्छा न हो तो लौट चलिए।" देवदूत ने जवाब दिया।

वहाकी दुर्गन्ध युधिष्ठिर के लिए असह्य हो रही थी। वे वापस लौटने की सोचने लगे और वे लौटने ही को थे कि चारो ओर से करुण स्वर में कइयो का क्रन्दन एकसाथ सुनाई देने लगा।

"हे धर्मपुत्र! लौटिये नही। हमपर दया करके कम-से-कम एक मुहूर्त्त के लिए ठहरिए। आपके यहा आते ही सुवास-भरी पवित्र हवा बहने लगी है और हमें उससे बहुत सुख मिला है। कुन्ती पुत्र! आपके दर्शन-मात्र से ही हमें सुख पहुच रहा है। जैसे ही आपका यहा आना हुआ तभीसे हमारी दु सह यातना एकदम कम हो गई है। आप कृपा करके एक मुहूर्त तक यहीं रहिए, जिससे हमारी यह पीडा कुछ कम हो सके।"

व्यथा से भरे इन दीन स्वरो को सुनते ही युधिष्ठिर का गला भर आया। पर जब करुण स्वर में रोने की आवाज सुनाई दी तब तो युधिष्ठिर से न रहा गया। "अरेरे! इन बिचारो को बडी पीडा पहुच रही है।" रुद्ध कंठ से केवल यही कहते वे वही खडे रहे। उनको ऐसा मालूम होने लगा मानो जो आवाजें सुनाई दे रही हैं, वे उनसे परिचित हैं। उन्होने शोकातुर स्वर में पूछा—"कौन हो तुम लोग? यहा कैसे आये?"

कोई स्वर बोल उठा—"मै कर्ण हू" और किसीने कहा—"मै हू भीमसेन।" तीसरे ने कहा—"मै अर्जुन हू।" ऐसे ही करुण स्वर में और एक पुकार सुनाई दी—"मै द्रौपदी हू।" इसपर चारो ओर से कई स्वर पुकार उठे—"मै नकुल हू।", "मै सहदेव हू।", "हम द्रौपदी के पुत्र हैं।"

शोक-विह्वल युधिष्ठिर के लिए यह वेदना असह्य हो उठी। वह क्षोभ और ग्लानि के मारे आपे से बाहर हो उठे--

"मेरे इन आत्मीय जनो ने कौनसा पाप किया जो ये नरक में पडे यह दारुण यातना सह रहे हैं, और धृतराष्ट्र के पुत्रो ने एसा कौनसा पुण्य कमाया जो देवेन्द्र की-सी शान के साथ स्वर्ग में सुख भोग रहे हैं? कही मै सो तो नहीं रहा हू? मूर्छित-अवस्था में तो नहीं हू? या, यह कोई स्वप्न है?" यह सोचते-सोचते युधिष्ठिर ईश्वरी न्याय, धर्म, एव देवताओ की मन-ही-मन निन्दा करने लगे।

अपने साथ आये देवदूत से वे बोले--"जिनके तुम दूत हो, उनके पास लौट जाओ और उनसे कहो कि मै यहासे वापस नहीं जाऊगा। यहीं रहूगा। मेरे कारण ही तो मेरे प्रिय भाई और द्रौपदी यहा इस नरक में पडे दारुण यातना सह रहे हैं। इसलिए मैं भी अपने आत्मीयो के साथ यहीं रहना चाहता हू।"

एक मुहूर्त्ततक युधिष्ठिर उसी प्रकार वहा नरक में खडे रहे। इसके बाद देवेन्द्र और धर्मदेवता उसी स्थान में आये जहा युधिष्ठिर खडे थे। उनके आगमन के साथ प्रकाश भी फैल गया। न वह अन्धेरा रहा, न वे भयानक दृश्य ही रहे। पापियो की विषम वेदना का वह हृदयविदारक दृश्य भी गायब हो गया। पवित्र सुवास से भरी ठडी हवा चलने लगी।

धर्मदेव ने अपने पुत्र से कहा--"मतिमानो में श्रेष्ठ! हमने तीसरी बार तुम्हारी परीक्षा ली थी। अपने भाइयो के हित नरक में पडे रहने के लिए भी तुम तैयार थे। इससे हमें बहुत प्रसन्नता हुई। भूमिपाल राजाओ के लिए नरक की यातना अवश्य देखनी चाहिए। यही कारण था कि तुम्हे भी एक मुहूर्त्त के लिए यह दारुण दुख भोगना पड़ा। यशस्वी वीर अर्जुन, प्रिय भाई भीम, सत्यव्रती कर्ण, आदि तुम्हारे सारे बन्धुजनो में से कोई भी नरक नहीं पहुचा। यह तो तुम्हारी परीक्षा लेने के लिए रची गई माया थी। वास्तव में यही देवलोक है। वह देखो! तीनो लोको में विचरण करने वाले देवर्षि नारद विराजमान है! तुम

दुःखी न होओ।"

युधिष्ठिर को यह सब देखकर बड़ा सुख हुआ और उन्होंने मानव शरीर त्यागकर दैवी शरीर प्राप्त किया।

शरीर के साथ-साथ, द्वेष, वैर-विरोध मानवी दुर्बलताओं से भी निवृत्त होकर धर्मराज युधिष्ठिर पूर्णरूप से पवित्र बन गए।

बड़े भाई कर्ण एव छोटे भाइयो को, धृतराष्ट्र के पुत्रो के साथ-साथ क्रोधरहित दैवी स्थिति में देवताओ एव ऋषि-मुनियो से पूजित होकर सुखपूर्वक रहते देखकर युधिष्ठिर को भी शान्ति प्राप्त हुई।

हरि ॐ तत् सत्